नैमिषारण्य

डा० महेन्द्र वर्मा

पौराणिक तथा वैदिक अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान

नैमिषारण्य - सीतापुर

2.4

नैमिषारण्य

●

पौराणिक-वैदिकाध्ययनानुसन्धानसंस्थानस्यार्द्धवार्षिकी पत्रिका

नैमीषीयम्

नैमिषमाहात्म्यविशेषाङ्कः

●

लेखकः

डा० महेन्द्रवर्मा, एम० ए०, आचार्य, विद्यावारिधि

●

द्वितीया संख्या, संवत् २०४६

नवमो वर्षः

सम्पादकमण्डलम्

डॉ० गौरीनाथशास्त्री, सम्पादकः

पं० श्रीकरुणापतित्रिपाठी

डॉ० महाप्रभुलालगोस्वामी

डॉ० जगदीशप्रसादशुक्लः

डॉ० हरिश्चन्द्रमणित्रिपाठी, संयोजकः

प्रकाशकः—
पौराणिक तथा वैदिक
अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान
नैमिषारण्य, सीतापुर–२६१४०२

●

मूल्यम्—विंशतिरूप्यकाणि

●

प्राप्तिस्थानम्—
मोतीलाल बनारसीदास
चौक, वाराणसी–२२१००१

●

मुद्रकः—
रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स
कमच्छा, वाराणसी–२२१००१

प्राक्कथन

पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमाकाशे तु पुष्करम् ।
चक्रतीर्थं तु महाबाहो पातालतले विदुः ॥

सर्वविध पाप-तापापहारी, साधक-सिद्धिकारी, प्रकृत्या मनोहारी, ऋषि-मुनि जनाकीर्ण, सकलतीर्थोपसेवित, ब्रह्मा-विष्णु-महेशादि विभूषित, श्रीमज्जगज्जननी जगदम्बा पराम्बा लिंगधारिणी ललिता से संरक्षित एवं सुपूजित चक्रतीर्थ के निर्मल जल कल्लोल केलि से सत्त्वभूत "नैमिषारण्य" न केवल भारत-भूमि का, अपितु अखिल भूमण्डल का पवित्रतम तीर्थ है। यह व्यष्टि में समष्टि, अनेकता में एकता, भिन्नता में अभिन्नता का प्रतीक है। अज्ञानरूप गहन तामिस्र का विपोहक ज्ञान भास्कर है, रजनी का प्रकाशक रजनीकर है। लोकोत्कृष्ट हिन्दूधर्म दर्शन की उत्तम भूमि है। धार्मिक चेतना के जागरण का केन्द्र-बिन्दु है; जहाँ से ज्ञानाग्नि चिनगारी चिटक-चिटक कर सुदूर स्थलों को प्रकाशित करती रही, जहाँ के आलोक-पुंज से धरती का कोना-कोना अपनी अलसायी आँखों को खोलकर जागरण की ओर बढ़ा। मानव कल्याण को ही एकमात्र जीवन का लक्ष्य माननेवाले जम्बूद्वीपस्थ तपस्वी, ज्ञानी महर्षिगण जहाँ आ-आ करके हजारों वर्ष ज्ञानयज्ञ करते रहे; जहाँपर बजनेवाला सनातन धर्म का डंका धर्म विचालितों को "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" का पाठ पढ़ा कर सत्पथ-दर्शन कराता रहा; सत्यवती नन्दन पाराशर व्यास ने वेदों का विस्तार कर जहाँ व्यास की उपाधि को धारण किया; सकल शास्त्रविद् पौराणिक लोमहर्षण सूत की लोमहर्षक वाणी ने जहाँ आख्नोपाख्यानमयी पीयूष की अविरल वर्षा कर महर्षियों को सराबोर कर दिया; जिसके परिणामस्वरूप दिग्दिगन्तों को अभिषिञ्चित करने के लिये पुराणस्वरूप पावन सोते धारारूप में बह निकले; जहाँ आदि-अनादि अनन्त, अखण्ड, अच्छेद्य, अभेद, निर्गुण निराकार परब्रह्म मनु की घोरातिघोर तपस्या से द्रवित हो सगुणरूप में अवतरित होने को बाध्य हुआ; राम, कृष्ण और कल्कि जैसे महान् अवतार जहाँ के तपोबल के ही परिणाम हैं; अयोध्या, मथुरा, द्वारिका आदि का महत्त्व जिस भूमि का ही प्रसाद है।

परार्थ के लिये आत्मोसर्ग करने वाले परोपकार के एक अनुपम उदाहरण महर्षि दधीचि की तपःस्थली "मिश्रित", जहाँ आज भी लोगों को दानशीलता का पाठ पढ़ा रही है। मिश्रित धर्मपुष्करणी समस्त तीर्थों के जल को आत्मभूत कर सब तीर्थ समागम को अभिलक्षित कर रही है। मार्कण्डेय मुनि के द्वारा लायी गयी सरस्वती और कश्यप के द्वारा लायी गयी काश्यपी गंगा जहाँ विद्यमान है। रुद्रावर्त, ब्रह्मावर्त जैसे पवित्र सनातन गंगोद्भेद जहाँ सर्वसिद्धिदा गोमती में आज भी विद्यमान हैं। गंगोद्भेद जिसका वैशिष्ट्य महाभारत में मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया गया है, वह

आज भी गोमती के कूल पर रुद्रावर्त के नाम से एवं विष्णवावर्त के नाम से प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः इसकी सजीवता आज भी द्रष्टव्य है। बालुकामय शिवलिंग एवं "ॐ नमो शिवाय" के साथ जिसमें डाला गया बिल्व-पत्र समाहित हो बम-बम निनाद की प्रतिध्वनि करता प्रतीत होता है।

वस्तुतः यह महान तीर्थ आज भी सहस्रों भक्तों के आश्चर्य और श्रद्धा का प्रतीक बन कर रहा है। जो भूमि इक्ष्वाकु-वंशियों के लिये अपवर्ग का हेतुभूत बनी रही, जहाँ की पवित्रता देख मान्धाता ने यज्ञ किया, उन्हीं का अनुसरण कर श्री राम ने भी जहाँ कई बार अपने लौकिक कृत्यों को सम्पादित किया; जहाँ के कण-कण की पवित्रता और रमणीयता को देख भगवान् राम उटजों में रहते हुए प्रासाद के सुख को भी भूल गये; भगवती सीता माता के सतीत्व की पुनः परीक्षा-रूप अन्याय को न सहन कर जहाँ की धरती फट गयी और सीता को अपने अंक में छिपा लिया; तीर्थयात्रा-प्रसंग में आये हुए पाण्डवों ने जहाँ लोकोत्तर आनन्द को प्राप्त कर विधिवत् स्नान-दान किया। यह ही नहीं, दैत्यराज प्रह्लाद भी जहाँ के पावन व दिव्यगुणों को गुरुमुख शुक्राचार्य से सुनकर आने के लिये विह्वल हो उठा और 'पृथिव्यास् नैमिषं पुण्यम्' जैसे आप्तवाक्य ने उसे तीर्थयात्रा के लिये उत्प्रेरित कर दिया। उसने समस्त दैत्य सेना के साथ नैमिष के तीर्थों का भ्रमण व स्नान प्रारम्भ कर दिया और भगवान् सुवर्णाक्ष शंकर, देवदेव (देवेश्वर) पीतवासस विष्णु, गोपति आदि के दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक बनाया। जहाँ पर विश्वामित्र और वशिष्ठ का अपनी श्रेष्ठता के प्रदर्शन में वाग्युद्ध हुआ था; जहाँ शौनक जैसे ज्ञान-पुंगव महाव्रती सनातन धर्म-स्तम्भ महर्षि रहते थे, वहीं पर अपने अपमान को न सहन कर सकनेवाले रागी मुनि बकदाल्भ्य भी थे, जिन्होंने धृतराष्ट्र के यहाँ अपमानित होने पर अवकीर्ण नामक सर में अपने माँस को काट-काट कर डाल दिया। दक्ष प्रजापति और शंकर के बीच होने वाला मन मुटाव, जो कि बाद में चलकर सतो के यज्ञ में ध्वंश होने का कारण बना, वह भी यहीं है। राजा ऐल पुरूरवा अपनी उर्वशी को लेकर जहाँ विचरण करते हुए पहुँचा था; जहाँ अद्भुत रत्न-मण्डित यज्ञवाट् ने उसके मन में तृष्णा की लौ प्रदीप्त कर दी। रत्न-लोलुप पुरूरवा रूप-तृष्णा का ऋषि गणों ने विनाश ही कर डाला; जहाँ बलराम की तीर्थयात्रा सूत-वध रूप अन्याय एवं पातक की संकीर्ण भावनारूप घृणित कहानी है। ऐसा दिव्य सकलतीर्थोपसेवित जन-मन आह्लाददायक नैमिषारण्य अतीत काल से ही भारतीय संस्कृति का केन्द्र-बिन्दु रहा है।

कालिदास की वाणी भी नैमिष का गुणगान कर तृप्त न हो सकी। तुलसीदास जी रामचरितमानस को रचते समय नैमिष की पावन गरिमा का मुक्तकण्ठ से गान कर उठे। यही कारण था कि उन्होंने यहाँ की यात्रा भी की। महाराजा चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने नैमिष को पवित्रता को समझ यहाँ पर मन्दिरों का निर्माण तक करवाया। पन्द्रहवीं शताब्दी में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी तीर्थयात्रा-प्रसंग

में नैमिष में सर्वप्रथम अपनी ज्ञान-गोष्ठी को। शङ्कराचार्यों के लिए भी यह प्रथम पूज्य रहा है।

नैमिषारण्य अरण्य मात्र ही नहीं था। यहाँ ईशा पूर्व में विकसित नगरीय सभ्यता के अवशेष प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। यह तो सर्वविदित है कि अति प्राचोन काल में यह ऋषियों, महर्षियों की तपोभूमि रही। परन्तु कालान्तर में यहाँ की सुख-सुविधापूर्ण भूमि से लोग आकृष्ट हुए और यहाँ लोगों ने अपना निवेश बनाना प्रारम्भ कर दिया और स्थायीरूप से रहने लगे। यहाँ मौर्यकालीन संस्कृति के भी यत्र-तत्र चिह्न मिले। खुदाई करने पर मिलने वाली ईटों की नींव तथा अनेक प्रकार के मिट्टी के बरतनों के अवशेष, मिट्टी को पकायी हुई विविध प्रकार की मूर्तियाँ इस स्थान की प्राचीनता को व्यक्त कर रही हैं। यह नगरीय-सभ्यता गोमती के उत्तरी ओर बायें तट पर विशाल भू-भाग पर फैली हुई थी। कुछ लोगों से यहाँ ५६ सराय और ५२ मुहल्लों को बात सुनने को मिलतो है। शुङ्गो और कुषाणों का काल यहाँ नगरीय-सभ्यता से परिपूर्ण था। पाण्डवों का किला नाम से विख्यात स्थान पर जहाँ आज भी एक प्राचोन पाषाण खण्डों का बना हुआ द्वार (फाटक) देखने को मिलता है। इसी स्थान के टीले पर इन्हीं पत्थरों से निर्मित कभो बहुत ही भव्य विशाल मन्दिर बना हुआ था जिसके पाषाण दूर-दूर तक भूमि में काफी गहरायी से प्राप्त होते हैं। इन पाषाणों के ऊपर नाना प्रकार को मूर्तियाँ भी बनो देखने को मिलती हैं।

यहाँ की संस्कृति क्रूर मुस्लिम शासकों की दुर्भावना का कितना अधिक शिकार रही है, यह वर्तमान में छिन्न-भिन्न प्रकीर्ण देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ हा मूक हो गवाही दे रही हैं। ब्रह्मावर्त में स्थित चतुर्मुखी शिवलिंग, जिसके चारों मुख खड्ग प्रहार से विच्छिन्न हैं, देवदेवेश्वर का शिवलिंग जिसका अर्ध भाग तलवार से काटा गया है, इसी प्रकार शतशः खण्डित छिन्न-भिन्न मूर्तियों के उदाहरण, यह गवाही देते हैं कि यहाँ की संस्कृति मटियामेट करने की चेष्टा की गयी थी। मगर कुछ ईश्वर का ऐसा विधान रहा कि जिसने हमारी संस्कृति को मिटाना चाहा, वह स्वतः ही मिट गया। कालान्तर में अनेक हिन्दू-धर्म-पोषकों ने इसकी प्राणपण से रक्षा की। अहिल्या बाई आदि ने इस तीर्थ को रक्षा की तथा पुनरुद्धार भी कराया।

आज नैमिषारण्य उपेक्षित होकर भी अपने पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य को तथा तपःपूत कान्ति को चार्तुदिक् बिखेर रहा है और भारतीय संस्कृति के विपुल भण्डार को उर में छिपाये हुए है। न जाने यहाँ की धूलि में कौन सा जादू भरा पड़ा है कि इस क्षेत्र में प्रवेश करते ही भक्त को श्रद्धावनत कर देता है। यहाँ आज भी प्रकृति के मुक्त वातावरण में आहिताग्नियों, साधुओं, सन्न्यासियों का अविकल राम-नाम हुआ करता है। देश के कोने-कोने से आनेवाले यात्रियों की परम श्रद्धा की प्रतीक यह पावन भूमि आज भी पृथ्वी लोक का वैकुण्ठ-धाम है।

ऐसी दिव्य पावन गरिमामयी भूमि की हम नित्य वन्दना करते हैं; और आशा करते हैं कि सरकार इस महान तीर्थ को बनाये रखने के लिये सतत उद्यत रहेगी।

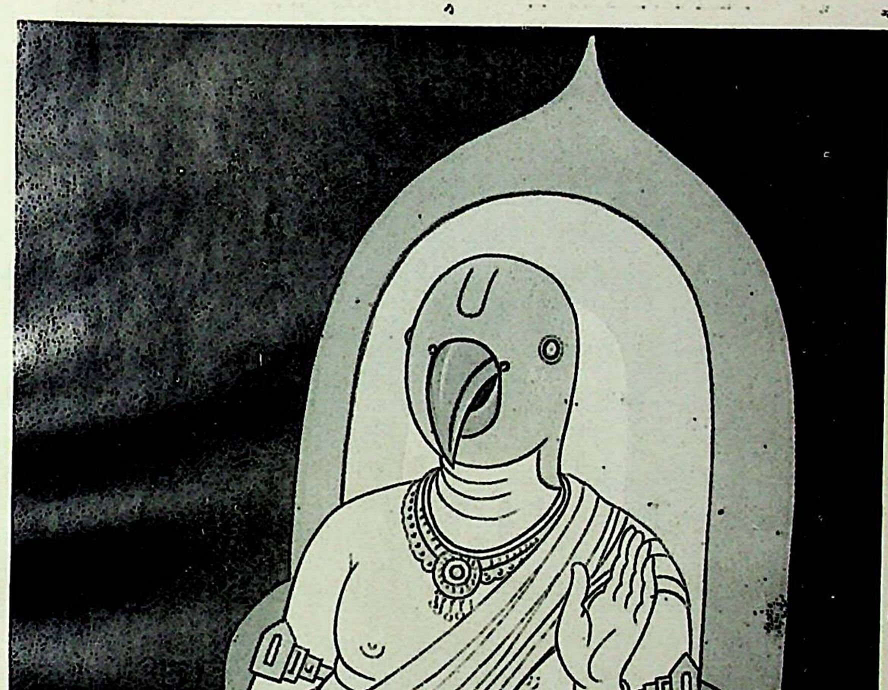
मैं उन ज्ञात-अज्ञात समस्त मनीषियों का विशेष आभारी हूँ, जिनसे मुझे काफी सहयोग मिला। मुख्यतया पौराणिक-वैदिक-शोध संस्थान के कीर्तिस्तम्भ वन्दनीय गुरुवर पं० श्रीगौरीनाथ शास्त्री जी व श्रीपातू ब्रह्मचारी जी की प्रेरणा से मुझे इस कार्य में बहुत सम्बल मिला।

—महेन्द्र वर्मा, "मधूप"

विषयानुक्रमणिका

"सैन्धवं दण्डकारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम् ।
उपलावृत्तमारण्यं जम्बूमार्गोऽथ पुष्करम् ॥
हिमवानर्बुदारण्यमुत्तमः परिकीर्तितः ।
नवस्वेतेष्वरण्येषु यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
ब्रह्मलोकातिथिर्भूत्वा स याति परमं पदम् ॥"

—देवीपुराण



पुराणं चम्पकाभासं शुकवक्त्रं च तुन्दिलम् ।
अक्षसूत्राभयं ज्ञेयं नानाभरणभूषितम् ॥

नैमिषारण्य

प्रथम अध्याय

समस्त भारत तीर्थ है। पूरब से लेकर पश्चिम तक तथा उत्तर से लेकर दक्षिण तक देश के कण-कण की पवित्रता स्वतः अपनी गरिमा को कह रही है। देश की माटी ही प्रभा-भास्वर है। ऋषियों-मुनियों-तपस्वियों का तपःप्रभाव यहाँ के कण-कण को देदीप्यमान कर चमत्कृत कर दिया है। यह समस्त भारत ही ऐसा चिन्मय है कि जहाँ भी चाहें वहीं बैठ कर भगवान् की अर्चना वन्दना कर सकते हैं और तन्मय हो परब्रह्म को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् को भारत भूमि ही अतीव प्रिय है,[1] यही कारण है कि भगवान् के जितने भी अवतार हुए हैं, वे सभी अवतार भारतवर्ष में ही हुए हैं। भारत की गरिमा कहाँ तक कही जाय, जब कि देवता लोग भी स्वर्ग के अमन्दानन्द सुख को भूलकर इस भारत के धरा-धाम पर जन्म लेने के लिए तरसते रहते हैं[2]। भारत कर्मभूमि है, धर्म भूमि है और ज्ञान-भूमि है। यहाँ पर किया गया कर्म ही मनुष्य को ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख को देने वाला है। वह भारतवासी धन्य है तथा उसका जन्म सार्थक है, जिसने भारत-माता की गोदी में पलने और पनपने का सौभाग्य पाया है[3]। यह वही धरा धाम है, जहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराघव साधुओं के परित्राण और दुष्टों के विनाश के लिए अवतीर्ण हुए। श्रीकृष्ण जैसे पूर्ण-कलावतार ने अर्जुन को कर्म से विरत होते हुए देख गीता-ज्ञान के द्वारा कर्म में प्रवृत्त

---

१. 'अवध सरिस प्रिय मोहि न कोऊ। यह चरित्र जानइ कोउ-कोऊ॥
(रामचरितमानस)

२. गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥
(गरुड पु० उ० खं० ११६)

३. 'निवासं भारते वर्षे आकांक्षन्ति सदा सुराः।
स्वर्गापवर्गफलके तत्पश्यामः कदा वयम्॥ (ब्रह्म० पु० २७।९)
न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भूतले।
यत्र विप्रादयो वर्णा प्राप्नुवंत्यभीप्सितम्।
× × ×
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम्॥
(ब्रह्मपुराण — २७।७१-७२)

किया। महावीर, बुद्ध जैसे लोगों ने संसार को उपदेश दिया। जहाँ के ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों, नीतिज्ञों और शास्त्र-वेत्ताओं ने मानव के कर्तव्य-मार्ग का निर्देश किया, उस भारत भूमि का गुणानुवाद करना संभव नहीं[1]। स्कन्दपुराण में भारत को समस्त देशों में उत्तम कहा गया है, जहाँ पर महान् व्रताचरण करनेवाले मुनिगण सतत तपस्या में रत रहते हैं[2]।

यहाँ समय-समय पर अद्वितीय विभूतियों का आविर्भाव हुआ। उन विभूतियों ने जप-तप-न्याय और धर्म के द्वारा उस अपने विशेष क्षेत्र को पवित्र तो बनाया ही, साथ ही साथ घूम-घूमकर सर्वत्र अपनी तपोमयी-साधना की किरणों से दीप्ति प्रदान की। उनका अध्यात्म-ज्ञान आत्म-प्रकाश से आगे बढ़कर जग को प्रकाशित करने लगा। जहाँ उन्हें ज्ञान-प्रकाश मिला, उनकी वह तपोभूमि ही तीर्थ बन गयी। ये तीर्थ ही लोक-कल्याण के लिए, मन की उद्विग्नता की शान्ति के लिए—लौकिक तथा पारलौकिक सुख के साधन बने। स्कन्दपुराण में पृथ्वी पर पुण्यतम स्थान की अभिव्यक्ति करते हुए कहा गया है। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड में भी इसकी इसी तरह से पुष्टि की गयी है।

पुराणप्रथिता पुण्या महानद्यो नदास्तथा।
महोत्सवैर्भवेद्यत्र भगवत्प्रतिमार्चनम्॥
प्रभोरनन्यभक्ताश्च भवेयुर्यत्र यत्र च।
अहिंसाश्च स्वधर्मस्थाः स्युर्ब्राह्मणोत्तमाः।
मृगाद्या पशवो यत्र विचरेयुश्च निर्भयाः।
यत्र यत्रावताराश्च हरेर्वासश्च यत्र वा।
एते पुण्यतमा देशा भुवि सन्ति विशेषतः॥

सारांशरूप से उपर्युक्त विभिन्न प्रकारों वाले पुण्य स्थान ही आगे चलकर तीर्थरूप में ख्यात हुए।

यस्मिंस्तीर्थे तु यो देवो दानवो वा द्विजोऽथवा।
सिद्धस्तेनैव तन्नाम्ना ख्यातं लोके महच्च तत्॥
(स्कन्द पु० ५।३१।६-७)

नौ ऊषर—

रेणुका शूकरः काशी काली कालवटेश्वरौ।
कालञ्जरो महाकाल ऊषरा नव कीर्तिताः॥
(अवन्तीक्षेत्र–५।१।३१)

---

१. 'कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान् द्विजाः।
(तदेव—१७।७८)

२. देशः सर्वोत्तमस्त्वेष भुवि यो मदधीष्ठितः।
महामुनिगणा यत्र तपस्यन्ति महाव्रताः॥
(स्कन्दमहापु० वैष्णवखंड–२२।१९, नागप्रका० १९८२ पृ० १८२)

यहाँ ऊषर से तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ऊषर में बोया गया बीज अंकुरित नहीं होता, उसी प्रकार इनमें किया गया कर्म भी प्रारब्ध मात्र के कर्म-फल-भोग के लिए ही रहते हैं।

इसीलिए भारत में अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्ती और द्वारकापुरी सात मोक्षदायक पुरियाँ प्रख्यात हैं[1]। सैन्धवारण्य, दण्डकारण्य, नैमिषारण्य आदि नौ पवित्र अरण्य भी प्रसिद्ध हैं, जहाँ पर मृत्यु भी मुक्ति का साधन होती है[2]। कतिपय ऊषर-क्षेत्र भी कर्मबीज के नाशक कहे गये हैं। भागवतमहापुराणकार ने 'यत्र यत्र हरेश्चर्चा स देशः श्रेयसां पदम्' कहा है[3]। मन को संयत रखने वाले इन्द्रिय निग्रही मुनि लोग जहाँ निवास करते हों, वही कुरुक्षेत्र नैमिष पुष्कर आदि है। आज का मानव भी अपने पितामह-प्रपितामहों के चरण-चिह्नों को कभी नहीं भूलता है। वह उनके वताये गये मार्गों का अनुसरण करता है। वैज्ञानिक युग जितना ही आगे बढ़ रहा है, उतनी ही मानव की आध्यात्मिक भावना उद्दीप्त होती दिखाई दे रही है। यह निश्चित है कि जब तक सृष्टि का क्रम चलता रहेगा, मानव धर्म-स्थानों व धार्मिक भावनाओं से अविच्छेद्य शृङ्खला की भाँति जुड़ा रहेगा। धर्म-निरपेक्ष विज्ञान के अस्तित्व को शून्य की ओर ही अग्रसर करेगा।

इन्हीं धार्मिक भावनाओं का प्रकाश-पुंज नैमिषारण्य भी है, जो वैदिक काल से लेकर आज तक अक्षुण्ण बना हुआ है। इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व महत्ता क्या है? इसी से प्रेरित होकर प्रस्तुत प्रबन्ध में नैमिषारण्य का विशद विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वैदिक साहित्य और नैमिषारण्य—

यह शंका निर्मूल है कि तीर्थ वैदिक काल के न होकर अर्वाचीन हैं। विभिन्न वैदिक-संहिताओं के अवलोकन से तीर्थों की प्राचीनता सुव्यक्त है। हाँ यह बात

---

१. अयोध्या-मथुरा-माया-काशी-काञ्ची-अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिकाः॥
एताः पुण्यतमाः प्रोक्ताः पुरीणामुत्तमोत्तमाः॥ ब्रह्माण्डपु० ललितोपाख्यानम् ३६-९९, पृ० ३९६, निर्णय सागर मुंबई प्रका० व तीर्थप्रकाश पृष्ठ—११८, काशीखंड-२५।३७।

२. सैन्धवं दण्डकारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम्।
उपलावृत्तमारण्यं जम्बूमार्गोऽथ पुष्करम्॥
हिमवानर्बुदारण्यमुत्तमः परिकीर्तितः।
नवस्वेतेष्वरण्येषु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्मलोकातिथिर्भूत्वा स याति परमं पदम्॥ (देवीपुराण—७४।२८-३०]

३. श्रीमद्भागवतम्—७।१४।२९-३३।

सत्य ही हो सकती है कि उनका स्थूल विवरण नहीं आया है; किन्तु सूत्ररूप में तो अवश्य ही कथन हुआ है। नैमिषारण्य की सांकेतिक चर्चा वेद में है और उसका उपवृंहण पुराणों की देन है; क्योंकि पुराण और इतिहास वैदिक-साहित्य के विशद विश्लेषण हैं। अतः 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत' यह पुराण-वचन ही इसका साक्ष्य वर्णन कर रहा है।

वैदिककालीन संहिताओं और ब्राह्मणों में 'नैमिश' (नैमिष) नाम का उल्लेख मिलता है। 'सार्मविधानब्राह्मण' में एक स्थान पर 'द्वादश संवत्सर' साध्य सत्र का विवेचन करते हुए इस प्रकार कहा गया है—"संवत्सरमष्टमे काले भुञ्जानो ग्राम्यमन्नं प्र तु द्रवेति दशतमावर्तयन् नैमिषीयम् द्वादशसंवत्सरमवाप्नोति[1]।'

सायणाचार्य ने इसका भाष्य करते हुए लिखा है—"अथ द्वादशसंवत्सरसाध्य-सत्रार्थं प्रयोगमाह--संवत्सरमिति। संवत्सरं संवत्सरपूर्तिपर्यन्तं ग्राम्यमन्नं अष्टमे काले भुञ्जानः। एकस्मिन् दिवसे अहनि रात्रौ चेति भोजनस्य कालद्वयाङ्गीकाराद् दिवस-त्रयमुपोष्य चतुर्थे दिवसे रात्रौ भोजनस्याष्टमः कालो भवति। एवमुत्तरत्रापि। अष्टमे काले भुञ्जानः इतरेषु कालेषु अनश्नन् प्र तु द्रवेति दशतं प्र तु द्रव परिकोषम् (साम ८४२३) इति दश वर्गं नित्यकर्माविरोधेन संवत्सरमावर्तयन् नैमिशीयम् नैमिशमरण्यम् ऋत्याः महर्षयो नैमिशीयाः तैरनुष्ठितं द्वादश संवत्सरं सत्रम् अवाप्नोति[2]।"

आशय यह है—नैमिषारण्य में रहने वाले महर्षियों ने काल के आठवें भाग करके तथा अन्य कालों में निराहार रहते हुए बारह वर्षीय सत्रयाग को सम्पन्न किया। ताण्ड्यब्राह्मण में भी कहा गया है—"नैमिश नैमिशीय एतेन (द्वादशसंवत्सराख्येन सत्रेण) वै नैमिषीयाः सर्वामृद्धिमार्ध्नुवन्।' इसके अतिरिक्त जैमिनीय[3] तथा शांखायन[4] ब्राह्मणों में भी 'नैमिश', 'नैमिषीयाः' तथा 'नैमिषीयाणाम्' का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण काल[5] में नैमिश (नैमिष) अरण्य विशेष नाम से विदित था। काठक-संहिता[6] में प्रयुक्त नैमिष्य (ष्याः) शब्द संभवतः नैमिषारण्य में रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।

वेदाङ्गों में भी नैमिष का वर्णन प्राप्त होता है। नैमिष की प्रसिद्धि इस काल में भी अनिवार्यरूप से थी। कहीं-कहीं पर 'नैमिशम्', कहीं 'नैमिषे' तो कहीं 'नैमिषारण्ये' इस शब्द का उल्लेख मिलता है।

श्रौतसूत्र भी 'नैमिश' से अपरिचित नहीं थे। इनमें भी यत्र-तत्र नैमिष का वर्णन प्राप्त होता है। आपस्तम्बश्रौतसूत्र में 'नैमिषीय'[7] और 'नैमिषायाणाम्' शब्द

---

१. सामविधानब्राह्मण—४।१०।५;
२. ताण्ड्यब्रा०—२५।६।४;
३. जैमिनी०—१।३६४;
४. वही—१।३६३; २।४२;
५ शाङ्खा०—२६।५; २८।४।
६. काठकसंहिता—१०।६०।
७. आप० ४२।२।४।

का उल्लेख आया है, जिससे नैमिषारण्य में रहनेवाले ऋषियों का बोध होता है। अन्य श्रौत-सूत्रों में भी 'नैमिषायण' शब्द का प्रयोग मिलता है, जो नैमिष का ही बोध कराता है। छान्दोग्य[1] और छागलेयोपनिषद्[2] में भी क्रमशः नैमिषीय और 'नैमिष' का नाम आया है। वस्तुतः नैमिष उस समय में एक घोर अरण्य था, जिसमें भयानक जंगली जानवर निवास करते थे[3]। इस घोर वन में ही यज्ञादि में निरत परब्रह्म के अन्वेषण में तत्पर ऋषि-महात्मा निवास करते थे। इन ग्रन्थों में 'नैमिश' शब्द का प्रयोग इस बात की पुष्टि करता है कि नैमिष आदि काल से ही पवित्रतम तपोभूमि रही है।

वाल्मीकि रामायण और नैमिषारण्य—

आर्ष महाकाव्य रामायण के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि निश्चय ही नैमिषारण्य से सुपरिचित थे। इनके काव्य में नैमिषारण्य के महत्त्व के प्रति मिलने वाली शब्द-योजना ही, यह स्थान महर्षि के द्वारा सर्वथा सुपरिचित था, इसे अभिव्यक्त करती है[4]। रामायण के प्रमुख नायक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराघवेन्द्र को नैमिष अतीव प्रिय था। इसीलिए उन्होंने गोमती के पवित्र तट पर महान् यज्ञ करने का संकल्प किया। इस यज्ञ में सैकड़ों धर्मवेत्ता और याज्ञिकों ने भाग लिया। राम को यह ज्ञात था कि इस पवित्र भूमि पर किया गया यज्ञ अतीव उत्तम फल देने वाला है। रामायण के उत्तरकाण्ड में महर्षि ने लिखा है कि 'लोकरंजन भवभय भंजन श्रीराम पुरजन व सेना के साथ नैमिष पधारे[5]। यहाँ पर अद्भुत यज्ञवाट का निर्माण कराया गया, जिसे देख श्रीराम अतीव प्रसन्न हुए थे। उनके इस अश्वमेध यज्ञ में जिस समय ये नैमिष में ही वास कर रहे थे, सुदूर देश के राजा-महाराजाओं ने यहाँ आकर उन्हें नाना प्रकार के उपहार प्रदान किया[6]। आज भी यहाँ गोमती-तट-स्थित दशाश्वमेधघाट भगवान् राम के अश्वमेध यज्ञ की याद दिलाता है।

'नैमिषे वसतस्तस्य सर्व एव नराधिपाः।
आनिन्युरुपहारांश्च तान् रामः प्रत्यपूजयत् ॥

महर्षि के इस उपर्युक्त प्रसङ्ग से नैमिषारण्य की प्राचीनता व पवित्रता का

---

१. छान्दोग्य-उप०—१।२।१३-१४।

२. छागलेय-उप०—१।

३. 'अर्यते गम्यते वनत्वेन श्वापदैरिति अरण्यम्।'

४. वाल्मीकिरामायण उ० का० सर्ग ९१।१५-१७।

५. ऋत्विग्भिः लक्ष्मणं सार्धमश्वे च विनियुज्य च।
ततोऽभ्यगच्छत्काकुत्स्थः सह सैन्येन नैमिषम् ॥ (तदेव—९२।२)

६. तदेव—९२।४

अपने आप ही प्रमाण मिल जाता है। नैमिषारण्य उस काल में कितना पावन था। नैमिषारण्य त्रेतायुग में भी अतीव पावन एवं मन-भावन था।

महाभारत और नैमिषारण्य—

महर्षि पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास जिन्होंने एक लाख श्लोकों में 'महाभारत' की रचना की[१]। आज तक संसार में इतना बृहद् और समस्त काव्योचित गुणों से परिपूर्ण कोई भी ग्रन्थ नहीं है। यह अपने आप में अनुपम है[२]। इसी महाभारत में वेदव्यास ने नैमिषारण्य का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही उत्कृष्ट और प्रामाणिक है। महाभारत-काल तक नैमिष तीर्थ के रूप में अत्यधिक प्रसिद्ध हो चुका था। यह अत्यधिक पुण्यप्रद और द्विजगण से सेवित था। प्रजापति ब्रह्मा यहाँ देवगणों के साथ ही निवास करते थे[३]। ऐसा विश्वास था कि जो भी व्यक्ति इस नैमिष में एक मास तक नियमित होकर तीर्थ का सेवन करता है, निश्चित ही वह राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है। अधिक क्या पृथ्वी पर जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी नैमिष में ही हैं। "पृथिव्याम् यानि तीर्थानि नैमिषे तानि भारत"।

महाभारत का यह उपर्युक्त प्रसंग वर्तमान नैमिषारण्य में स्थित समस्त तीर्थों की स्थिति को अभिव्यक्त करता है। महर्षि वेदव्यास ने इसी नैमिषारण्य में ही चारों वेदों का विभाजन और अष्टादश पुराणों की रचना की थी। गोमती-तट-स्थित वर्तमान व्यास-गद्दी ही व्यास की कृति एवं तपोभूमि का परिचायक है।

महाभारत का काम्यवन और नैमिष—

महाभारत के वनपर्व में काम्यतीर्थ का उल्लेख हुआ है। यह काम्यसर नहीं हो सकता। वनपर्व में अनेक स्थानों पर उल्लिखित यह काम्यवन सरस्वती नदी के किनारे मरुन्धय में स्थित था। यहाँ पर अनेक आश्रम, रमणीक जलाशय और ह्रद भी थे। यहाँ बड़े-बड़े हाथियों का भी उल्लेख मिलता है। काम्यसर की तुलना हम काम्यवन से करेंगे; क्योंकि हाथी तो वन में ही निवास करते हैं। अतएव यह वन सरस्वती के तट पर स्थित था। मुख्य रूप से हाथियों की उत्पत्ति भारत के आठ वनों में थी। महाभारत में वर्णित हाथियों का वर्ण लाल कहा गया है। ये ऐरावत गज कुछ कमलवर्णाभ भी हुआ करते थे। इस जाति के हाथी विशेष रूप से प्राच्यवन, हिमालय प्रयाग, लौहित्य और गंगा के बीच महावनों में ही होते थे। यह वन सरस्वती और

---

१. धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च पुरुषर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥ (महाभारत)

२. ततश्च नैमिषं गच्छेत्पुण्यं द्विजनिषेवितम्।
तत्र नित्यं निवसति ब्रह्मा देवगणैः सह॥ (महाभारत)

३. वही—महाभारत।

मरुन्धव से अलग हैं, अतएव काम्यक सर और इन हाथियों की पहचान सम्यक् प्रकार से नहीं हो सकती है। काम्यकवन छोटा नागपुर में भी होना असम्मत है। नागपुर गोमती के किनारे नैमिष के पास ही स्थित था। उपर्युक्त विचार और तर्क डा० अवस्थी ने अपनां पुस्तक में प्रस्तुत किया है। मेरे विचार से गोमती के तट पर 'नागाह्वयम् पुरम्' का वर्णन मिलता है। आज भी नगवा (पड़ाव स्थान) नाग नामक राजाओं की राजधानी बतलायी जाती है। दूसरां बात भी ध्यातव्य है कि गोमती के तट पर कामवन नाम से विख्यात एक स्थान विशेष भी है। संभव है कि महाभारत का काम्यवन नैमिष का काम्यवन हो।

पुराण और नैमिषारण्य—

पुराण और नैमिषारण्य दोनों का सापेक्ष सम्बन्ध है। पुराणों का माहात्म्य नैमिष से है और नैमिष पुराणों से चर्चित एवं सुप्रतिष्ठित है। पुराणों की चर्चा के साथ ही नैमिषारण्य का नाम सामने आ जाता है। इसका कारण यह है कि नैमिष में ही किसी समय ८८ सहस्र ऋषियों ने मिलकर ज्ञान-यज्ञ किया था। उसके प्रमुख थे शौनक। संयोगवश तीर्थ-यात्रा के प्रसंग से निकले हुए व्यास जी के परम शिष्य सूत जी यहाँ पधारे।

लोगों ने उन्हें देखा तो उनके हर्ष की सीमा न रही। अपने बीच में साक्षात् भगवान् के अवतार एवं समस्त शास्त्रों में निष्णात सूत को देख शौनकादि ने उनसे शास्त्रों और पुराणों को सुनाने के लिए निवेदन किया। तदनन्तर सूत जी ने शौनकादि ऋषियों को इसी अरण्य में पुराणों व अन्य शास्त्रों को सुनाया। इसका वर्णन पुराणों में अनेक स्थल पर मिलता है[1]।

'सत्यनारायण व्रतकथा' जो कि जन-जन की पवित्र-भावनाओं की आराध्या बन चुकी है, इसी नैमिष की गरिमा की अमर निशानी है[2]। यदि देखा जाय तो पुराण ही नैमिष को एक सर्वाधिक सुप्रतिष्ठित तीर्थ के रूप में प्रख्यात करने वाला है। इस काल में नैमिष-तीर्थ रूप में अपनी महत्ता की धर्म-ध्वजा को फहरा रहा था। लोग सुदूर देश से तीर्थ-यात्रा के लिए यहाँ आते और अपने मन की अशान्ति और संताप को दूर करते थे। यही कारण था कि एक समय ऐसा आया जब कि पृथ्वी पर एक मात्र तीर्थ 'नैमिष' ही जन-जन में प्रतिष्ठित था—

---

१. ब्रह्मपु० १।१–१६; पद्मपु० २।१।२-८; भाग, महापु०–१।३, अग्निपु०–१।३; गरुड़पु० १।३-५; स्कंदपु० १।३-५ व २.१; १ माहें० ४१।१-१० ३ ब्रह्मण्ड–१।२।८ अवन्ती–५।४, वायु–१।१।१६६-१६७।

२. स्कंदपुराणान्तर्गत रेवाखंड का अन्तिम भाग, सम्प्रति 'मोर-प्रकाशन' कलकत्ता में प्राप्त।

'पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
चक्रतीर्थस्तु महाबाहो पातालतले विदुः[१] ॥

पाणिनि और नैमिष—

प्रसिद्ध अष्टाध्यायी व्याकरण-ग्रन्थ के प्रणेता पाणिनि को कौन नहीं जानता ? जिन्होंने सूत्रों में ही व्याकरण के नियमों में आवद्ध कर दिया। पाणिनि का विषय है व्याकरण; फिर भी कवि या लेखक अपने देश-काल तथा समाज से अछूता नहीं बच सकता। यही कारण है कि अष्टाध्यायी के सूत्रों में यत्र-तत्र विभिन्न देशों के नाम, वनों के नाम तथा नदियों के नाम मिलते हैं। अष्टाध्यायी में एक स्थान पर छह वनोंके नाम मिलते हैं, यथा—(१) पुरगावण, (२) मिश्रिकावण, (३) सिध्रकावण, (४)शारिकावण, (५) कोटरावण एवं (६) अग्रेवण। इनमें 'मिश्रिकावण', जो कि नैमिषारण्य-क्षेत्र के अन्तर्गत वर्तमान मिश्रित के नाम से प्रख्यात है, सम्भवतः पाणिनि का मिश्रिकावण ही रहा होगा। तत्काल में यह पूरा क्षेत्र ही 'मिश्रिकावण' के नाम से ख्यात था, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है[२]।

कालिदास और नैमिषारण्य—

कविकुल-भास्कर 'कालिदास' ने 'रघुवंश' महाकाव्य के १९वें सर्ग में भगवान् श्रीराम चन्द्र जी के नैमिष आगमन का उल्लेख किया है[३]। भगवान् श्रीराम जिस समय चौथी अवस्था को प्राप्त हुए, उस समय उन्होंने अपने पुत्रों के ऊपर राज्य का भार सौंप दिया और 'चौथेपन नृप कानन जाहीं' के अनुसार नैमिषारण्य का सेवन किया। यहाँ पर स्थित तीर्थ जलों से युक्त दीर्घिकाएँ, वापियों के किनारे कुशों से युक्त सुन्दर भूमि उनको अतीव सुखकर लगी, जिससे वे उटजों में रहते हुए महलों के सुख को भूल गये। इस प्रकार का वर्णन कवि-कल्पना मात्र नहीं; अपितु कवि-दृष्ट ज्ञान का परिचायक है। इससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय में भी नैमिष अपनी मर्यादा की श्री को विखेर रहा था।

---

१. वामनपु०।

२. प्रा० भारत का भौगो० स्वरूप, पृ० ४९, लेखक डॉ० अवधविहारी लाल अवस्थी।

३. अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः स्वे पदे तनयमग्नितेजसम् ।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी ॥
तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः सञ्चिकाय फलनिःस्पृहस्तपः ॥

(रघुवंशमहाकाव्य—१९।१-२)

इतिहासकार टालमी और नैमिष—

विदेशी इतिहासकारों के लिए भारत बहुत ही जिज्ञासा का विषय रहा है। यही कारण है कि बहुत से इतिहासकार जैसे फाह्यान, ह्वेनत्सांग, मेगस्थनीज, टालमी इत्यादि भारत-भ्रमण के निमित्त आये। उन लोगों ने यहाँ पर भारत की तत्कालीन स्थिति को जैसा देखा, वैसा ही उल्लेख किया। इससे भारत के इतिहास को जानने में बहुत सुविधा मिलती है। अपने ग्रन्थ में टालमी ने एक स्थान पर बहुत से गाँवों, जनपदों व जातियों का उल्लेख किया है। इसमें एक जगह 'ननिखई' शब्द भी वर्णित है। डॉ० अवस्थी जी ने इसकी तुलना 'नमिसार' (नीमखार) से किया है। सम्भवतः टालमी की 'ननिखई' ही प्राचीन नैमिष रहा हो[1]।

उत्तर मध्यकाल व नैमिषारण्य—

उत्तर मध्यकाल में नैमिष वैसा ही प्रतिष्ठित था; किन्तु विदेशी आक्रमणों से सांस्कृतिक-मर्यादा बड़ी ही छिन्न-भिन्न सी दिखाई देती है। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया जाना, तरह-तरह से हिन्दू-तीर्थ-स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट करना एक तरह से हिन्दुओं के धर्म के प्रति कुठाराघात-सा दिखलाई पड़ता है। नैमिषारण्य भी इन धर्म-विध्वंसकों से अछूता नहीं बच सका था। जनश्रुति आज भी इस बात को पुष्ट करती है कि इन धर्म-विरोधियों के कारण तीर्थ की मर्यादा नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी[2]। चारों तरफ इन्हीं का बोलबाला था। इने-गिने हिन्दुओं के ऊपर, पुजारियों के द्वारा अत्याचार ढ़ाये जाते थे, जिससे यहाँ कोई भी टिक नहीं पाता था। समय में परिवर्तन हुआ, पास-पड़ोस के हिन्दू राजाओं का इधर ध्यान गया, जिससे यहाँ पुनः धर्म-ज्योति की किरण प्रभासित हुई। लोगों ने इन धर्म-विद्रोहियों का नाश कर दिया और नये युग का आरंभ हुआ। तब से पुनः नैमिष के इतिहास को लोगों ने सँवारना प्रारंभ किया।

पुष्टिमार्ग (शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय) के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी की सबसे पहली बैठक नैमिषारण्य में व्यासगद्दी पर हुई थी। आज भी व्यासगद्दी पर स्थित 'महाप्रभु की बैठक' नाम से एक स्थान बना है, जो उनके आगमन को पुष्ट करता है[3]।

इसी प्रकार से सन्त तुलसीदास जी भी तीर्थ-यात्रा करते हुए नैमिषारण्य

---

१. प्राचीन भारतीय भूगोल—पृष्ठ १८२।

२. अकबर के द्वारा विभिन्न धर्मों का समन्वय तथा औरंगजेब द्वारा हिन्दू-स्थानों को तोड़कर मस्जिदों का निर्माण, इसका इतिहास साक्षी है। नैमिष में लंगाह नामक लोगों का निवास। यत्र-तत्र ध्वंसावशेष एक मस्जिद व पुरानी कब्रिस्तानें इस बात की साक्षी हैं।

३. वल्लभवेदान्त (शुद्धाद्वैत) के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी थे।

आये थे। उन्होंने रामचरितमानस में मनु-सतरूपा के तप का वर्णन करते हुए लिखा है—

तीरथवर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता।
पहुँचे जाइ धेनुमह तीरा। हरषि नहाने निर्मल नीरा[१]।

यह वर्णन तुलसीदास का नैमिष के प्रति अनुराग और प्रत्यक्ष-दर्शन का परिचायक है।

प्राचीन एवं वर्तमान नैमिषारण्य का तादात्म्य—

किसी भी देश अथवा स्थान की प्रामाणिकता को जानने के लिए वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों को जानना अनिवार्य होता है। समय परिवर्तनशील है। समय-समय पर भौगोलिक परिस्थितयाँ भी बदलती रहती हैं। जो वस्तु आज से हजारों वर्ष पूर्व जिस तरह विद्यमान थी, कोई आवश्यक नहीं कि वह वस्तु उसी रूप में आज भी विद्यमान हो। इसलिए किसी भी स्थान व देश की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए मुख्यरूप से निम्न साधनों का सहारा लिया जाता है—१. लेख, २. पुरातत्त्व व अभिलेख, ३. जनश्रुति।

१. लेख व ग्रन्थ—

इसके अन्तर्गत वे समस्त प्राचीन ऐतिहासिक, राजनैतिक, धार्मिक ग्रन्थ आ जाते हैं, जिनको किसी काल व परिस्थिति में लिखा गया। यहाँ हम विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर यह प्रमाणित करेंगे कि प्राचीन नैमिषारण्य यही है, अन्यत्र नहीं। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस पर शंका व्यक्त की है कि भारतवर्ष में तत्-तत् स्थानों पर अनेक नैमिषारण्य मिलते हैं, अतएव किस नैमिषारण्य को प्राचीन माना जाये? कुछ लोग भारत में पाँच नैमिष बतलाते हैं; किन्तु मेरे विचार से भारत में पाँच नैमिष भले ही हों, मगर वास्तविक 'नैमिषारण्य' गोमती के पवित्र तट पर स्थित जनमनमोहक, तृषा-व्यपोहक तपोवन ही है, जिनके निम्न साक्ष्य दिये जा रहे हैं।

१. महाकवि वाल्मीकि के रामायण से नैमिष वन गोमती के तट पर होना निश्चित है[२]। भगवान् श्रीराम ने जो अश्वमेध यज्ञ 'नैमिष' में किया, वह गोमती के तट पर स्थित था। गोमती वर्तमान काल में प्रामाणिक ही है, अतएव वर्तमान नैमिषारण्य जो कि गोमती के तट पर स्थित है, यही प्राचीन नैमिषारण्य है[३]।

---

१. रामचरितमानस, तुलसीकृत बालकाण्ड से।

२. 'यज्ञवाटश्च सुमहान् गोमत्या नैमिषे वने।'
(वाल्मीकिरामा० उ० का० ९१।१५)

३. महाभारत—वनपर्व २०१।७०।

२. महाभारत के वन-पर्व में भी गोमती के परम पावन पुनीत तट पर ही नैमिष को बतलाया गया है। यथा—

ततो देवर्षि सहिता सरितां गोमतीमनु।
दशांश्चमेधना जह्ने जारुरथ्यां स निर्गलान् ॥

महाभारत के ही वनपर्व के एक अन्य उदाहरण से स्पष्ट है कि धौम्य मुनि सर्वप्रथम पाण्डवों को पूर्व दिशा के विषय में ज्ञान कराते हैं, जो कि राजर्षियों से सेवित था। उसी में देवर्षियों से सेवित नैमिष नाम का स्थान था, जहाँ पर देवताओं के पृथक्-पृथक् पुण्य-तीर्थ थे और जहाँ देवर्षियों से सेवित सुन्दर गोमती थी और जो देवताओं की यज्ञभूमि थी.....'। इसी पर्व से स्पष्ट है कि पाण्डव लोग अज्ञात वनवास के समय जिस नैमिषारण्य में आये, वह गोमती के ही तट पर स्थित था। यहाँ उन लोगों ने तीर्थ में अभिषेक किया और गोदान तथा धन आदि भी प्रदान किये।

ते तथा सहिता वीराः वसन्तस्तत्र तत्र ह।
क्रमेण पृथ्वीपाल नैमिषारण्यमागताः ॥
ततस्तीर्थेषु पुण्येषु गोमत्याः पाण्डवा नृप।
कृताभिषेकाः प्रददुर्गाश्च वित्तं च भारत ॥
(महाभा०, वनपर्व ।९५।१)

महाभारत के ही शान्तिपर्व में एक स्थान पर वर्णित है कि पूर्वकल्प में नैमिषारण्य में गोमती के किनारे पर 'धर्मचक्र' प्रवर्तित हुआ था।

यत्र पूर्वाभिसर्गेण धर्मचक्रं प्रवर्तितम्।
नैमिषे गोमतीतीरे तत्र नागाह्वयं पुरम् ॥

इन उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि नैमिष को गोमती के तट पर स्थित होना चाहिए।

३. आनन्दरामायण[१] में भगवान् श्रीराम के तीर्थ-यात्रा प्रसंग का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भगवान् श्रीराम नैमिष गये तथा वहाँ उन्होंने गोमती में स्नान किया, पौराणिक सूत को देखा तथा शौनकादिकों की पूजा की। इससे भी नैमिष का गोमती के तट पर स्थित होना निश्चित होता है।

---

१. ययौ स नौमिषारण्ये गोमत्या सविगाह्य च।
सूतं पौराणिकं दृष्ट्वा शोनकादीन् प्रपूज्य च ॥
स्नात्वा तद्ब्रह्मवैवर्तसरस्यथ रघूत्तमः।
(आनन्द रामा० यागकाण्ड, सर्ग—९।३१-३२)

४. पद्मपुराण[1] के उत्तरखंड में स्वायंभुव मनु ने गोमती के पवित्र तट पर स्थित नैमिष-वन में पुत्र-प्राप्ति के लिए एक हजार वर्ष तक तपस्या की थी, ऐसा वर्णित है। वर्तमान नैमिषारण्य में गोमती के तट पर स्थित मनु-सतरूपा की तपः-स्थली इस बात को प्रमाणित करती है, अतएव नैमिष वन यही है, अन्यत्र नहीं।

५. वामनपुराण के सरोमाहात्म्य-प्रसंग से भी जो चित्राङ्गदा व सुरथ[2] का आख्यान है, वह गोमती और काञ्चनाक्षी सरस्वती से जुड़ा हुआ है। वह वर्तमान नैमिष-वन की ही प्रामाणिकता को परिपुष्ट करता है।

६. पद्मपुराण के ही एक खंड में गोमती में गङ्गोद्भेद का वर्णन मिलता है। साथ ही साथ यज्ञ-वाराह देवदेव (देवदेवेश्वर) चक्रतीर्थ आदि का भी उल्लेख किया गया है[3]। वर्तमान नैमिषारण्य में ये सब स्थान आज भी हैं। अतएव नैमिषारण्य को अन्यत्र नहीं माना जा कसता है।

७. ८८ सहस्र ऋषियों ने मिलकर जिस नैमिष-वन में यज्ञ किया था, वह यही है, अन्यत्र नहीं[4]।

८. 'महाभारत' में कहा गया है कि पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, वे समस्त तीर्थ नैमिष में हैं[5]। वर्तमान नैमिषारण्य में तीर्थों की स्थिति तद्वत् मिलती है। अतएव नैमिषारण्य यही है, अन्यत्र नहीं।

९. नैमिषारण्य को पुराणों में देवीपीठ[6] कहा गया है। वर्तमान नैमिषारण्य में 'लिङ्गधारिणी' नामक ललिता का शक्तिपीठ है। अतएव नैमिष यही है, अन्यत्र नहीं।

१०. रामचरितमानस के प्रणेता तुलसीदास ने जिस नैमिषारण्य को गोमती[7]

---

१. स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णं महामनुम्।
जजाप गोमतीतीरे नैमिषे विमले शुभे ।। (पद्मपु० ६।२६९।१-१०)

२. वामन—३७।३०-४०, भार० काशीराज न्यास से प्रकाशित।

३. पद्म—५।११।६-९।

४. एकदा नैमिषारण्ये ऋषयः शौनकादयः।
पप्रच्छुः मुनयः सर्वे सूतं पौराणिकं खलु ।। (सत्यनारायण व्रतकथा)

५. महाभारत, वनपर्व—८१।१७३
'पृथिव्यां नैमिषं पुण्यम् अन्तरिक्षे च पुष्करम्।
त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ।।

६. 'प्रयागे ललिता देवी नैमिषे लिङ्गधारिणी ।।' (स्कंदपु० माहे०)

७. पहुंचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निर्मल नीरा ।। (रामचरितमानस)

के तट पर बतलाया है तथा जिस नैमिष की यात्रा उन्होंने की थी, वह वर्तमान नैमिष ही है।

मुगलसम्राट् अकबर के द्वारा लिखाई गई 'आइने अकबरी' में भी जो शाहबुर्ज का उल्लेख नैमिष में मिलता है, वर्तमान नैमिष को अभिव्यक्त करता है। यहाँ से ६० किमी० दूरी पर स्थित टोडरमल का जन्म स्थान लहरपुर प्राचीन मुगलकालीन सल्तनत का श्रेष्ठ स्थान था।

११. कुरुक्षेत्र में स्थित नैमिष[१]-कुन्ज को नैमिषारण्य नहीं माना जा सकता; क्योंकि वामनपुराण व पद्मपुराण दोनों से ही स्पष्ट होता है कि एक बार नैमिषारण्य के मुनियों ने कुरुक्षेत्र की यात्रा की, वहाँ पर उन लोगों ने सरस्वती नदी के किनारे नैमिष कुञ्ज की स्थापना की। अतएव कुरुक्षेत्र में स्थित कुन्ज नैमिषारण्य से भिन्न है।

१२. कुछ लोग गोमती की ऋग्वैदिक-काल में 'गोमल' नाम से विख्यात सिन्धु की सहायक नदी से तुलना[२] की है, किन्तु यह गोमल, गोमती नहीं हो सकती। इस गोमती का सन्बन्ध तो अवश्य ही गङ्गा में मिलने वाली वर्तमान गोमती से नहीं है, जो लखनऊ, सुलतानपुर, जौनपुर से होकर बहती है।

गोमती गङ्गयोश्चैव सङ्गमे लोकविश्रुते।
अग्निष्टोममवाप्नोति सप्तकुलं चैव समुद्धरेत्॥ (पद्मपु० १।३२।४२)

यह गोमती पंजाब के कांगरा जिले में प्रवाहित होने वाली भी नहीं हो सकती, जो इसके समान नाम वाली है[३]।

१३. बदरिकाश्रम में स्थित 'नैमिष-धारा'[४] को भी 'नैमिषारण्य' नहीं माना जा

---

१. ततो नैमिषकुञ्जं च समासाद्य सुदुर्लभम्।
ऋषयः किल राजेन्द्र नैमिषेयाः तपोधनाः॥
तीर्थयात्रां पुरस्कृत्य कुरुक्षेत्रे गताः पुरा।
ततः कुञ्जं सरस्वत्या कृतो भरतसत्तम॥ (वामनपुराण, पद्मपुराण—१।२६ १०२-१०३)

२. The river Gomati has to be identified with the Rigvedic Gomati, which is the modern Gomal, a western tributary of Indus, or with the modern Gomati.
—Geo. of Ancient & Medi. India—Page, 50
by D. C. Sircar, Varanasi.

३. वही, पृ० ५० by D. C. Sircar.

४. स्कन्दपुराण, वैष्णवखंड बदरिकाश्रम, मा० ७।१।

सकता। गया[1] में भी नैमिषारण्य को नहीं माना जा सकता और प्रयाग[2] में इसकी स्थिति नहीं हो सकती। यह तो सर्वथा स्वतन्त्र क्षेत्र है, जिसकी कल्पना अन्यत्र कर ली गई है।

१४. आंग्ल विद्वान् पार्जिटर[3] महोदय ने गोमती के किनारे स्थित 'नैमिष' को अयोध्या राज्यान्तर्गत बतलाया है—'Naimish was on the river Gomati in the Ayodhya kingdom'. यह वर्तमान नैमिष ही हो सकता है, अन्य नहीं।

१५. B. C. Law महोदय ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि नैमिष सीतापुर जिले में स्थित गोमती के तट पर है—'Naimisharanya is identified with modern Neemsar on the bank of the Gomati in the Sitapur district.'[4]

१६. J. L. Shastry ने भी इस बात पर बल देते हुए नैमिष को उत्तर प्रदेश में सीतापुर जिला स्थित बतलाया है—'Naimish, modern Neemsar is a sacred region of Uttar Pradesh in the district of Sitapur on the bank of Gomati'.[5]

प्रसिद्ध विद्वान् V. E. Ham Mani ने अपने ग्रन्थ 'Puranic Encyclopaedia' में नैमिषारण्य को सीतापुर जिले में प्रमाणित करते हुए लिखा हैं– 'Naimisha is very famous in the Puranas. It is considered to be a record place. Neemsar is the modern name for the place and it is in the Sitapur zilla of north India'.

१७. शिवमहापुराण की कोटिरुद्र-संहिता में उत्तर दिशा के शिवलिंगों का वर्णन करते हुए गोलागोकर्ण, मिश्रित, नैमिष और हत्याहरण के शिवलिङ्गों को

---

१. वायुपुराण—१०८ वाँ अध्याय (प्रयाग सम्मेलन) रामप्रताप त्रिपाठी।

२. शिवमहापुराण, वायवीयसं०—१।४।

३. Ancient Indian Historical tradition by F. E. Pargiter, Page—313.

४. Historical Geography of Ancient India. Page—113.

५. शिवपुराण by J. L. Shastry, Page—432. प्रकाशन वर्ष 1877, (मोतीलाल बनारसीदास)।

बतलाया गया है[१], जो कि भौगोलिक रूप से वर्तमान समय में भी उसी रूप में मिलता है। अतएव नैमिषारण्य यही है, अन्यत्र नहीं।

१८. पुरातात्त्विक दृष्टि से भी नैमिषारण्य की संस्कृति अतीव प्राचीन लगती है[२]। यहाँ पर प्राप्त ध्वंशावशेष एवं मूर्तियाँ इस बात की साक्षी हैं कि नैमिष अतीव प्राचीन काल से जप-तप व ध्यान का केन्द्र-बिन्दु रहा है। यहाँ नैमिष क्षेत्र में प्रकीर्ण प्राचीन मूर्तियाँ, उत्खनन से प्राप्त खिलौने, मिट्टी की मूर्तियाँ व पात्र इनके प्रमाण हैं[३]।

१९. महारानी अहिल्याबाई ने चक्रतीर्थ का जीर्णोद्धार व धर्मशाले का निर्माण करवाया था[४], जिसका एक शिलालेख आज भी देखा जा सकता है, अतएव नैमिष यही है, अन्यत्र नहीं।

२०. जनश्रुति है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने चक्रतीर्थ के तट पर एक गणेश-मन्दिर की स्थापना की थी, जो आज भी चक्रतीर्थ के पश्चिमी तट पर एक छोटा-सा गणेश मंदिर है। जहाँ से परिक्रमा का प्रारम्भ होता है। यद्यपि मूर्ति उतनी प्राचीन नहीं लगती, संभवतः इसका पुनरुद्धार किया गया हो!

नारदपुराण[५], शिवमहापुराण[६] (वायवीय-संहिता) और वायुपुराण[७], जो नैमिषारण्य को क्रमशः प्रयाग और कुरुक्षेत्र में होने को निर्दिष्ट करते हैं, साथ ही साथ उन स्थानों पर होने वाले याग विशेष का भी वर्णन करते हैं; किन्तु इस प्रसङ्ग से नैमिष की स्थिति में कोई शंका नहीं की जा सकती। ये दोनों ही पुराण नैमिषारण्य से परिचित हैं। स्वयं वायुपुराण[८] के द्वितीय अध्याय में नैमिष को स्पष्ट रूप से गोमती तट पर स्थित बतलाता है, अतएव नैमिष गोमती के तट पर ही होना चाहिए।

---

१. शिवमहापु०—कोटिरुद्रसं०—११।५-१६ पर्यन्त गोला में गोकर्णेश्वर मिश्रित में दधीचेश्वर, नैमिष में ऋषीश्वर और हत्याहरण में अघनाशक शिवलिंग जो कि विशेष पूजनीय है।

२. देखें पृष्ठ संख्या।

३. शिलालेख।

४. देखिये परिक्रमा का नक्शा।

५. Narada refers to Naimish as a tirth under Prayag.

६. शिव० वाय० सं० १।४।

७. वायुपुराण—१।३-१५, व २।५-१३।

८. The Vayu Puran locates it on the bank of Dṛsadvati (1/14) but it is erroneous.—M. B. H. III 18.92-93 of. cit. page 113.

डा० ओ० पी० भारद्वाज ने 'Location of the Naimish forest' नामक अपने लेख में नैमिष को प्रधानरूप से कुरुक्षेत्रान्तर्गत सिद्ध करने की बहुत चेष्टा की है। ये महानुभाव काणे महोदय के मत का समर्थन करते हुए दृषद्वती के तट पर नैमिष को मानते हैं। वी० वी० मिराशी महोदय ने तो और भी इसको भ्रामक बना दिया है। इनके अनुसार 'नैमिष को उ० प्र० के सुल्तानपुर जिलान्तर्गत होना चाहिए।' मेरे विचार से यह तो बिल्कुल ही असंगत और असंभव है। रही भारद्वाज जी की तर्क की बात, तो वह भी अमान्य ही है। दृषद्वती नदी का आधार मानकर एवं कतिपय अन्य उद्धरणों को खींचतान कर नैमिष को कुरुक्षेत्रान्तर्गत तीर्थ मानना ठीक नहीं। नैमिष स्वयं स्वतंत्र तीर्थ है। महाभारत के वनपर्व में वर्णित पाण्डवों की तीर्थ-यात्रा प्रसंग पर भी यदि भौगोलिक मानचित्र खींचा जाय, तो वह प्रायः क्रमोत्तर कुरुक्षेत्र से पूर्वोत्तर ही पड़ता है। पाण्डव लोग क्रमशः भिन्न-भिन्न स्थानों पर निवास करते हुए नैमिषारण्य पहुँचे थे।

ते तथा सहिता वीराः वसन्तस्तत्र तत्र ह।
क्रमेण पृथ्वीपाल नैमिषारण्यमागताः[1]॥

स्वयं गोमती, बाहुदा, इरावती, सरयू और सरयू में स्थित गोप्रतार (गुप्तार का वर्णन) इसको पुष्ट करता है कि वर्तमान नैमिष ही पूर्वकालिक नैमिष है। कांगरा जिले की गोमतो भले ही इस नाम से विदित हो; किन्तु गोमती के किनारे इन समस्त तीर्थों की स्थिति कहीं भी नहीं मिलती। यदि कुरुक्षेत्र में ही नैमिष होता, तो पाण्डवों को इतनी दूर चलने की कोई आवश्यकता भी नहीं पड़ती। नैमिष तो सतयुग से है, जब कि त्रेता-युग में भगवान् राम द्वारा यहाँ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया गया। यदि देखा जाय तो कुरुक्षेत्र की मर्यादा द्वापर-युग में बढ़ी और लोगों ने इसके महत्त्व को मुक्त-कण्ठ से गाया। जब कुरुक्षेत्र की मर्यादा नैमिष के बाद की है, तो नैमिष की कल्पना कुरुक्षेत्र में की जा सकती है, उसके पावनत्व, श्रेष्ठत्त्व को देखकर; मगर नैमिष वर्तमान नैमिष को बाहुदा-बूढ़ी राप्ती से अर्थ खींचकर कुरुक्षेत्र में खड़ा कर देना केवल शुष्क निराधार तर्क से भले हो सकता हो; मगर जो वर्तमान की परिस्थितियाँ हैं, उनसे इसका समर्थन संभव नहीं।

यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता।
रोहिणी स सुता तत्र गोमती साभवत् क्षणात्॥

वायुपुराण[2] में गया-माहात्म्य के प्रसंग में जिस नैमिषारण्य का वर्णन है, वह 'नाभि गया' का उल्लेख करता है। वर्तमान नैमिषारण्य को आज भी 'नाभि गया' माना जाता है, जहाँ पर श्राद्ध और पिण्ड दानादिक क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं।

---

१. ब्रह्माण्डपु०—१।२।६।

२. वायुपुराण—१०८ वाँ अध्याय।

वर्तमान नैमिषारण्य में स्थित गयावर[1] (गाँव) के समीप गदाधर नाथ का स्थान इसका प्रमाण है। अतएव नैमिषारण्य को अन्यत्र गया में मानना भ्रम व दोषपूर्ण है।

सूत और ऋषियों का संवाद[2] भले ही विभिन्न तीर्थ स्थलों पर वहाँ की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए वर्णित किया गया हो; किन्तु प्रधानरूप से इस नैमिषारण्य में ही सूत ने शौनकादिकों को पुराणों का उपदेश दिया था, जो कि बाद में अन्य तीर्थ-स्थानों से जोड़ा जाने लगा।

कुछ आधुनिक विद्वान्[3] इस नैमिषारण्य को अन्यत्र सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। उन्हें यह नहीं ज्ञात है कि जैसे आज कल किसी प्रख्यात स्थान विशेष को लक्ष्य कर अनेक स्थलों पर उसका नामकरण कर दिया जाता है, सम्भवतः प्राचीन काल में भी यही प्रक्रिया प्रचलित थी।

इसके अतिरिक्त बहुत से अन्य साक्ष्य दिये जा सकते हैं, जिनसे नैमिषारण्य को सीतापुरस्थ गोमती तट पर स्थित ही मानना चाहिए, अन्यत्र नहीं। कतिपय पुराण द्वारावती (द्वारिका) में स्थित गोमती कुण्ड को ही गोमती मानकर यहाँ ही नैमिष की कल्पना करने लगे हैं, इससे वर्तमान नैमिष के विषय में कोई अन्तर नहीं पड़ता। आद्य और प्राचीन नैमिष यही है, इसमें शंका करने का प्रश्न ही नहीं। इसकी वर्तमान स्थित, पुरातात्त्विक सम्पदाएँ एवं जनश्रुतियाँ हैं। इसकी प्राचीनता को खण्डित नहीं कर सकतीं। आज यह नैमिष इतना महत्त्वपूर्ण न होता, तो भारत के कोने-कोने से आनेवाले लोग सम्भव है कि यहाँ न आकर कुरुक्षेत्र के नैमिष-कुञ्ज में ही जाते। नीमसार व नीमखार वन यह तो बाद में लोगों ने अपभ्रंश रूप में कहना प्रारम्भ कर दिया, जो कि रूढ़ि बन गया। इस पर नैमिषारण्य के विषय में सन्देह करना भ्रामक है। मैं कदापि डा० ओ० पी० भारद्वाज का यह कथन मानने को तैयार नहीं; क्योंकि जिन पुराणों ने दृषद्वती का नाम दुहराया है, वे ही 'नैमिष-कुञ्ज' निर्माण की बात भी कुरुक्षेत्र में नैमिषेय ऋषियों द्वारा स्पष्ट करते हैं। यह दृषद्वती घाघरा

---

१. वर्तमान नैमिषारण्य की बस्ती से २ किमी० की दूरी पर पूर्व-दक्षिण की ओर गोमती तट पर गयासुर गदाधर नाथ का मन्दिर बना है, जहाँ श्राद्ध व पिण्डदानादि क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं।

२. ब्रह्माण्डपुराण कुरुक्षेत्र में, वामनपुराण सरो माहा० स्तव ऋषियों का संवाद कुरुक्षेत्र में, पद्मपुराण सृष्टि-खंड २५।१५-१६, वलियज्ञ पुष्कर में, अग्निपुराण— ४।७ गङ्गाद्वार में, स्कन्दप्रभास १४।७८, प्रभास के निकट वस्त्रापथ क्षेत्र में, भागवतपु०—७।१८।२१ नर्मदा के उत्तरी तट पर शिवमहा०, वाय० सं० १।४ प्रयाग में।

३. पुराणम्—Jan. 1982, Location of the Naimish forest, Page—217, last stanza.

भी हो सकती है। वामनपुराण का यह वाक्य 'गोमत्या काञ्चनाक्ष्याश्च गुरुदायाश्च मध्यतः। तत्र तीर्थसहस्राणि''''''' सिद्ध करता है कि गोमती काञ्चनाक्षी और गुरुदा के मध्य में हजारों तीर्थ हैं। यहाँ गुरुदा नदी को वर्तमान 'गेरुआ' नदी समझना चाहिए, जो कि नेपाल से निकलकर खीरी बहराइच आदि जिलों से होकर बहती है[1]।

प्रायः कुछ पुराणों में यह भ्रम अवश्य पैदा हो गया है जो कि नैमिष में घटित घटनाओं को द्वारिका अथवा कुरुक्षेत्र से जोड़ दिया गया है। जैसे सूत का वध मार्कण्डेयपुराण में द्वारिका स्थित कुञ्जों में ही वर्णित-सा लगता है[2]।

नैमिषारण्य की भौगोलिक स्थिति—

नैमिषारण्य, भारत वर्ष के उत्तर प्रदेश में, लखनऊ मण्डलान्तर्गत सीतापुर जिले के दक्षिणी भाग में गोमती के पवित्र तट पर स्थित है। यह सीतापुर से लगभग ३२ किमी० दक्षिण और हरदोई से लगभग ४० किमी० दूरी पर पूर्व दिशा में है।

यह स्थान समुद्र तल से ११५° ऊँचाई पर स्थित है यह २७°-२१° अक्षांस पर पड़ता है और ८०-२९° देशान्तर रेखा पर अवस्थित है[3]।

नैमिषारण्य पुण्यारण्य के रूप में—

प्राचीन काल में मुख्यरूप से ९ अरण्य पुण्यदायक माने जाते थे। ऐसा विश्वास था कि जो लोग इनमें प्राणों का परित्याग करते थे, उन्हें परम पद की प्राप्ति होती थी। देवीपुराण के शब्दों में—

'सैन्धवं दण्डकारण्यं नैमिषं कुरुजाङ्गलम्।
उपलावृत्तमारण्यं जम्बूमार्गोऽथ पुष्करम्॥
हिमवासस्तोऽरण्ये उत्तमः परकीर्तितः॥
नवस्वेतेष्वरण्येषु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्मलोकातिथिर्भूत्वा स याति परमं पदम्॥

'शिवतत्त्वरत्नाकर'[4] में आठ पुण्यारण्यों को बतलाया गया है, जो कि संसार में पुण्यतम माने जाते थे। इनमें 'नैमिश' भी एक है। जैसे—

चम्पका नैमिशा चैव दण्डका च गुहाह्वया।
द्वैपायनीया बदरी कदलीति तथाष्टमी॥
एते पुण्यतमा लोके ह्यरण्याः पुण्यसंज्ञकाः॥

---

१. देखिए भारतवर्ष का भौगोलिक मानचित्र।
२. मार्कण्डेयपुराण।
३. साभार केन्द्रीय बाढ़ पूर्वानुमान एवं जल संसाधन लखनऊ से प्राप्त।
४. शिवतत्त्वरत्नाकर—४।२।६८-६९।

चूँकि इन अरण्यों का सम्बन्ध श्रीहरि की चर्चा से जुड़ा था, अतएव ये परम श्रेयस प्रदान करने वाले थे (यत्र यत्र हरेश्चर्चा स देशः श्रेयसां पदम्)। यद्यपि इन अरण्यों के अतिरिक्त भो बहुत से अरण्य थे; परन्तु उपर्युक्त अरण्य श्रेष्ठ तथा बड़े थे।

पं० भवानी शङ्कर दीक्षित के द्वारा संगृहीत नैमिषारण्य की हस्तलिखित प्रति में इन नव अरण्यों का उल्लेख मिलता है। ये अरण्य मोक्षदायक भी हैं तथा नैमिशारण्य में इन सबकी उपस्थिति भी मिलती है—

दण्डका सैन्धवाश्चैव जम्बुकारण्यपुष्करम्।
उत्पलं बदरिकारण्यं नैमिशं कुरुजाङ्गलम्॥
अर्बुदारण्यविज्ञेयं मोक्षद्वाराणि भूतले।
एतत्ते कथितं देवि! सर्वे संयुक्तनैमिशे[1]॥

त्रेतायुग में नैमिष का वैशिष्ट्य—

महाभारत से विदित होता है कि कृतयुग (सतयुग) में पुष्करक्षेत्र की विशिष्टता है,[2] त्रेता में नैमिष सेवनीय है, द्वापर में कुरुक्षेत्र की गरिमा है और कलियुग में विशेष रूप से गङ्गा का माहात्म्य है।

'कृते पुष्करं तीर्थं त्रेतायां नैमिषं तथा।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा समाश्रयेत्॥

यहाँ त्रेतायुग में नैमिष का माहात्म्य भगवान् श्रीराम के नैमिष-आगमन और दश अश्वमेध यज्ञ की ओर इंगित करता है।

विष्णुपुराण-संहिता, जो कि गुप्तकालीन बतायी जाती है, नैमिषारण्य की हर युग व हर क्षण मर्यादा व्यक्त करती है।

'गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे।
सततं नैमिषारण्ये वाराणस्यां विशेषतः[3]॥'

इतना ही नहीं, गर्गसंहिता तो नैमिषारण्य की गरिमा को प्रत्येक तीर्थ से दशगुनी बतलाती है, यथा—

तस्माद्दशगुणं पुण्यमुत्पलावर्तयात्रया।
तस्माच्च नैमिषारण्ये पुण्यं दशगुणं स्मृतम्॥

---

१. नैमिषारण्यमाहात्म्य—पं० भवानीशंकर दीक्षित।

२. शब्दकल्पद्रुम, भाग—२ पृ० ६२८ सन्—१९६४।

३. विष्णुसंहिता—८५।२८।

४. गर्गसंहिता—द्वारिकाखंड १५।८।

यही कारण है कि पद्मपुराण ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'नैमिष के लिए प्रस्थान करने मात्र से आधा पाप नष्ट हो जाता है और इस क्षेत्र में प्रवेश करने पर तो मनुष्य समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

नैमिषं प्रार्थयानस्य पापस्यार्धं प्रणश्यति।
प्रविष्टमानस्तु नरः सर्वपापात्प्रमुच्यते[1] ॥

वस्तुतः नैमिष का इतना माहात्म्य सर्वत्र प्रसृत हो चुका था कि गर्गसंहिता के माधुर्य-खण्ड में सौभरि-मान्धाता संवाद में यमुना के सहस्रनाम को गिनाते हुए 'नैमिषी नैमिषावृता' कहकर सम्बोधित किया गया है। इससे नैमिष में नैमिषी नामक कालिन्दी का होना निश्चित होता है।

महाभारत के अनुसार—

'नैमिषे स्वर्गतीर्थे च उपस्पृश्य जितेन्द्रियः।
फलं पुरुषमेधस्य लभेन्मासं कृतोदकः ॥'

अर्थात् एक मास तक जितेन्द्रिय होकर स्वर्गतीर्थ नैमिष में पितरों को जो जलाञ्जलि देता है, वह पुरुषमेध फल को प्राप्त करने में समर्थ होता है।

'प्रभासं मानसं पुण्यं पुष्कराणि महत्सरः।
पुण्यं च नैमिषं तीर्थं बाहुदां करतोयिनीम् ॥'

(महा० अनु० २६।३२)

× × × ×

गोमतीं कौशिकीं पाकां महात्मानो धृतव्रताः।
सरस्वती दृषद्वत्यो यमुनां ये प्रयान्ति च ॥
तत्र ते दिव्यसंस्थाना दिव्यमाल्यधराः शिवाः।
प्रयान्ति पुण्यगन्धाढ्या धृतराष्ट्रो न तत्र वै ॥

उपर्युक्त श्लोक से ध्वनित होता है कि प्रभास, मानस, पुष्कर, नैमिष आदि तीर्थों में स्नान करने वाला गोलोक में दिव्य शरीर धारण करके तथा दिव्य गन्धों से लिप्त शरीरवाला बन कर पहुँचता है।

इसी तरह से एक अन्य स्थान पर भी इसी ग्रन्थ में कहा गया है कि पुष्कर, प्रभास, नैमिष सागरोदक, देविका, इन्द्रमार्ग और स्वर्णबिन्दु में स्नान करने से मनुष्य विमान पर बैठकर स्वर्ग में जाता है।

यथा—

पुष्करं च प्रभासं च नैमिषं सागरोदनम्।
देविकामिन्द्रमार्गं च स्वर्णबिन्दुं विगाह्य च।
विबोध्यते विमानस्थः सोऽप्यप्सरोऽभिष्टुतः ॥

(महा० अनु० २६।९)

---

१. पद्मपु० आदिखण्ड।

स्कन्दपुराण में कहा गया है कि—

नैमिषारण्यवासी यो नरो देवत्वमाप्नुयात् ।
देवानामालयं यस्मात्तदेव भुविदुर्लभम् ॥
(स्कन्दपु० ३।३१।११)

पद्मपुराण के अनुसार कोकामुख, कुरुक्षेत्र, नैमिष, ऋषिसंगम, वाराणसी, प्रभास, बदरिकाश्रम इत्यादि मनुष्य को अतिशीघ्र सिद्धियाँ प्रदान करने वाले हैं।

कोकामुखे कुरुक्षेत्रे नैमिषे ऋषिसंगमे ।
वाराणस्यां प्रभासे च तथा बदरिकाश्रमे ॥

× × × ×

तीर्थेष्वेतेषु सिद्धिर्या क्षेत्रेषु द्वादशाब्दिका ।
प्राप्यते मानवैर्लोके षण्मासाद्राजसत्तम[1] ॥

इसी पुराण के अन्य खण्ड में प्रयाग, काशी, पुष्कर, नैमिषारण्य, अमरकण्टक आदि को पुण्य क्षेत्र व तीर्थ कहा गया है।

प्रयागस्तीर्थराजश्च काशीपुष्करमेव च ।
नैमिषारण्यसंज्ञं तु तीर्थं चामरकण्टकम् ॥

× × × ×

एवं विधानि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च[2] ॥

भागवतमहापुराण के सातवें स्कन्ध से स्पष्ट है कि—कुरुक्षेत्र, गयाशिर, प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिष, फाल्गुन, सेतु, प्रभास, कुशस्थली, वाराणसी, मधुपुरी, नारायणाश्रम इत्यादि तथा जितने भी महेन्द्र-मलय आदि श्रेष्ठ कुलाचल हैं, ये सभी हरि-चर्चा के आश्रय स्थान हैं। अतएव कल्याण चाहने वाले को इन स्थानों का सेवन करना चाहिए, जहाँ पर किया गया धर्म सहस्रगुणित होकर फलदायी होता है।

'नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ।
वाराणसी मधुपुरी पम्पाबिन्दुसरस्तथा ॥
नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ।
सर्वे कुलाचला राजन् महेन्द्रमलयादयः ॥
एते पुण्यतमा देशा हरेश्चर्चाश्रिताश्च ये ।
एतान् देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ।
धर्मो ह्यत्रोपहितः पुंसा सहस्राधिफलोदयः[3] ॥

---

१. पद्मपुराण—५।१७।१०२-१०४ ।
२. वही,—६।१३१।१९-२९ ।
३. भागवतमहापु०—७।१४।३१-३३ ।

स्कन्दपुराण का निम्न श्लोक जिन सिद्ध क्षेत्रों को बतलाता है, उनमें नैमिषारण्य भी अपना गौरवपूर्ण स्थान रखता है, जहाँ की पवित्रता हरि के भक्तों से विशेषरूप में है।

हरितद्भक्तमाहात्म्याद्देशानामस्ति पुण्यता।
गङ्गाद्वारं मधुपुरी नैमिषारण्यमेव च॥
कुरुक्षेत्रमयोध्या च प्रयागश्च गयाशिरः॥
पुरी वाराणसी चैव पुण्यश्च पुलहाश्रमः।
कपिलाश्रमः श्रीरङ्गः प्रभासश्च कुशस्थली॥
क्षेत्रं च सिद्धपदाख्यं च पौष्करं च महत्सरः[1]॥

प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ नैमिषारण्य-माहात्म्य में भी इस क्षेत्र की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा गया है—

नैमिषे च परो मोक्षं क्षेत्रे नैवास्ति तादृशम्।
दत्तं भुक्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
ध्यानमध्ययनञ्चैव सर्वं भवति त्वाक्षयम्॥
धन्यास्ते मानवा लोके नैमिषे निवसन्ति ये।
आरण्ये सृज्यते नेमिर्नैमिषं तेन उच्यते[2]॥

स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तर-खण्ड में प्रयाग, पुष्कर, केदार, सेतुबन्ध, गोकर्ण, नैमिषारण्य आदि को सद्यःसिद्धि देने वाला कहा गया है—

प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम्।
गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम्[3]॥

देवीभागवत में नैमिषारण्य की सर्वप्रथम मर्यादा वर्णित है।

प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम्।
अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले[4]॥

इन उपर्युक्त श्लोकों से नैमिषारण्य का वैशिष्ट्य प्रतिभासित होता है।

नैमिश (नैमिष) अरण्य नाम पड़ने का कारण—

प्रायः वेदों में 'नैमिष' शब्द दो रूपों में मिलता है। कहीं-कहीं तालव्य शकार का प्रयोग मिलता है, तो कहीं-कहीं तालव्य शकार के स्थान पर मूर्धन्य षकार का

---

१. स्कन्दपुराण, वैष्णव-खंड—२२।२०-२२।
२. नैमिष० महा० १—२।३८-४०।
३. स्कन्दपु०—ब्रह्मोत्तरखंड—३।१।२७।
४. देवीभागवत—४।८।४०।

प्रयोग मिलता है। पुराणों में इन दोनों ही रूपों को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। यहाँ प्रस्तुत है कुछ पुराणों में मिलनेवाली नैमिषारण्य की व्युत्पत्ति, जो प्रसंगवशात् स्वतः पुराणों में वर्णित है।

(क) कूर्मपुराण के अनुसार—

एक बार मरीचि, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, आंगिरस इत्यादि ऋषि मिलकर ब्रह्मा जी के पास गये और उनके चरणों में प्रणाम किया। तदनन्तर सभी ऋषियों ने पूछा—'हे भगवन्! किस प्रकार से हम लोग कपर्दी भगवान् शंकर को जान सकते हैं? इस तथ्य को कृपा करके बतलाइए। ऋषियों के इस प्रकार के वचन को सुनकर भगवान् प्रजापति ब्रह्मा ने कहा—हे ऋषियों! तुम लोग मन और वाणी से हजार वर्ष तक तप करो। जिस स्थान को चुनोगे, उसको भी मैं बतलाता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने एक मनोचक्र की संरचना की और उन ऋषियों से बोले—यह चक्र मेरे द्वारा फेंका जा रहा है। तुम लोग शीघ्र इसका अनुगमन करो। जहाँ पर इसकी नेमि शीर्ण होगी, वही देश (तप-योग्य) होगा। ऐसा कहकर उन्होंने चक्र को छोड़ दिया। वे ऋषिगण भी उसके पीछे चलने लगे। तीव्र गति से चलते हुए उस चक्र की नेमि जहाँ पर विशीर्ण हुई, वह स्थान 'नैमिश' नाम से विख्यात हुआ। यह पुण्यप्रद स्थान सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि से सेवित है तथा भगवान् शंकर का प्रिय है'[1]।

(ख) वाराह-पुराण के अनुसार—

नैमिष-शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में इस पुराण में भिन्न कथा प्राप्त होती है। प्राचीन काल में दुर्जय नाम का एक महान् पराक्रमी असुर था, जिसके पराक्रम के सामने किसी भी देवता की कुछ न चलती थी। सभी लोग इसके अत्याचार से संत्रस्त हो उठे। अन्त में परस्पर विचार-विमर्श करके लोग भगवान् विष्णु की शरण में गये। शरणागत-पालक भक्तवत्सल भगवान् ने देवताओं के अभिप्राय को जानकर दुर्जय को मारने के लिए वचन दिया था। अन्ततः विष्णु ने कालचक्र के समान सुदर्शन-चक्र को दुर्जय नामक दानव के ऊपर छोड़ दिया। परिणामस्वरूप उन्होंने

---

१. उक्त्वा मनोमयं चक्रं स सृष्ट्वा तानुवाच ह।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत माऽचिरम्।
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशः पुरुषर्षभाः॥
ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन्।
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत।
नैमिषं तत्स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्।
सिद्धचारणसंकीर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्।
स्थानं भगवतः शम्भोरेतन्नैमिशमुत्तमम्॥
(कूर्मपुराण—२।४१।७-९)

चक्र के द्वारा निमेष (पलक झपकते मात्र में) ही[1] दुर्जय तथा उसकी सारी आसुरी सेना को भस्मीभूत कर दिया। तब इस घटना के बाद विष्णु ने गौरमुख मुनि से कहा—"चूँकि इस अरण्य विशेष में दानवों को निमेष मात्र में भस्म कर दिया गया, अतएव यह अरण्य 'नैमिषारण्य' के नाम से जाना जायेगा[2]।'

(ग) शिवपुराण के अनुसार—

शिवपुराण की वायवीय-संहिता के पूर्वखंड में 'नैमिषोपाख्यान' का वर्णन किया गया है। इसके अनुसार एक बार सभी देवगण भगवान् ब्रह्मा के पास गये और पूछे कि मानवों को किस प्रकार और कहाँ मुक्ति मिल सकती है? तब भगवान् ब्रह्मा ने कहा—तुम लोग मिलकर सहस्रवर्ष तक भगवान् शंकर की तपस्या करो और सत्रान्त में मेरे द्वारा प्रेरित वायुदेव आयेंगे और वही तुम लोगों के कल्याण के लिए उपाय बतायेंगे। यह सत्र सहस्र वर्ष तक जहाँ करोगे, उस स्थान को मैं बतला रहा हूँ[3]। ऐसा भगवान् प्रजापति ने ऋषियों से कहा—'ऋषियों! यह मेरे द्वारा निर्मित मनोमय चक्र छोड़ा जा रहा है। इसकी जहाँ पर नेमि शीर्ण होगी, वही देश तपस्या के लिए शुभ होगा। ऐसा कहकर प्रजापति ने महादेव को प्रणाम कर सूर्य के समान प्रतिभासित चक्र को छोड़ा। वे ऋषिगण भी प्रसन्न होकर संसार के स्वामी को प्रणाम करके उस चक्र के पीछे-पीछे चल दिये। इस प्रकार से वह चक्र भी सुन्दर शिलातल पर स्वच्छ स्वादिष्ट जल वाले किसी वन में गिरा। इस तरह मुनियों के द्वारा सुपूजित वह वन 'नैमिश' नाम से विख्यात हुआ, जो कि अनेक यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरों से युक्त था। इसी वन में एक बार पुरूरवा अपनी प्रेयसी उर्वशी के साथ विचरण करते हुए आया था।'

---

१. निमेष —(पु० (नि० + मिष + घञ्] पक्ष्मस्पन्दनकालः, पलक झपकने का समय) 'निमिष'—भगवान् विष्णु के लिए भी महाभारत में निमिष का प्रयोग आया है (निमिषोऽनिमिषः)।

२. 'एवमुक्तस्तदा तेन चक्रज्ज्वलनसन्निभम्।
मुमोच दुर्जयबले कालचक्रं सुदर्शनम्॥
तेन चक्रेण तत्सैन्यमासुरं दौर्जयं क्षणात्।
निमेषान्तरमात्रेण भस्मवद् बहुधा कृतम्॥
एवं कृत्वा ततो देवो गौरमुखस्तदा।
उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम्॥
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेवं 'नैमिषारण्य'संज्ञितम्॥
(वाराहपुराण—११।१०६-१०९)

३. शिवमहापुराण—वाय० सं० ३।४५-४९।

'एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते।
यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसश्शुभः॥
इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम्।
प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः॥
तेऽपि हृष्टतरा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम्।
प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत॥
चक्रं तदापि संक्षिप्तं श्लक्ष्णं चारुशिलातले।
विमलस्वादु पानीये निपपात वने क्वचित्॥
तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपूजितम्।
अनेकयक्षगन्धर्वविद्याधरसमाकुलम्'[1] ॥

(घ) पद्मपुराणानुसार—

मत्स्यपुराण के तृतीय भाग के क्रियाखण्ड नामवाले सृष्टि-खण्ड में बृहस्पति ने कहा कि 'जहाँ पर जाते हुए धर्म चक्र की नेमि शीर्ण हो जाये, वहीं पुण्य देश मानना चाहिए। ऐसा कहकर ये महामुनि सभी ऋषियों के आँखों से ओझल हो गये।

'गच्छतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत
पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच बृहस्पतिः।
उक्त्वा चैवमृषीन्सर्वानदृश्यत्वमगात्पुनः॥
गंगावर्तसमाहारो नेमिर्यत्र व्यशीर्यत।
ईजिरे दीर्घसत्रेण ऋषयो नैमिषे तदा॥
(पद्मपुराण—५ क्रियाखण्ड, १।८-१०)

यहाँ पर भगवान् प्रजापति के स्थान पर बृहस्पति का उल्लेख हुआ है और गंगावर्त में नेमि शीर्ण होने का वर्णन सिद्ध होता। यहाँ गंगावर्त का समाहार आदि-गङ्गा गोमती से किया जाना चाहिए; क्योंकि काश्यपी गंगा, तो यहाँ है ही, साथ ही साथ गोमती में गङ्गोद्भेद[2] का होना गंगा को प्रमाणित करता है। यहाँ गोमती की प्रधानता न कहकर गंगा की प्रधानता कह दी गयी है।

(ङ) ब्रह्माण्ड-पुराण के अनुसार—

'भ्रमण करती हुई धर्म-चक्र की नेमि जहाँ पर विशीर्ण हुई, इस कारण से मुनियों से पूजित (यह वन) 'नैमिश' नाम से विख्यात हुआ[3]।

'भ्रमतो धर्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्यत।
कर्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम्'[4] ॥

---

१. शिवपुराण, वायवी-संहिता, पूर्वखंड—३।५३-५७, नाग पब्लि० १९८१।
२. अङ्गोद्भेद का वर्णन आगे विस्तृत रूप में देखिये।
३. ब्रह्माण्डपु० १।२।५।
४. वायुपुराण—२।५-१३।

(च) वायुपुराण के अनुसार—

वायुपुराण के दूसरे अध्याय में द्वादश वार्षिक सत्र-याग का वर्णन करते हुए नैमिष की उत्पत्ति को कहा गया है। जहाँ पर घूमते-घूमते धर्मचक्र की नेमि विशीर्ण हो गयी और इसीलिए इस मुनिपूजित देश का नाम 'नैमिष' पड़ा।

(छ) देवीभागवत के अनुसार—

एक बार की बात है कि नैमिषारण्य के समस्त ऋषि-मुनिगण कलिकाल के भय से ब्रह्मा के पास जाकर बोले—पितामह ! हम सभी नैमिषारण्य-वासी कलिकाल से भयभीत हैं, अतएव आप कोई उपाय बतलाइये। तब ब्रह्मा ने मनोमय चक्र को देकर आदेश दिया कि तुम सभी लोग इस (चक्र) के पीछे-पीछे जाओ। जहाँ पर इसकी नेमि विशीर्ण हो जाये, वही देश पावन समझना। वहाँ पर कलि का प्रवेश कभी भी संभव नहीं होगा। सत्ययुग के आने तक तुम लोग वहीं पर निवास करो। ब्रह्मा के ऐसे वचन को सुनकर तथा उनकी बात मानकर समस्त देशों में वेगपूर्वक भ्रमण करते हुए उस चक्र की नेमि यहीं पर 'शीर्ण' हो गयी, इसी कारण इसको 'नैमिश' कहा गया, जो कि परम पावन-क्षेत्र कहलाया।

कलिकाल विभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः।
ब्रह्मणाऽत्र समादिष्टाश्चक्रं दत्वा मनोमयम् ॥
कथितं तेन नः सर्वान् गच्छन्त्वेतस्य पृष्ठतः।
नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः ॥
कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित् संभविष्यति।
तावत्तिष्ठन्तु तत्रैव यावत् सत्ययुगं पुनः ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम्।
चालयन् निर्गतस्तूर्णं सर्वदेवदिदृक्षया ॥
प्रीत्याऽत्र चालयंश्चक्र नेमिः शीर्णोऽत्र पश्यत।
तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम्[1] ॥

(ज) बृहद्धर्मपुराण के अनुसार—

प्राचीन काल में सभी ऋषि-मुनिगण कलिकाल से त्रस्त होकर भगवान् ब्रह्मा के पास गये और वहाँ जाकर उनकी प्रार्थना करने लगे। ऋषियों की प्रार्थना से ब्रह्मा जी प्रसन्न हुए और उन्होंने उन लोगों के आगमन का का कारण पूछा[2]।

प्रसन्नो वोऽहमृषयः स्वाभिप्रायं वदन्तु च।
आगता वा कथं यूयं तन्मे कथयर्षयः[3] ॥

---

१. देवीभागवत—१।२।२७-३२।
२. बृहद्धर्मपुराण—१३।८।
३. तदेव—१३।१७।

उन ऋषियों ने भी अपने आगमन का यथातथ्य कारण बतलाया। तब भगवान् ब्रह्मा ने तीन प्रकार से चिन्तन किया, जिससे उनके नेत्रों से महान् प्रभावाला दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ, जो चन्द्रमा के समान स्वच्छ, द्विबाहु, त्रिलोचन और श्वेत माला धारण किये हुए प्रसन्न चित्तवाला था। उसको देखकर ऋषि आश्चर्यचकित होकर पूछने लगे—ब्रह्मन् ! यह कौन है ? तब विधाता ने कहा—'यह निमिष नामवाले सनातन सत्त्व मूर्ति है'[1]। इन्होंने तुम सब लोगों के लिए ही इस प्रकार के स्वरूप को धारण किया है। इनको ही आगे-आगे करके आप लोग जायें, जहाँ पर जाकर अन्तर्हित हो जायें, वही स्थान हरि का शरीरस्वरूप होगा। वही देश (स्थान) कलि-प्रभाव से रहित और तुम लोगों का अभीष्टदायक होगा[2]।

ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर सभी ऋषिगण उस 'निमिष' को अग्रसर करके ब्रह्मलोक से धरातल पर आये। पुनः उत्तर कुरु से आगे बढ़े। नाना पर्वतों को लाँघते हुए हिमालय के दक्षिण भाग में स्थित भारतवर्ष में भ्रमण करने लगे। वहीं पृथ्वी पर सौराष्ट्र के समीप स्थित वह 'निमिष' नाम दिव्य पुरुष अन्तर्हित हो गया*। उस दिव्य पुरुष के विलुप्त हो जाने पर ब्रह्मा के वाक्य का स्मरण कर सभी लोगों ने उसे 'हरिक्षेत्र' माना और वही क्षेत्र उत्तम 'निमिष-क्षेत्र' नाम से प्रख्यात हुआ, जो नैमिषारण्य इस नाम से जाना जाता है, जिसको कलि छूया तक नहीं है।

'इदमेवोत्तमं क्षेत्रं निमिषक्षेत्रमाहितम्।
अस्पृष्टं कलिना नृणां परमक्षेमदायकम्[3]॥

यहाँ के पशु-पक्षी-लता-द्रुम मानवादिक सभी नारायणरूप हैं। पाण्डुलिपि नैमिषारण्य[4] मौ० के अनु० एक प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपि में भी नैमिषारण्य की उत्पत्ति का आख्यान दिया गया है।

(झ) महाभारत के अनुसार—

पूर्वकल्प में जिस स्थान पर 'धर्मचक्र' प्रवर्तित हुआ था, ऐसे गोमती के तट पर नैमिष को कहा गया है। यहाँ नैमिष की मर्यादा 'धर्म-चक्र' प्रवर्तन से है।

यत्र पूर्वाभिसर्गेण धर्मचक्रं प्रवर्ततिम्।
नैमिषे गोमतीतीरे तत्र नागाह्वयं पुरम्॥
(महाभा० शान्तिपर्व० ३४३।२)

---

१. एवं वै निमिषो नाम सत्त्वमूर्तिः सनातनः।
सत्यकालोचिततनुर्युष्मदर्थेऽत्युपस्थितः ॥ (बृह० धर्मपु० १३।२२)

२. तदेव—१२।२३-२४।

* इस वर्णन से यह सौराष्ट्र में सिद्ध होता है; परन्तु इसका समाधान इसी पुस्तक में किया गया है।

३. तदेव—१३।२९।

४. नैमिषारण्य-माहात्म्य की प्राचीन संस्कृत में लिपिबद्ध अप्रकाशित पुस्तक, जो कि श्री श्यामनारायण पण्डा, बाराबंकी धर्मशाले के घर विद्यमान है, से यह भाग उद्धृत किया गया है।

१०. किसी समय भगवान् वेदव्यास इत्यादि मिलकर ब्रह्मा के पास पहुँचे और उनसे कहने लगे—हे जगन्नाथ ! हम सब यज्ञ कर्मों से विरत होते जा रहे हैं। वैदिक-क्रियाएँ भी समाप्त होती जा रही हैं। हम सब कहाँ जप करें ? इस वचन को सुनकर ब्रह्मा ने कहा 'मुनिवर' आप लोगों ने ठीक ही प्रश्न किया है, अतः मैं आप लोगों को वह स्थान बतला रहा हूँ। ऐसा कहकर ब्रह्मा ने क्षण भर ध्यान किया। ध्यान करने मात्र से ब्रह्मचक्र नाम से विख्यात संसार-चक्र उनके समक्ष आकर खड़ा हुआ और पितामह से हाथ जोड़कर बोला—आपका क्या कार्य करूँ ? ब्रह्मा ने भी शीघ्रता से चक्र को आया हुआ देख कहा—ये समस्त ऋषिगण ! संसार के भय से घबड़ाकर आये हैं, इसलिए इन्हें ऐसे स्थान को बतलाओ, जहाँ पर ये लोग स्नान-ध्यान-जप-होम-देवार्चन-अग्निहोत्र इत्यादि क्रियाएँ सम्पन्न कर सकें। ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर चक्र ने कहा—सभी ऋषि-मुनिगण मेरे पीछे-पीछे आयें, मैं उन्हें सप्तद्वीपा वसुन्धरा को दिखलाता हूँ। ऐसा कहकर वह चक्र चौदहों भुवनों का भ्रमण करता हुआ तीर्थों-देवायतनों-कुरुक्षेत्र, केदार, हिमालय, गया, गङ्गासागर, कनखल, वदरिकाश्रम, जालंधर, विन्ध्य, वाराणसी तथा पर्वतों और सागरों का भ्रमण करते हुए मध्यदेश में आया[1]। पुनः गङ्गा के उत्तर और सरयू के दक्षिण सुन्दर जलवाली गोमती नदी के किनारे धर्मचक्र की नेमि पृथ्वी में समाहित हो गयी, तभी से यह पृथ्वी पर 'नैमिष' नाम से ख्यात हुआ[2]।

आजकल के पंडित[3] लोग इसमें कुछ और संशोधन करके कहते हैं कि जब चक्र घूमते-घूमते स्थान को नहीं पाया, तो वह पुनः ब्रह्मा के पास लौट गया। ब्रह्मा ने उसे बतलाया कि चार ज्योतिर्लिङ्गों के बीच समान दूरी पर वह स्थान स्थित है। तब वह पुनः आकर 'नैमिश' में शीर्ण हुआ।

आजकल वह नैमिष, नैमिषारण्य, नीमसार, नीमखार, नीमसारन आदि नामों से जाना जाता है[4]। श्री अंगने लाल तथा उनके अन्धानुयायी कुछ विद्वान् यह कहते हैं कि चूँकि यहाँ नीम के वृक्ष बहुतायत मात्रा में पाये जाते हैं, अतः यह 'नीमसार' कहलाता है। यह मात्र सामान्य बुद्धि का परिचायक है।

---

१. पाण्डुलिपि नैमिषारण्य महात्म्य—१।१५-३०।

२. "सर्वमेतत्परित्यज्य मध्यदेशमुपाययौ ।
गंगायाश्चोत्तरे भागे सरय्वा दक्षिणेन च ॥
तत्र सा गोमती नाम नदी सुविमलोदका ।
तत्स्थाने पतितं चकं धर्मचक्रं हि विश्रुतम् ॥
ततः संभ्रज्यते नेमिधर्मचक्रस्यापतद्भुवि ।
'नैमिशं' नाम विख्यातं तत्स्थानं भुविशाश्वतम् ॥
(वही)।

३. पं० भवानीशंकर दीक्षित द्वारा संकलित नैमि० मा०—१।३१-३३, सन् १८९२।

४. १. गोलागोकर्ण, २. लोधकेश्वर महादेव, ३. खेरेश्वर महादेव।

तीर्थशब्द की व्युत्पत्ति

द्वितीय अध्याय

'तीर्थ'शब्द तॄ धातु में पातॄतुदिवचीति (उणादि) थक् प्रत्यय लगाने से बनता है। कोशकार अमरसिंह ने 'नानार्थवर्ग' प्रकाश में तीर्थ-शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—

'निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टे जले गुरौ[1]।'

वस्तुतः तीर्थशब्द तॄ धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ तैरना अथवा सन्तरण करना या पार होना है। तात्पर्य यह है कि 'तीर्थ' मनुष्य को नाना प्रकार के पाप-तापों से विमुक्त करके अपार भवसागर से पार कर देता है अथवा इसे यों भी कह सकते हैं कि जो मनुष्य को संसार-सागर से तैरने के लिए उपयुक्त साधन हो, वह तीर्थ कहलाता है।

तीर्थों का केवल पवित्र स्थानों और पवित्र नदियों से ही सम्बन्ध नहीं; अपितु तीर्थ का बहुत व्यापक अर्थ में प्रयोग मिलता है। तीर्थ की सीमा असीम है, संकुचित नहीं। जैसा कि एक श्लोक से स्पष्ट होता है—'सत्य तीर्थ है, क्षमा और इन्द्रिय निग्रह भी तीर्थ है। समस्त प्राणियों में दया और सर्वत्र सरलता बरतना भी तीर्थ है। दान-दम और सन्तोष भी तीर्थ है। ब्रह्मचर्य का पालन भी तीर्थ है, और शिव बोलना भी तीर्थ है। ज्ञान तीर्थ है, धैर्य तीर्थ है और पुण्य करना भी तीर्थ है। मन की विशुद्धता तो तीर्थों का भी तीर्थ है[2]।' सम्भवतः इसी कारण से यह कहावत प्रचलित हुई—'मन चंगा तो कठौती में गङ्गा'।

सच पूजा जाय तो मन की विशुद्धता ही सर्वाधिक श्रेष्ठ है। मन की विशुद्धता से मनुष्य दुर्गम, घोरातिघोर संसार चक्र से छुटकारा पा सकता है। मन की कलुषता ही पाप का मूल है, दुःखरूपी शूल हैं; किन्तु मन की निर्मलता ही ईश्वर-प्राप्ति का सहज साधन है। तीर्थ मन की निर्मलता के अपूर्व एवं सरल उपाय हैं।

---

१. अमरसिंह कृत अमरकोष, नानार्थवर्ग, काण्ड—३, संख्या १२५९।

२. 'सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिमनसः परा।
(शब्दकल्पद्रुम-'तीर्थ' पृ० ६२६)

तीर्थों का वैदिकस्वरूप—

तीर्थों का स्वरूप अर्वाचीन नहीं; अपितु वैदिककालीन है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में 'तीर्थ'[१] शब्द का प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय[२] और मैत्रायणी[३] संहिताओं में भी तीर्थशब्द का प्रयोग मिलता है। काठकसंहिता[४] में एक स्थान पर 'तीर्थानाम्' शब्द का उल्लेख है, जिससे अनेक तीर्थों का बोध होता है। इसी प्रकार से तैत्तिरीय, मैत्रायणी, काठक, जैमिनि आदि में भी 'तीर्थानि' शब्द का प्रयोग अनेक तीर्थों को सम्बोधित करते है[५]। तैत्तिरीय तथा काठक[६] में एक स्थान पर 'तीर्थेन' शब्द का प्रयोग मिलता है तथा शौनकीय-संहिता[७] में 'तीर्थैः' शब्द का प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट है कि तीर्थशब्द की मर्यादा अतीव प्राचीन है, अर्वाचीन नहीं।

ब्राह्मणग्रन्थों और उपषिदों[८] में भी तीर्थों का बहुधा उल्लेख मिलता है। शिवोपनिषद्[९] एक स्थान पर 'तीर्थस्थानेषु' शब्द का उल्लेख करता है। जाबालि[१०]-दर्शनोपनिषद् में 'तीर्थस्नानैः' शब्द का प्रयोग तीर्थ-स्थानों में स्नान की मर्यादा को व्यक्त करता है। 'मठापोपनिषद्'[११] 'तीर्थायतन' शब्द का उल्लेख करता है, जिससे तीर्थ-मर्यादा पर बल मिलता है।

वेदाङ्ग भी तीर्थों की मर्यादा को वर्णित करने में पीछे नहीं। बौधायन[१२] श्रौतसूत्र में 'तीर्थानि' व 'तीर्थामिमन' शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिससे तत्काल में तीर्थ और उन पवित्र स्थलों पर जाने का संकेत मिलता है।

आश्वलायनश्रौतसूत्र[१३] में 'तीर्थदेशात्' शब्द का प्रयोग तत्कालस्थित तीर्थ-नगरों (देशों) की ओर इंगित करता है। विष्णुधर्मसूत्र[१४] 'तीर्थश्च' शब्द का प्रयोग करता है, जिससे तीर्थों के द्वारा होनेवाली पवित्रता पर बल मिलता है। पाणिनीय[१५]-

---

१. आप्नानं तीर्थं क इह........ ......कृतं तीर्थं सप्रयाणं शुभस्यन्ती.....।
(ऋग्वेद–१०।४०।१३; ११४।७)
२. तै० ६,१.१.३; ७,२,१,४।
३. मै०–३।८।१०;　　४. काठक–२२।३।
५. तै० ४;५,११,१; मै० ९,९; का०–१७,१७; जैमिनी० २,१,९।
६. तै० २,६,८,४, काठक०–२६,७।
७. शौन० सं०–१८,४,७।
८. शां०–१८,९; तै० आ०–१०,१,२; जैमि० २,२६६, ऐ० आ०–५,१,३।
९. शिवोप० ६.१९५;　　१०. जाबा० ३०-४,५४।
११. मठाप० ४, २८; १२. बौधा० श्रौ० सू० १५,१,४।
१३. आश्व० श्रौ०, ५,२,६, व ८,१३,२३;　　१४. वि० ध०—८३; ९।
१५. पाणि० वा० गणपा०—५,१,११०।

वार्तिकगणपाठ में एक स्थान पर 'तीर्थ-यात्रा' शब्द का प्रयोग हुआ है। तीर्थों में वहुत से लोग निवास करते थे, जिन्हें 'तीर्थवासी' कहते थे। इसका प्रमाण वासिष्ठ-[1] धर्मसूत्र के द्वारा ज्ञात होता है। शंख-लिखित[2] धर्मसूत्र में प्रयुक्त 'तीर्थस्नानात्' से अभिव्यक्त होता है कि तीर्थों में स्नान करने से नाना प्रकार के पाप-ताप-मुक्ति होती थी, अतएव लोग स्नान की महत्ता समझते थे। तीर्थों में मृत्यु को बड़ा ही शुभ माना जाता था, ऐसा 'अथर्ववेदीयपञ्चपटलिका'[3] से ध्वनित होता है। पाणिनीय[4] उणादि सूत्र में भी तीर्थ का उल्लेख मिलता है। भगवान् गौतम वुद्ध के समय में भी तीर्थों की मर्यादा थी; क्योंकि गौतम वुद्ध का अनेक तीर्थ स्थानों में जा-जाकर शान्ति की खोज करना इसका प्रमाण है। वैसे तो ५वीं-६ठीं ई० से १२वीं ई० तक इसकी सुदृढ़ मर्यादा दिखाई देती है।

तीर्थों के भेद—

ब्रह्मपुराण में तीर्थों को भेद-दृष्टि से चार भागों में विभक्त किया गया है। ये हैं—१. दैव, २. आसुर, ३. आर्ष तथा ४. मानुष[5]। इनमें मानुष-तीर्थ से आर्ष-तीर्थ उत्कृष्ट है तथा आर्ष-तीर्थों से आसुर-तीर्थ श्रेष्ठ हैं। दैव-तीर्थ को तीनों ही तीर्थों से उत्कृष्ट कहा गया है[6]। जो तीर्थ ब्रह्मा-विष्णु और महेश द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं, उन्हें 'दैव-तीर्थ' के नाम से जाना जाता है। असुरों द्वारा स्थापित तीर्थ 'आसुर' के नाम से जाने जाते हैं। दैव प्रदेशों में ही जो तीर्थ देवताओं और ऋषियों की तपस्या के प्रभाव से बने, वे 'आर्ष' कहलाये। जिन तीर्थों को मनुष्यों ने लोक कल्याण, मुक्ति-पूजा, ऐश्वर्य, यश और अभीष्ट प्राप्ति के लिए बताये, वे ही 'मानुषतीर्थ' कहलाये। उदाहरणार्थ जिन नदियों का उद्भव विन्ध्य-पर्वत से हुआ है और साथ ही जिन छः नदियों का उद्‌गम हिमालय से हुआ है, वे ही दैवतीर्थ कहलाते हैं, जो अतीव पुण्यदायक हैं[7]। इसी प्रकार गय, कोलासुर, वृत्र, त्रिपुर, अन्धक, ह्यमूर्धा, नमुचि, लवण, शृङ्गक, यम, पाताल, केतु, मय और पुष्कर-असुरों द्वारा अधिष्ठापित तीर्थ 'आसुर'[8] के नाम से जाने

१. वासि० धर्मसू० २६,१२; २. शंख० ध० १००।
३. अथ० पं० पट०—४१,४,७, सं० भगवद्दत्त, लाहौर १९२०।
४. पाणि० उ० सू० २,७।
५. चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यारुषाणि च।
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः। (ब्रह्मपु० —७०।१६-१७५)
६. मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम्।
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहु पुण्यदम्॥
आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सर्वकामिकम्। (तदेव—७०।१७,१८)
७. ब्रह्म विष्णुशिवैश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते। (ब्रह्मपु० ७०।१९)
८. आसुरैरावृतान्यासंस्तदेवासुरमुच्यते ॥ (वही—७०।२५)

जाते हैं[१]। प्रभास, भार्गव, अगस्त्य, नर-नारायण, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, कश्यप और मनु प्रभृति ऋषियों से सेवित तीर्थ 'आर्ष' नाम से प्रसिद्ध हैं[२]। अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्धाता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नचिकेता, वृषाकपि, अरिंदम इत्यादि से विनिर्मित शुभ मानव-तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हैं[३]।

भारत ही तीर्थरूप है—

यद्यपि तीनों लोकों के तीर्थों को ही पवित्र माना जाता है[४]; फिर भी जम्बूद्वीप के तीर्थों को अतिशय फलदायी कहा गया है और इसमें भी जो भारतवर्ष है, वह तो त्रिभुवन प्रसिद्ध है[५]। भारतवर्ष कर्मभूमि है। यहाँ पर किया गया शुभाशुभ कर्म ही मनुष्य को सुख और दुःख प्रदान करते हैं[६]।' इसमें संशय नहीं कि भगवान् विष्णु, महादेव और क्लेश को नाश करने वाले केशव इस भारत में तीर्थरूप में निवास करते हैं[७]। पद्मपुराण इसी को स्पष्ट करते हुए लिखता है—

अतो विष्णुर्महादेवः केशवः क्लेशनाशनः।
तीर्थरूपेण वर्तेत द्वीपे ह्यस्मिन् सुरेश्वरि[८]॥

अतः स्पष्ट है कि पूरब से लेकर पश्चिम और उत्तर से लेकर दक्षिण तक का भारतीय भूभाग ही तीर्थस्वरूप है[९]।

तीर्थों का वैशिष्टय—

ब्रह्मपुराण का यह कथन तीर्थ के वैशिष्टय को सिद्धकरता है[१०] कि कृतयुग (सतयुग) आदि के प्रारम्भ में भी थोड़े से श्रम के द्वारा अभीष्ट को प्रदान करनेवाले तीर्थ से बढ़कर कोई अन्य सुगम उपाय नहीं है[११]।

---

१. वही—७०।२६।

२. मानुषैः कारितान्याहुर्मानुषाणीति नारद। (वही० ७०।२८ पू०)

३. हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये षणद्याः देवसंभवाः। (वही—७०।२२३०)

४. वही—७०।३५-३६ ५. वही—७०।३७-३८; ६. वही—७०।३९-४०।

७. 'त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेघ्यमुदाहृतम्। (ब्रह्मपु०—७०।२०)

८. जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम्।
कर्मभूमियंतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते॥ (वही—७०।२०)

९. तत्रापि नववर्षाणि भारतं तत्र चोत्तमम्।
कर्मभूमिरियं प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा॥
अष्टौ किंपुरुषादीनि देवभोग्यानि तानि तु।
तेषु स्वर्गात्समागत्य रमन्ते त्रिदिवौकसः॥ (स्कन्दपु० काशी० ४।२२।५३-५४)

१०. ब्रह्मपुराण—६।१२९।२-३; ११. ब्रह्मपुराण ७०।३१।

११. तीर्थस्नानैः सोपवासैर्व्रतैश्च पात्रे दानैर्होमजप्यैश्च यज्ञैः।
भवार्चनैर्देवपूजाविशेषैरात्मा नित्यं शोधनीयो मलाक्तः। (देवीपुराणम्)

ब्रह्मन् ! कृतयुगादौ उपायोऽन्यो न विद्यते।
तीर्थसेवां विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम् ॥

'देवीपुराण' भी इसी बात पर बल देते हुए कहता है कि—'मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्मा के मल को, तीर्थों में स्नान, उपवास, दान, जप, होम, यज्ञ और भगवान् के अर्चन के द्वारा दूर करे।

मनुष्य यदि जप-तप-पूजा-पाठ नहीं कर सकता, तो उसे चाहिए कि तीर्थों में जाकर स्नान करे। तीर्थों में स्थित भगवान् के नाना विग्रहों का दर्शन करे। यही मानव-जीवन का मुख्य लक्ष्य है। भागवतमहापुराण का यह श्लोक बड़ा ही मार्मिक और वास्तविक है।

'बर्हायिते ते नयने नराणां
विष्णोर्लिङ्गानि न निरीक्षितो ये।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ
क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ' ॥

वस्तुतः पुराणकाल में आते-आते तीर्थों का व्यापक माहात्म्य देखने को मिलता है। पुराणों ने तीर्थों की मर्यादा को इतना बढ़ा-चढ़ा कर मनुष्यों के सामने रखा कि कोई भी मनुष्य व सम्प्रदाय उससे अछूता न बच सका। जैनियों में 'तीर्थङ्कर' हुआ करते थे, जिससे तीर्थों की मर्यादा पर गहरा प्रकाश पड़ता है।

यदि देखा जाय तो तीर्थ मनुष्य के विक्षुब्ध मन को शान्ति प्रदान करने वाले हैं। जैसे संतप्त दावानल जल से प्रशान्त हो जाता है, ठीक उसी प्रकार से इस भौतिकता की तृष्णा से जलता हुआ व्यक्ति का अन्तर्मन तीर्थों के पवित्र एवं शुद्ध जल और वायु से निर्मल एवं शान्त हो जाता है। तीर्थ मनुष्य के मन को मर्यादित करने के लिए श्रेष्ठ उपाय हैं। तीर्थों में पहुँचते ही न जाने मनुष्य के मन को कौन सी अदृश्य शान्ति प्राप्त होती है कि मनुष्य की नाना कुभावनाएँ अपने आप ही निष्ट हो जाती हैं, साथ ही साथ शुभ भावनाओं का उदय होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने यह पाठ पढ़ा है कि 'तीर्थों में किया गया पाप अक्षुण्ण होता है और जन्म-जन्मान्तर तक दुःख प्रदान करता है। मनुष्य को तीर्थ-सेवन अनिवार्य है और तीर्थ मनुष्य के पाप-ताप को नाश करने में समर्थ हैं।

महाभारत के शान्ति पर्व में पराशर जी ने सरस्वती, नैमिष, पुष्कर तथा अन्य पृथ्वी के पुण्य-क्षेत्रों से दान, विषयासक्ति का परित्याग, शान्तमूर्ति धारण तथा जल व तपस्या के जरिये शरीर को पवित्र करना कहा है। तात्पर्य यह कि पवित्र क्षेत्रों में मनुष्य के द्वारा दिया गया दान-स्नान-तपस्या आदि शुभ फलों को प्रदान करनेवाले होते हैं।

(महाभारत, शान्तिपर्व; मोक्षधर्म, २९८।३१)

---

१. भक्तिरत्नावली—पृ० ९७, तृतीय विरचन २७वाँ।

५

नैमिषारण्य तीर्थ के रूप में—

नैमिषारण्य की तीर्थरूप में मर्यादा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक-काल से लेकर रामायण तथा महाभारतकाल तक यह एक पावन तीर्थ के रूप में गिना जाता रहा। शौनकादिक तपस्वियों की तपश्चर्या सर्वत्र वैदिक-युग में ख्यात थी। त्रेतायुग में भगवान् कोसलाधिपति श्रीराम का तीर्थागमन व द्वापर-युग में बलराम व पाण्डवों का आगमन इसका महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। यह नैमिष भारत के तीर्थों में सर्वाधिक प्राचीन रहा; क्योंकि सृष्टि के आरम्भ काल में मनु और सतरूपा की पुत्र-प्राप्ति के लिए तपस्या, भगवान् विष्णु का वरदान और पुत्ररूप में उत्पन्न होने के लिए स्वीकृति, अवश्य ही इसके अति प्राचीन महत्त्व को अभिव्यक्त करता है[१]। प्रजापति भगवान् ब्रह्मा के मनोमय चक्र का नैमिष में शीर्ण होना, तपस्या योग्य भूमि तथा सकल कामनाओं की संसिद्धि इस अरण्य को तीर्थों में उत्तम तीर्थ व्यक्त करती है। तीर्थों के भेद से यह 'दैव' तीर्थ के रूप में मान्य है।

तीर्थों में नैमिषारण्य की गरिमा—

वैसे तो समस्त तीर्थों की अपनी मर्यादा है; फिर भी भेद-दृष्टि से कुछ तीर्थ अतीव उत्तम, कुछ मध्यम और कुछ उससे भी कम मर्यादा रखते हैं। जैसा कि तीर्थों के सात्त्विक, राजस, और तामस-भेद से स्पष्ट है। महाभारत[२] व पद्मपुराण[३] में नैमिष को पृथ्वी पर एक मात्र उत्तम तीर्थ बतलाया गया है। इसी तरह वामनपुराण में प्रह्लाद के गुरु शुक्राचार्य से पूछे जाने पर कि त्रैलोक्य में कौन-सा तीर्थ सर्वाधिक श्रेष्ठ है, इस पर शुक्राचार्य जी का यह वाक्य कि 'पृथ्वी पर नैमिष तीर्थ, आकाश में पुष्कर तीर्थ और पाताल में चक्र तीर्थ सर्वश्रेष्ठ है।' इस उक्ति से नैमिष की मर्यादा आँकी जा सकती है।

'पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम्।
चक्रतीर्थं तु महाबाहो पातालतले विदुः[४] ॥

इससे अधिक मर्यादा नैमिष की ओर क्या कही जा सकती है, जहाँ सर्वप्रथम निर्गुण-निराकार ब्रह्म का सगुणरूप में आविर्भाव हुआ। जहाँ की तपस्या के परिणाम-स्वरूप ही भगवान् ने अयोध्या और मथुरा में जन्म लेने की प्रतिज्ञा की। जहाँ पर शौनकादिक जैसे परम तपस्वी का दर्शन करने के लिए उत्सुक हिमालय-प्रान्त-वासी, महेन्द्र-पर्वत-निवासी, विन्ध्यवासी, अर्बुदारण्यवासी, पुष्करवासी, जम्बूमार्ग के निवासी

---

१. पद्मपुरा०, आदिखंड—२७।८७ व १।६।२।
२. महाभारत—पृथिव्यां नैमिषं पुण्यम्।
३. यत्र तु धर्मचक्रस्य शीर्णो यत्राभवत्पुरा।
तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ (पद्म० ५:११ ८)
४. वामनपुराण—७।३७।

ऋषिगण अपने शिष्यों प्रशिष्यों के साथ आये।[१] व्यास-शिष्य सूत जी के द्वारा अष्टादश पुराणों का कथा श्रवण कराना नैमिषारण्य की गरिमा को जन-जन तक फैला ही दिया है[२]। स्कन्दपुराणान्तर्गत रेवाखण्ड की वर्णित 'सत्यनारायणव्रत कथा'[३] प्रत्येक हिन्दू के मानस का मानस है। दधीचि जैसे परम तपस्वी व दानी की दान-गरिमा की कहानी नैमिष तपोभूमि के कण-कण की कहानी है। नैमिष वह तीर्थ है, जहाँ भारतवर्ष के समस्त तीर्थ साक्षात् रूप से विद्यमान हैं। इसीलिए महाभारत और पद्मपुराण[४] दोनों ही इस बात को दुहराते हैं—

'पृथिव्यां यानि तीर्थानि तानि सर्वाणि नैमिषे।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि नैमिषे तानि भारत॥'

देवीभागवत में भी इसी कारण से नैमिष को प्रथम तीर्थ कहा गया है।

'प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम्।
अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले[५]॥'

कूर्मपुराण के एक श्लोक से स्पष्ट होता है कि नैमिष तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध था। भगवान् महादेव का अतिप्रिय स्थान व महान् पातकों को नाश करने वाला था।

'इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम्।
महादेवप्रियकरं महापातकनाशनम्[६]॥'

स्कन्दपुराण के माहेश्वर खण्ड से ज्ञात होता है कि नैमिषारण्य तीर्थों में भी उत्तम और क्षेत्रों में भी उत्तम क्षेत्र था, जहाँ पर शौनकादिक तपस्वी स्वकर्मों में निरत रहते हुए दीर्घ सत्र किये थे।

'तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम्।
तत्रैव नैमिषारण्ये शौनकाद्यास्तपोधनाः।
दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः[७]॥'

अग्निपुराण तो नैमिष को भुक्ति और मुक्ति प्रदान करनेवाला तीर्थ कहता है—'नैमिषं परमं तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्[८]।'

---

१. पद्मपुरा० आदि खं० १।२६।१०-१०४।
२. ब्रह्मपु०—१५-१५, अग्नि० ११२, गरुडपु० ११२-३।
३. स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड, सत्यनारायण माहात्म्य, मोर-प्रकाशन, कलकत्ता।
४. पद्मपु० आदि खं० १।३२।२४।
५. देवीभागवत—४।८।४०।
६. कूर्मपु०—२।४१।१।
७. स्कन्दपु० माहे०—१-३-४।
८. अग्निपुराण—१०९।२४।

इसी पुराण के अन्य अध्यायों में गङ्गा, गया, प्रयाग, काशी, अयोध्या, अवन्ती, कुरुक्षेत्र, पुष्कर, नैमिष, प्रभास आदि तीर्थों को अघ-ओघ को विनाश करने वाला कहा गया है[१]।

पद्मपुराण नैमिष को समस्त तीर्थों में फल को प्रदान करने वाला बतलाता है—'तीर्थं तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम्'। इसके साथ ही साथ इसे समस्त तीर्थों से सेवित बतलाता[२] गया है। उसी पुराण के छठे खण्ड में विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य दिखलाते हुए 'नैमिष को ऋषियों का पावन क्षेत्र कहा गया है[३]।'

'स्कन्दपुराण' का पञ्चम खण्ड जहाँ इसे एक तरफ 'पुण्य-निलय' घोषित करता है[४], वहीं इसी पुराण का ब्रह्मखण्ड इसे निमिषक्षेत्र (देवविष्णु-क्षेत्र) कह कर इसकी प्रशंसा करता है।

'प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम्।
गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम्॥'
(ब्रह्मोत्तर ३।३।१।२७)

इसी पुराण के ब्रह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तर उपखण्ड में प्रयाग, पुष्कर, केदार, सेतुबन्ध, गोकर्ण और नैमिषारण्य को तत्काल सिद्धि देने वाला बताया गया है।

स्कन्दपुराण के ही काशीखण्ड में नैमिषारण्य को अनुत्तम स्वर्ग का साधन कहा गया है।

कुरुक्षेत्रं हि सर्वेषां क्षेत्राणामधिकं ततः।
ततोऽपि नैमिषारण्यं स्वर्गसाधनमुत्तमम्[५]॥

'सौरपुराण' भी इसे तीर्थों में उत्तम और क्षेत्रों में सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र कहा है[६]।

सन् १२९० ई० में उड़िया भाषा में रचित वाराहपुराण में नैमिषारण्य को सिद्ध-पीठ के रूप में माना गया है।

'वन्दइ परमब्रह्म महेशमूरति।
नारद के आगरे जे ईश्वर कहन्ति॥
वसि छन्ति सर्व शषि नैमिषा अरन्य।
सिद्धपीठ सरोवर राशि(१)नुन्दमान[७]॥

---

१. वही—१७४।१८-१९।
२. पद्मपुराण—५।११।६-९।
३. वही—६।१२९।५-६।
४. स्कन्दपु० रेवाखं० १।६।
५. स्कन्दपुराण, काशी० २२।५७।
६. सौरपु०—१।३।
७. देखिए—वाराहपुराण, भाग—१, प्रस्तावना—भाग—पृ० vii, सन् १९८१।
(सर्व भारती काशी राजन्यास प्रकाशन)

अधिक क्या, नैमिष की मर्यादा के लिए यह श्लोक अधिक है—

'नैमिषं प्रार्थयानस्य पापस्यार्धं प्रणश्यति ।
प्रविष्टमानस्तु नरः सर्वपापात् प्रमुच्यते'[1] ॥'

प्राचीन हस्तलिखित नैमिषारण्य माहात्म्य का निम्नलिखित श्लोक भी इस तीर्थ की विशिष्टता को प्रतिपादित करता है—

हरिर्यथा हि देवानां द्विपदां ब्राह्मणो यथा ॥ ३४ ॥
कपिला सर्वधेनूनामौषधीनां यथा यवः ।
एकादशी तिथीनाञ्च आश्रमाणां यथा यती ॥ ३५ ॥
तथा सर्वेषु तीर्थेषु नैमिषारण्यमुच्यते ।
पुण्यात्पुण्यतमं ज्ञेयं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ ३६ ॥

× × ×

नैमिषे च परो मोक्षं क्षेत्रं नैवास्ति तादृशम् ।
दत्तं भुक्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ ३८ ॥
ध्यानमध्ययनञ्चैव सर्वं भवति चाक्षयम् ।
धन्यास्ते मानवा लोके नैमिषे निवसन्ति ये ॥ ३९ ॥
नैमिषे येन संतिष्ठं सर्वकिल्विषनाशनः ।
आरण्ये सृज्यते नेमिर्नैमिषं तेन उच्यते[2] ॥ ४० ॥'

इन उपर्युक्त श्लोकों का आशय यह है कि जिस प्रकार से देवों में भगवान् विष्णु, द्विपदों (मानवों) में ब्राह्मण, गायों में कपिला गाय, औषधियों में यव, तिथियों में एकादशी, आश्रमों में 'पति' उत्तम है, ठीक उसी प्रकार से समस्त तीर्थों में नैमिषारण्य पुण्यतम और उत्तमोत्तम है। नैमिष परम मोक्षदायक क्षेत्र है, ऐसा कोई क्षेत्र नहीं। यहाँ पर दान, भोग, यज्ञ, जप-तप, अभिलाषा, ध्यान, अध्ययन आदि सभी अक्षय होते हैं। इस पृथ्वी पर रहनेवाले वे मानव धन्य हैं, जो नैमिषारण्य में वास करते हैं, साथ ही साथ नैमिष में जिनके द्वारा वास किया गया, उनका समस्त पाप छूट जाता है।

देवीभागवत नैमिष को सर्वप्रथम पुण्यप्रद तीर्थ बतलाता है।

प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम् ।
अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले[3] ॥

---

१. पद्मपुराण—२।१।
२. नैमि० माहा० I; १।३४-४०।
३. देवीभाग० ४।८।४०।

यही कारण है कि नैमिष 'तीरथवर'[1] के नाम से विख्यात था, जिसकी मर्यादा चतुर्दिक् जम्बूद्वीप में प्रभासित हो रही थी। यही एक मात्र वह स्थान था, जहाँ पर दूर-दूर से लोग आ-आकर ज्ञानार्जन करते थे तथा उस ज्ञान की किरण को ग्राम, नगर और देशों में जन-जन तक पहुँचाते थे। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं कि कभी यह नैमिष वैदिक और पौराणिक संस्कृति का प्रचार-केन्द्र था। नैमिष सभी तीर्थों में पावन है, जिसकी धर्म-ध्वजा हमेशा अम्बर में लहराती रही है और लहराती रहेगी।

महाभारत के निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है कि कुरुक्षेत्र, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोशल, काशी, कलिंग, मगध और चेदि के निवासी ही शाश्वत धर्म को जानते थे।

कुरवः सह पाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः।
कोशला काशयोऽङ्गाश्च कलिङ्गा मागधास्तथा॥
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम्॥

फाल्गुन में नैमिष माहात्म्य—

गर्ग-संहिता के एक श्लोक से स्पष्ट होता है कि फाल्गुन मास में नैमिष का माहात्म्य अधिक है। यह माहात्म्य फाल्गुन मास में होनेवाली परिक्रमा की ओर इंगित करता है। आज भी यहाँ परिक्रमा फाल्गुन मास में ही चलती है।

'चन्द्रग्रहे तु काश्यां वै फाल्गुने नैमिषे तथा।
एकादश्यां शूकरे च कार्तिक्यां गुणमुक्तिदे॥'

नैमिष में गिरि-धारा प्रदान माहात्म्य—

'देवीपुराण' के एक श्लोक से स्पष्ट होता है कि पुष्कर, नैमिष तथा अक्षय पञ्चमुख में पर्वत पर धारा प्रदान करने से ग्रहपीड़ा कभी भी नहीं होती है।

'पुष्करे नैमिषे वत्स! देया पञ्चमुखेऽक्षये'।
गिरौ धाराप्रदानेन ग्रहपीडा न जायते[2]॥

बदरिकाश्रम में नैमिष-धारा—

स्कन्दपुराण के वैष्णव-खंड में उल्लिखित बदरिकाश्रम माहात्म्य से स्पष्ट होता है कि 'बदरिकाश्रम के नैऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) भाग में नीचे की तरफ पाँच धाराएँ बहती हैं। इन पाँचों धाराओं का नाम क्रमशः प्रभास, पुष्कर, गया, नैमिष और

---

१. तीरथवर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता।
(रामचरितमानस)

२. देवीपुराण—७५।४।

कुरुक्षेत्र है। ये द्रव (जल) रूप से सदैव वहाँ प्रवाहित होती रहती हैं। इससे स्पष्ट है कि बदरिकाश्रम में भी 'नैमिष' धारारूप में विद्यमान है। यह नैमिष के माहात्म्य को व्यक्त करता है।

'ततो नैर्ऋत्यदिग्भागे पञ्चधारा पतत्यधः।
प्रभासं पुष्करञ्चैव गयां नैमिषमेव च।
कुरुक्षेत्रं विजानीहि द्रवरूपं षडानन[1] ॥

नैमिष में महाकुम्भ—

शिवमहापुराण[2] के एक श्लोक से स्पष्ट है कि बृहस्पति और सूर्य के मेष-राशि में स्थित होने पर गुरुवार और रविवार को नैमिषारण्य और बदरिकाश्रम में स्नान करने से मनुष्य को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। इन दोनों की स्थिति बारह वर्ष बाद मेष संक्रान्ति में पड़ती है।यथा—

नैमिषे बदरे स्नायान्मेषगे च गुरौ रवौ।
ब्रह्मलोकप्रदं विद्यात्ततः पूजादिकं तथा[2] ॥

'कलि' का नैमिष में निष्प्रभाव—

शास्त्रों का कथन है कि कलियुग में कलि के प्रभाव से सभी लोग अधार्मिक हो जायेंगे। समस्त पृथ्वी पर कलि का घोर ताण्डव शुरू हो जायेगा। लेकिन पुराणों में अनेक ऐसे उद्धरण मिलते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि नैमिष में कलि का कोई प्रभाव नहीं होगा। स्कन्दपुराण के अनुसार देवता लोग भी आकाश का परित्याग करके नैमिषारण्य में ही वास करने लगेंगे।

'द्वापरान्ते नृपश्रेष्ठ ! अनागते च कलौयुगे।
भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः।
सर्वे देवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमास्थिताः[3] ॥

बृहद्धर्मपुराण तो इस बात का डिण्डिमघोष करता है कि 'नैमिष क्षेत्र कलि से बिल्कुल अस्पृष्ट है और परम मोक्षदायक है—

'इदमेवोत्तमं क्षेत्रं निमिषक्षेत्रमाहितम्।
अस्पृष्टं कलिना नृणां परममोक्षदायकम्[4] ॥'

---

१. स्कन्दपु० वैष्णव-खंड—बदरिकाश्रममाहा० ७।१।

२. आज भी हरिद्वार में कुछ विद्वान् ब्राह्मण संकल्प का वाचन करते समय 'नैमिष-क्षेत्र' का नाम लेते हैं, जिससे उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है। यह रहस्य डॉ० गौरीनाथ शास्त्री जी से ज्ञात हुआ।

३. स्कन्दपुराण—ब्रह्मखंड ३।२।३६।१३-१४।

४. बृहद्धर्मपु०—१३।२९।

इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर भी इसी बात पर बल देते हुए कहा गया है—'यत्र नास्ति कलिदेवः सत्त्वहारी नृणां सदा'[१]। इससे स्पष्ट है कि नैमिष में कलिदेव का कोई प्रभाव नहीं। देवीभागवत में भगवान् प्रजापति ऋषियों से कहते हैं कि जहाँ पर चक्र की नेमि शीर्ण होगी, वह देश पावन होगा। वहाँ पर कभी भी कलि का प्रवेश नहीं होगा।' हे ऋषियों! तब तक तुम लोग वहीं (नैमिष) में वास करो, जब तक सतयुग नहीं आता।

'कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित् संभविष्यति।
तावत्तिष्ठन्तु तत्रैव यावत् सत्ययुगे पुनः[२]॥'

आज भी कलियुग के वैज्ञानिक भाग-दौड़ में नैमिषारण्य तद्वत् अपनी शान्ति को बनाये हुए है, जहाँ पर अहर्निश सन्त-महापुरुषों की वाणियाँ लोगों के मन को पवित्र कर रही हैं। यहाँ अरण्य की मनोहारी छटा मन को बलात् आकृष्ट कर लेती है। इसमें तपस्या का जादू आज भी पूर्ववत् है।

नैमिषारण्य में पिण्डदानादि का महत्त्व—

नाभि-गया नाम से प्रख्यात नैमिषारण्य में पिण्डदानादि व श्राद्ध का विशेष फल बतलाया गया है। कृत्यकल्पतरु के चतुर्थ भाग श्राद्धकल्प विवेक में श्राद्ध देशों के विषय में उल्लेख करते हुए विष्णु-स्मृति का उदाहरण दिया है, जिसके अनुसार विशेषरूप से गङ्गा के किनारे प्रयाग, सरस्वती और वाराणसी में श्राद्ध करना चाहिए; किन्तु नैमिषारण्य में सतत (हमेशा) श्राद्ध पुण्यदायी होता है।

'गङ्गातीरे प्रयागे च सरस्वत्यां विशेषतः।
सततं नैमिषारण्ये वाराणस्यां विशेषतः[३]॥'

शंख ने भी इसकी पुष्टि की है—

यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करेषु च।
प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानन्त्यमुच्यते[४]॥

देवल ने श्राद्ध के लिए पूजित देशों में गया, गङ्गा, सरस्वती, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, नैमिष और पुष्कर को श्रेष्ठ बताया है।

श्राद्धस्य पूजितो देशो गया गङ्गा सरस्वती।
कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च नैमिषं पुष्कराणि च।

---

१. वही—६।७।
२. देवीभागवत—१।२।३०। (पंडित पुस्तकालय) संस्करण।
३. विष्णु० ८५; १।६७; कृत्यकल्पतरु—पृ० ३१, सन् १९५० (वी० ओ० आ० आई०)।
४. शंख—वही—पृ० ३१।

नदीतटेषु तीर्थेषु शैलेषु पुलिनेषु च ।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेनेह पितामहाः[१] ॥

शिवपुराण के एक प्रसंग से कि कालंजर, दशार्ण, नैमिष, कुरुजाङ्गल तथा वाराणसी आदि पवित्र स्थानों में मनुष्य को प्रयत्नपूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिए। ऐसा करने पर इन पवित्र तीर्थ-स्थानों में मनुष्य की यथोचित काम्य फल की प्राप्ति होती है। गरुडपुराण के प्रेतकल्प से भी 'नैमिष' में पिण्डदान का महत्त्व लक्षित होता है।

गङ्गायां यमुनायाञ्च **नैमिषे** पुष्करेषु च ।
तडागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमले जले[२] ॥

'शङ्खस्मृति' में श्राद्ध के सम्बन्ध में कहा गया है कि 'गङ्गा और यमुना के किनारेपर पयोष्णी नदी के किनारे, नर्मदा और बाहुदा नदी के किनारे, भृगुलिंग हिमालय, गङ्गाद्वार, प्रयाग, नैमिष, पुष्कर तथा गया के समीप में दिया गया श्राद्ध, अक्षय होता है।'

'गङ्गायमुनयोस्तीरे पयोष्णामरकण्टके ।
नर्मदाबाहुदातीरे भृगुलिंगे हिमालये ।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च **नैमिषे** पुष्करे तथा ।
सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षयतां व्रजेत्[३] ॥'

पद्मपुराण में भी एक स्थान पर नैमिष-श्राद्ध करने की पुष्टि की गयी है। इसके अनुसार सर्वप्रथम पुष्करारण्य में तदनन्तर नैमिषारण्य में और पुनः धर्मारण्य में पहुँच कर भक्ति-पूर्वक श्राद्ध करना चाहिए।

'प्रथमं पुष्करारण्ये नैमिषे तदनन्तरम् ।
धर्मारण्ये पुनः प्राप्य श्राद्धं भक्त्या प्रदास्यति[४] ॥'

इन उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार से गया में दिया गया श्राद्ध अक्षय होता है, उसी प्रकार नैमिष में भी प्रदत्त श्राद्ध अक्षय होता है। यहाँ आज भी यह बात लोक-प्रसिद्ध है कि 'नैमिष में दिया गया श्राद्ध पितरों को तृप्तिदायक होता है। गोमती के पवित्र तट पर वर्तमान गयावर गाँव के समीप ही एक गयासुर का छोटा सा मन्दिर है, जहाँ पर पितरों को पिण्ड दानादि प्रदान किये जाते हैं[५]। अतः यहाँ पिण्डदानादि का माहात्म्य चिर-प्रख्यात है।

---

१. देवल– वही– पृ० ३२।
२. यहाँ पर नैमिष के लोग इसे 'नाभि गया' के नाम से संबोधित करते हैं।
३. गरुडपुराण, प्रेत-कल्प० ३०।१३-१५।
४. पद्मपुराण—५।.७।३१।
५. देखिये 'नैमिष क्षेत्र परिक्रमा नक्शा'।

नैमिषारण्य एक वैष्णव-क्षेत्र के रूप में—

विभिन्न साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि नैमिषारण्य भगवान् विष्णु का प्रिय स्थान है, अतएव यह वैष्णव क्षेत्र है। 'शिवतत्त्वरत्नाकर' नैमिषारण्य को २३ वैष्णव-क्षेत्रों में से एक मानता है, यथा—

श्रीपतिश्च तथा पुत्र! नैमिषं कुरुजाङ्गलम्।
सिंहामलकशैलाख्यमहोबलमतः परम्॥
वैष्णवेषूत्तमं क्षेत्रं त्रयोविंशतिसंज्ञकम्[1]॥

वीरमित्रोदय के तीर्थ-प्रकाश में नैमिष में विष्णु का सारूप्य कहा गया है—

'नैमिषे विष्णुसारूप्यं पुष्करे ब्रह्मणोऽन्तिकम्।
आखण्डलस्य लोको हि कुरुक्षेत्रे च साध्यते'[2]॥

वामनपुराण सरोमाहात्म्य में विभिन्न स्थानों पर विष्णु के नामों को बतलाते हुए 'नैमिषे **पीतवाससम्**'[3] व '**गोमत्यां छादितगदम्**'[4] नामक विष्णु को बतलाया गया है। इसी पुराण के ग्यारहवें अध्याय में प्रह्लाद के द्वारा यह वचन कि 'द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम्'[5] नैमिषारण्य में स्थित पीतवस्त्रधारी भगवान् विष्णु के होने की पुष्टि करता है, जिसे नैमिषारण्य की यात्रा के समय प्रह्लाद अपने सैनिक असुरों से कहता है।

'स्तोत्ररत्नाकर' में 'नैमिषे हरिमव्ययम्'[6] का वर्णन आता है, जिससे नैमिष में भगवान् विष्णु का सतत वास सिद्ध होता है। महाभारत[7] के एक श्लोक में 'निमिष' को भगवान् विष्णु का पर्याय बतलाया गया है। कहीं-कहीं इसे 'निमिष-क्षेत्र' भी कहते हैं। अतएव यह नैमिष विष्णु का ही क्षेत्र है। वाराहपुराण[8] की यह कथा कि 'निमिष' मात्र में भगवान् विष्णु ने दुर्जय व उसकी सेना का वध कर दिया, इस कारण 'नैमिष' नाम पड़ा, उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि करता है। नैमिष परिक्रमा पड़ाव का हरैंया[9]—(हरिया-क्षेत्र), हरि-क्षेत्र का बोध कराता है। द्वारिकाधीश, साक्षी-गोपाल आदि नाम इसके प्रमाण हैं। पुरातात्त्विक दृष्टि से भी चतुर्भुज नैमिष नाथ, विष्णु की सर्वाधिक प्राचीन मूर्तियाँ यत्र-तत्र नैमिषारण्य में देखने को मिलती हैं।

---

१. शिवतत्त्वरत्नाकर—४।२।५०-५४।
२. वीरमित्रो० तीर्थप्र० प्रयाग-माहा० पृष्ठ—३२१।
३. वामनपुराण—६३।९।
४. वही—६३।३१।
५. वही—११।१०६-१११।
६. स्तोत्ररत्नाकर—१।२५।
७. देखिये—शब्दकल्पद्रुम 'निमिष' शब्द की व्याख्या।
८. देखिये—नैमिष की उत्पत्ति वाराहपुराणानुसार।
९. नैमिषारण्य परिक्रमा नक्शा—पड़ाव संख्या-२।

नैमिषारण्य शिव-क्षेत्र के रूप में—

अनेकों साक्ष्य नैमिषारण्य को शिव-क्षेत्र भी प्रमाणित करते हैं। कूर्मपुराण तो स्पष्ट कहता है कि यह उत्तम नैमिषारण्य भगवान् शिव का स्थान है। यहाँ आज भी देवाधिदेव शिव प्रमथगणों के साथ रमण करते हैं।

स्थानं भागवतः शंभोरेतन्नैमिषमुत्तमम्[1]।

× × × ×

अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वकृत्।
रमते अद्यापि भगवान् प्रमथैः परिवारितः[2]॥

वामनपुराण से विदित होता है कि नैमिष क्षेत्र में वायु द्वारा प्रतिष्ठापित देवेश (वर्तमान देवदेवेश्वर) का सिद्ध स्थान है, जिसका प्रह्लाद ने विधिपूर्वक पूजन किया था। वीरमित्रोदय के निम्न उद्धरण से नैमिष में देवदेव (शिव) का स्पष्टीकरण होता है। शिवमहापुराण के पार्वती खंड के अनुसार भगवान् के ४२ अवतारों में से एक अवतार नैमिषारण्य में भी हुआ था, जिसमें इनका नाम 'शूली' पड़ा था।

'परिवर्ते चतुर्विंशे व्यासो यक्षो यदा विभुः।
'शूली' नाम महायोगी तद्युगे नैमिषे तदा[3] ॥'
वाराणस्यां महादेवं प्रयागे तु महेश्वरम्।
नैमिषं देवदेवं च गयायां प्रपितामहम्[4] ॥
(वीरमित्रोदय से उद्धृत)

इसी पुराण की कोटिरुद्र-संहिता में समस्त ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिष्ठापित नैमिष में 'ऋषीश्वर' नामक शिवलिङ्ग का वर्णन मिलता है। इसी तरह से मिश्रित में दधीचि के द्वारा प्रतिस्थापित 'दधीचेश्वर' नामक शिवलिङ्ग का वर्णन मिलता है और हत्याहरणतीर्थ में भी अघ को नाश करने वाले शिवलिङ्ग का वर्णन है।

---

१. कूर्मपुराण—२।४१।९ व १४।
२. वामनपु० ५७।४।
३. शिवपु० पार्व० खंड—२।३४।
४. 'नैमिषारण्यतीर्थे तु निखिलर्षिप्रतिष्ठितम्।
ऋषीश्वरमितिख्यातं शिवलिङ्गं सुखप्रदम्॥
× × × ×
दाधीचं शिवलिङ्गं तु मिश्रर्षिवरतीर्थके।
दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम्॥
× × × ×
हत्याहरणतीर्थे तु शिवलिङ्गमघापहम्॥
(शिवपु० रुद्रकोटि सं० हि० ११।१०-१६)

नैमिष में 'कुश-हस्त' भगवान् शङ्कर का वर्णन आया है। श्री आर० सी० हाजरा महोदय ने अपने लेख 'शिव-धर्म' में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि भगवान् शङ्कर की पूजा कुरुक्षेत्र, नैमिष और पुष्कर में समानरूप से थी।[१]

आज भी नैमिष क्षेत्र में हजारों की संख्या में भगवान् शङ्कर के मन्दिर व शिव-लिङ्ग देखे जा सकते हैं। भूतेश्वर महादेव व देवदेवेश्वर तो विशेष पूज्य हैं। यहाँ पर ई० पू० की बहुत सी पुरानी शिलाओं पर शिव और पार्वतो की मूर्तियाँ मिलती हैं। इसीलिए 'शिवतत्त्वरत्नाकर' नैमिष को स्पष्ट रूप से शिव-क्षेत्र गिनाने से नहीं चूकता।

'जप्येश्वरं कुम्भघोणं नैमिशारण्यमेव च।
केदारण्यं कालहस्ती कमलालय एव च।

× × ×

क्षेत्राण्येतानि वसतां भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै[२]।'

स्कन्दपुराण के ही कौमारिका-खंड के द्वारा भी यह स्पष्ट होता है कि नैमिष में वायु और वरुण दोनों ही शिवलिङ्गों की स्थापना करके परम मुदित हुए थे।

उपर्युक्त तथ्यों से सुस्पष्ट है कि नैमिष एक वैष्णव-क्षेत्र के साथ ही साथ शिव-क्षेत्र भी है।

प्रजापति ब्रह्मा का क्षेत्र—

पद्मपुराण से स्पष्ट होता है कि भगवान् प्रजापति ब्रह्मा देवगणों के साथ ही नित्य नैमिष में निवास करते हैं। यथा—

'ततश्च नैमिषं गच्छेत् पुण्यं द्विजनिषेवितम्।
तत्र नित्यं निवसति ब्रह्मा देवगणैः सह[३]॥'

शब्दकल्पद्रुम में नैमिष का परिचय देते हुए कहा गया है कि 'तत्र ब्रह्मा निवसति, तत्र प्रवेशात् सर्वपापनाशः स्नानात् यागफलप्राप्तिः सत्यकुलोद्धारः उपवासेन प्राण-त्यागात् स्वर्गप्राप्तिश्च[४]।' अर्थात् नैमिष में ब्रह्मा वास करते हैं। प्रवेश से ही सभी पापों का नाश हो जाता है। स्नान करने से यज्ञ-फल की प्राप्ति होती है, सत्य कुल का उद्धार होता है, उपवास व प्राण-त्याग से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

---

१. 'पुराणम्' जन० ८५, पेज २८७ पैरा २०।
२. शिवतत्त्वरत्ना० ४।२।५५-६०।
३. पद्मपुराण, आदि-खंड—१।३२।२३।
४ शब्दकल्पद्रुम—६२८ भाग–२, सन् १९६४।

वर्तमान समय में ब्रह्मावर्त (ब्रह्मवैवर्त) सरोवर, जो कि अब गोमती की धारा में समाहित हो चुका है, ब्रह्मा जी के तपःस्थल की ओर स्मृति दिलाता है। आनन्द-रामायण के अनुसार राम ने इसमें स्नान किया था[१]।

भास्कर-क्षेत्र—

नैमिषारण्य क्षेत्रान्तर्गत वर्तमान हत्याहरण तीर्थ ही भास्कर (सूर्य) क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। यहाँ का भाद्रमास में विशेषरूप से माहात्म्य है। यह तीर्थ 'हत्या-कोटि-विनाशक'[२] कहा गया है। आज भी बहुत से हत्यारे अपनी हत्याओं से छुटकारा पाने के लिए यहाँ स्नान करते हैं। प्रत्येक रविवार को यहाँ मेला लगता है।

शक्ति-पीठ के रूप में नैमिष—

आद्या पराम्बा माँ भगवती का शक्ति-पीठ नैमिष में है। इसके अनेक साक्ष्य मिलते हैं। स्कन्दपुराण, मत्स्य[३], 'कूर्म' व 'देवी-भागवत' में नैमिष में लिङ्गधारिणी नाम की देवी का उल्लेख आता है।

'प्रयागे ललिता देवी नैमिषे लिङ्गधारिणी[४]।'

× × ×

तथा— 'वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी ॥
क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिङ्गधारिणी[५]।'

× × ×

तथा— 'नारायणो नरोद्भूतिः कौमुदी लिङ्गधारिणी।
कामुका ललिता भावा परापरविभूतिदा[६]॥'

× × ×

वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी।
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षां गन्धमादने[७]॥

शिवपुराण के माहेश्वर-खंड में इस देवी को 'सारङ्गधारिणी' कहा गया है, जो कि पाठभेद-सा प्रतीत होता है। देवीपुराण से स्पष्ट है कि वह देवी नैमिष में है और कुरुक्षेत्र में भी है जिसके द्वारा सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् अभिव्याप्त है।

---

१. आनन्दरामायण—'स्नात्वा तद् ब्रह्मवैवर्तसरस्यथ रघूत्तमः।
२. शिवमहापु०,—कोटिरुद्रसं० ११।१६।
३. स्कन्दपुराण—४।५।
४. देवीभागवत—७।३०।५५।५७।
५. कूर्मपुराण—१।११।८१।
६. मत्स्यपु०—१३।२६-२७।
७. शिवमाहे० अरुणा०—२।२५।

'नैमिषे दृश्यते देवि! कुरुक्षेत्रे च दृश्यते।
त्वयाक्रान्तं जगत्सर्वं जगदेतच्चराचरम्[१] ॥'

पं० रघुनाथ शर्मा ने स्तोत्रवल्लरी के सन्तति-स्तव में देवी की स्तुति करते हुए कहा है—

'अयि नैमिषकाननगे भवती तनुतां प्रसुतं गिरिराजसुते[२] ।
'अयिलिङ्गविधारिणिके ललिते सितनीलसरिद्वरसङ्गमगे ॥'

उपर्युक्त श्लोक में पंडित जी ने लिङ्गधारिणी ललिता को प्रयाग में दिखाया है, जो कि आज नैमिष की देवी के नाम से प्रख्यात हैं। पुरातात्त्विक दृष्टि से यहाँ अटिया-पटिया टीले से दर्जनों की मात्रा में मातृ-देवियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं[३], जो इस क्षेत्र को देवी-प्रधान क्षेत्र प्रमाणित करती हैं।

पिता दक्ष के यज्ञ में सती के भस्म हो जाने पर भगवान् शंकर सती के वियोग को न सह सके। वे उन्मत्त हो उनके शव को लेकर घूमने लगे। भगवान् विष्णु उनके इस प्रकार के कृत्य को देखकर चिन्तित हो उठे। उन्होंने शार्ङ्गधनुष से सती के शव के १०८ भाग कर डाले। जो-जो सती का अंग जहाँ-जहाँ पर गिरा, वहाँ शक्ति-पीठ बन गया। नैमिष में भी सती का एक अंग गिरा, जिससे यहाँ भी एक शक्ति-पीठ का निर्माण हुआ, जो पुराणों में लिङ्गधारिणी नाम से प्रसिद्ध है। आज भी यहाँ हजारों की संख्या में भगवती ललिता के दर्शनार्थ सुदूर देशों से भक्त आया करते हैं।

जनश्रुति[४] है कि ललिता का आविर्भाव उस समय हुआ जिस समय चक्र ने साढ़े छः पाताल तोड़ दिये। चतुर्दिक् जल ही जल हो गया। लोग भय से चिल्लाने लगे। तभी ब्रह्मा के द्वारा निर्देश करने पर सभी मुनियों ने पराम्बा भगवती की उपासना करनी प्रारंभ कर दी।[५] तत्काल ही ललिता माँ का आविर्भाव हुआ। उन्होंने चक्र को थाम लिया। तभी से देवी यहाँ पूजित और प्रतिष्ठित हुईं। आज भी देवी ललिता की मूर्ति बायें की ओर झुकी हुई है। हाथ में चक्र को ग्रहण करने के कारण ही इसे 'चक्रेश्वरी' या चक्रधारिणी भी कहते हैं[६]।

---

१. देवीपुराणम्—५।१७।१९०-१९१ (कामुका गन्धमादन)।
२. स्तोत्रवल्लरी, पं० रघुनाथशर्मकृत।
३. लेखक ने संग्रह करके उन्हें रखा है।
४. जनश्रुति—यहाँ जो लोगों में प्रसिद्ध है। देवी को इस मुद्रा में अन्यान्य प्रतिमाएँ भी देखने को मिलती हैं।
५. देखिये—ललिता की मूर्ति, जो स्थापित है।
६. 'या दुर्गा सैव ललिता ललिता सैव राधिका।
एतासामन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद ॥'

जो देवी प्राचीनकाल में लिङ्गधारिणी के नाम से ख्यात थी, वही अब ललिता के नाम से प्रसिद्ध हैं। वस्तुतः जो दुर्गा हैं, वही ललिता हैं, जो ललिता हैं वही राधिका हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। सम्भव है कि ललितस्वरूप एवं कल्याण-प्रदा होने के कारण ही इन्हें ललिता का नाम दिया गया। वस्तुतः यह विषय बड़ा ही विवादास्पद है कि 'लिङ्गधारिणी' कब से ललिता के नाम से मानी जाने लगीं।

आजकल नैमिष की गरिमा चक्र और ललिता के कारण घर-घर में अभिव्याप्त है। इस विषय में विशेष वैज्ञानिक तथ्य भूमिका में वर्णित हैं।

नैमिष वन सिद्ध-चारण-यक्ष-मुनि-किन्नर-गन्धर्व आदि से सेवित है[1]। यह अष्टम वैकुण्ठ[2] है, जहाँ ब्रह्मा-विष्णु-महेश तथा शक्ति सभी सतत निवास करते हैं। यह क्षेत्र पूर्ण है, एकांगी नहीं। नैमिष की मर्यादा अवर्णनीय है, इसके माहात्म्य को हम सामान्य मनुष्य नहीं कह सकते।

नैमिषारण्य की प्राकृतिक सुषमा—

नैमिषारण्य अपने प्राकृतिक सौंदर्य के लिए पूर्व से ही विख्यात है। यहाँ की प्राकृतिक सम्पदा का वर्णन कर पाना कठिन है। आज का प्रत्येक आगन्तुक यहाँ आकर एक अजीब सुख और शान्ति की अनुभूति करता है। महाकवि वाल्मीकि भी यहाँ की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करने में पीछे नहीं। उन्होंने जहाँ-जहाँ पर नैमिष का वर्णन किया, उनके वर्णन में यहाँ की वनस्थली की सुन्दरता का आभास जगह-जगह मिलता है। यहाँ की सुन्दरता एवं पवित्रता से प्रभावित होकर भगवान् राम अयोध्या से यहाँ आकर कई वर्षों तक यज्ञ-यज्ञादिक करते रहे। रघुवंश महाकाव्य के प्रणेता कालिदास तो यहाँ तक लिखते हैं कि भगवान् राम को नैमिषारण्य में स्थित वावलियों (वापियों) एवं उसके चारों ओर कुशों से युक्त पावन भूमि में फूस की बनी हुई पर्णकुटी उनको महलों का सा सुख प्रदान करती थीं[3]। ब्रह्मपुराण[4] में इसकी प्राकृतिक सुन्दरता का विशदरूप से उल्लेख करते हुए कहा गया है कि 'पवित्र और मनोहर नैमिषारण्य की वनस्थली मुनिगणों से व्याप्त थी। अनेक प्रकार के पुष्पों से सुशोभित थी। उस पवित्र अरण्य में सरल, कर्णिकार, अमलतास, कटहल, खदिर, आम, जामुन, कैथा, बरगद, देवदारु, पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, पादवा, मौलिसरी, सातला, पुन्नाग, नागकेशर, शाल, ताल, तमाल, नारिकेल, अर्जुन और चम्पा आदि के वृक्ष थे। जहाँ

---

१. 'कूर्मपुराण—सिद्धचारणसंकीर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्।'

(कूर्मपु०—२।४१।९)

२. श्री नैमिष पावन जग जाना। सह अष्टम वैकुण्ठ बखाना॥

(गीता-मानस से ले० डा० महेन्द्र वर्मा)

३. वाल्मीकिरामायण।

४. ब्रह्मपुराण—१।३।७।

पर अनेक पशु-पक्षी आनन्दपूर्वक निवास करते थे। यहाँ पर अनेक पवित्र जलाशय और अनेक पवित्र बावलियाँ सुशोभित थीं—

सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे।
नाना मुनिजनाकीर्णे नानापुण्योपशोभिते।
सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैर्धवखादिरैः।
आम्र-जम्बू-कपित्थैश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः॥
'अश्वत्थैः पारिजातैश्च चन्दनागुरुपाटलैः।
वकुलैः सप्तपर्णैश्च पुन्नागैर्नागकेशरैः॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैस्तथार्जुनैः॥
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यैश्च शोभिते।
नानापक्षिगणाकीर्णैः नानामृगगणैर्युते।
नानाजलाशयैः पुण्यैर्दीर्घिकाद्यैरलङ्कृते॥'

इसी तरह से 'नीलाद्रिमहोदय' जो कि १४वीं शती की रचना मानी जाती है, में नैमिषारण्य का सुन्दर प्राकृतिक चित्रण किया गया है[१]।

'एकदा नैमिषारण्ये पुण्ये सर्वसुखप्रदे।
नानातीर्थसमायुक्ते नानागुल्ममनोरमे॥
मन्दानिलसमायुक्ते विविक्ते मृगरञ्जिते।
तापसाश्रमसंकीर्णे ख्याते परमपावने॥
फलपुष्पाढ्यवृक्षाणां निकरैः परममञ्जुले।
तादृशेऽपि वने रम्ये शौनकाद्या मुनीश्वराः।
रुण्डीभूय समस्तास्ते गोष्ठीं चक्रुर्मनोरमाम्॥
क्षेत्राणां शिवदानां च जिज्ञासायै त्वरान्विताः॥'

वृहद्धर्मपुराण में भी इसी नैमिष की प्राकृतिक छटा को अंकित करते हुए कहा गया है कि यह स्थान साधु-जनों से सेवित था[२]। शीतल-मन्द-सुगन्धित मनोहर वायु से यहाँ का वातावरण शुद्ध था। मयूर, कोकिल, हंस और भ्रमरों से गुंजायमान था। नाना प्रकार की पक्षियों, गायो, मृगों आदि से युक्त था। यही नहीं, यह वन शान्त स्वभाव वाले व्याघ्रादिकों से आवृत भी था।

'पवित्रे नैमिषक्षेत्रे विमले साधुसेविते।
सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुमनोहरे॥
मयूरैः कोकिलैर्हंसैर्भ्रमरैरुपकूजिते।
तथान्यैः पक्षिभिश्चैव गोमृगादिभिरेव च।
शान्तस्वभावैः व्याघ्राद्यैरावृते नैमिषे वने॥'

---

१. नीलाद्रिमहोदय—१।१-६, प्रमा० वर्ष १९७४।
२. वृहद्पुराण—१।२-५।

इन उपयुक्त प्रमाणों से नैमिषारण्य की प्राकृतिक छटा का अपने आप ही भान हो जाता है। आज भी नैमिष अपने सौन्दर्य के लिए तद्वत् ही है।

चारों वर्णों की स्थिति—

प्रमाणों से सिद्ध है कि नैमिषारण्य न केवल अरण्य ही था; अपितु यहाँ पर चारों वर्णों की स्थिति थी। विभिन्न जातियों के लोग यहाँ निवास करते थे। यहाँ वानप्रस्थ, गृहस्थ, यति और ब्रह्मचारी भी सम्यक् रूप से अपने-अपने आश्रमों का पालन करते थे।

'ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः।
वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः'[1] ॥

यहाँ के प्राचीन ध्वंशावशेषों से भी यहाँ ई० पूर्व में स्थित नगरीय-सभ्यता का बोध होता है। यहाँ पर अनेक जाति एवं सम्प्रदाय के लोग निवास करते थे। यहाँ कुम्भकारों का भी समुदाय कभी निवास करता रहा, जिसके अनेक कला-कौशलपूर्ण पात्र, मिट्टी की मूर्तियाँ आदि मिलती हैं[2] (अत्यधिक विशद अध्ययन के लिए देखें पुरातात्त्विक अनुशीलन)।

कृषि एवं खाद्यान्न—

यहाँ की भूमि बहुत ही उर्वर थी। यहाँ के निवासी कृषि भी करते थे। गोमती के उभय तटों पर खेती होती थी। कृषि के अतिरिक्त पर्याप्त पशु-धन भी आय का स्रोत था। खाद्यान्नों में गेहूं, चना, ऊड़द, मूँग, तिल, ईख, चीनक इत्यादि मुख्य उपज थे। यहाँ के लोग समृद्धिशाली थे, जैसा कि ब्रह्मपुराण से स्पष्ट है—

सम्पन्नैर्गोलैश्चैव सर्वत्र समलङ्कृते।
यवगोधूमचणकैर्माषमुद्गतिलेक्षुभिः ॥
चीनकाद्यैस्तथा मेध्यैः सस्यैश्चान्यैश्च शोभिते[3]॥

---

१. ब्रह्मपुराण—१।१।८।
२. देखें—नैमिषारण्य का पुरातात्त्विक सर्वेक्षण।
३. ब्रह्मपुराण—१।१।९-१०।

७

नैमिषारण्य में आनेवाले ऋषि-मुनियों का वर्णन

तृतीय अध्याय

प्रायः समस्त पुराणों में इस बात की चर्चा आती है कि नैमिषारण्य में एकबार देश-देश के कोने से ऋषि-मुनि शिष्यों-प्रशिष्यों के साथ एकत्र हुए थे। यहाँ पर द्वादशवर्षीय सत्रयाग किया गया था, जिसके प्रमुख थे शौनक। इसी अवसर पर भगवान् वेदव्यास के परम शिष्य लोमहर्षण सूत जी का आगमन हुआ था। लोगों ने व्यास-शिष्य व सर्वशास्त्र मर्मज्ञ जानकर उनका सम्मान किया, ऊँचा आसन प्रदान किया था। तदनन्तर उन समस्त ऋषियों-मुनियों के निवेदन पर उन्होंने पुराण, महाभारत व नाना धर्मशास्त्रों को सुनाया था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह एक प्रकार का सम्पूर्ण जम्बूद्वीप स्थित धर्मध्वजों का विशाल सम्मेलन था, जिसके द्वारा ह्रास होते हुए सनातन धर्म का व्यापक एवं ठोस प्रचार व प्रसार करना था। इसीलिए यह केवल एक या दो दिन का न होकर द्वादशवर्षीय था।

यह विराट् सम्मेलन केवल एकबार ही नहीं; अपितु समय-समय पर इन लोगों द्वारा विभिन्न तीर्थ स्थानों पर आयोजित किया जाता रहा। यही कारण है कि कभी 'प्रयाग' में, कभी 'पुष्कर', में कभी 'कुरुक्षेत्र' में, तो कभी 'गया' में भी यह सम्मेलन हुआ है। नैमिषारण्य में तो यह सम्मेलन राजा ऐल पुरूरवा के काल में हुआ था और उनके पुत्र के कार्यकाल में समाप्त हुआ, ऐसा वायु और ब्रह्माण्डपुराण से स्पष्ट प्रतिभासित होता है।

मेरे विचार से बौद्ध-धर्म के बढ़ते हुए प्रचार और प्रसार से सनातन धर्म का पाँव लड़खड़ाने लगा। लोग अधिक से अधिक मात्रा में उस समय ब्राह्मण-वंशीय जैन और बौद्ध धर्म की छत्रछाया ग्रहण करने लगे, जिससे सनातन धर्म छिन्न-भिन्न होने लगा। शुंग राजाओं ने सनातन धर्म के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठाया। यही कारण है कि उन लोगों ने अनेक स्थानों पर अश्वमेध यज्ञ करवाये। जगह-जगह पर सनातन धर्म का सम्मेलन करवाया। साथ-ही-साथ इस धर्म की अक्षुण्णता को बनाये रखने के लिए अनेक मन्दिरों का निर्माण भी करवाया। इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से हिन्दू राजाओं ने पुराणों को संरक्षण प्रदान किया, जिसमें भारतीय संस्कृति पुष्पित-पल्लवित हुई[1]।

---

१. वायुपुराण—१।१।१६६-१६७; अग्निपुराण—१।२; स्कन्दपुराण—१।१।३-५ व १।४१।१-१०; गरुडपु०—१।३-५; मत्स्यपु०—१।५-६।

इन शुंग-वंशीय राजाओं के शासन काल में ही अवश्य इस नैमिषारण्य में एक विशाल धर्मध्वजों का सम्मेलन हुआ होगा, इसमें पुराण-परम्परा को विशद व चारु-रूप प्रदान करने के लिए अनेक विद्वानों को प्रोत्साहित किया गया होगा, जिसमें अनेक विद्वान् धर्म-रक्षक सम्मिलित हुए होंगे और उन्होंने उस सम्मेलन में दिये गये व्याख्यान को अपने-अपने ढंग से वर्णन किया होगा। यही कारण है कि एक ही पुराण की सी वात अन्यान्य पुराणों में भी थोड़े-बहुत अन्तर के साथ प्राप्त होती है। जिस प्रकार से किसी व्यक्ति विशेष के व्याख्यान को अनेक व्याख्याता अपने-अपने ढंग से विभिन्न ग्रन्थों में प्रकाशित करते हैं, ठीक उसी प्रकार से पुराणों के विषय सनातन थे; किन्तु व्याख्याताओं द्वारा कथन में तारतम्य अवश्य था।

यहाँ इस वात पर शंका करना निरर्थक है कि पुराण तो सभी वेदव्यास रचित हैं, तो इन्हें ऐसा क्यों कहा जा रहा है कि इसे विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से लिखा। वस्तुतः पुराण वेदव्यास रचित होते हुए भी कालक्रमानुसार विभिन्न विद्वानों की, क्षेत्रीयता अथवा प्रान्तीयता की छाप से युक्त हैं। इससे लगता है कि पुराण अपने मूल पञ्चलक्षण से भी आगे बढ़कर अपने-अपने अभीष्ट क्षेत्र का वर्णन करने में नहीं चूकते[1]। इनमें भाषा-भाव-शैली आदि की भिन्नता भी देखने को मिलती है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रत्येक पुराण कुछ न कुछ विशेषता से युक्त है।

नैमिषारण्य में विभिन्न ब्रह्मवादी ऋषियों-मुनियों का आगमन—

पद्मपुराण के आदिखण्ड से स्पष्ट होता है कि एक बार यहाँ नैमिषारण्य में हिमालय प्रान्त के सभी वेदनिष्ठ त्रिकालज्ञ महात्मा अनेक पुण्याश्रमों से आये थे। इसके अतिरिक्त महेन्द्र पर्वत पर रहने वाले तथा उसके आस-पास के जितने आश्रम वासी थे, वे लोग भी यहाँ पर शौनक जी को देखने के लिए आये हुए थे। साथ ही साथ पुष्करारण्य में निवास करने वाले लोग तथा और भी जितने जम्बू मार्ग में निरत सन्त महात्मा लोग थे, वे सभी अपने शिष्यों-प्रशिष्यों के साथ नैमिष आये हुए थे।

"एकदा मुनयः सर्वे ज्वलज्ज्वलनसंन्निभाः।
हिमवद्वासिनः सर्वे मुनयो वेदपारगाः॥
त्रिकालज्ञो महात्मानो नानापुण्याश्रमाश्रयाः।
महेन्द्राद्रिरता ये च ये च विन्ध्यनिवासिनः॥
येऽर्बुदारण्यनिरताः पुष्करारण्यवासिनः।
जाम्बूमार्गरता ये च ये च सत्यनिवासिनः॥

---

१. सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

* महापुराणों के पाँच लक्षण स्वयं पुराणों में स्वीकार किये गये हैं। इन महा-पुराणों के अतिरिक्त १८ उपपुराणों तथा १८ औपपुराण भी हैं।

धर्मारण्यरता ये च दण्डकारण्यवासिनः ।
श्रीशैलनिरता ये च कुरुक्षेत्रनिवासिनः ॥
एते चान्ये च बहवः सशिष्या बहवोऽमलाः ।
नैमिषं समुपायाताः शौनकं द्रष्टुमुत्सुकाः[1] ॥"

इसी पुराण के उत्तर खंड में नैमिषारण्य में द्वादश वर्ष होनेवाले याग में उपस्थित अनेक ब्रह्मवादी ऋषियों तथा मुनियों के नाम बताये गये हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि ये ऋषि-मुनि सुदूर देशों से आये हुए थे और धर्म के प्रचार-प्रसार के अधिनायक थे। इन ऋषियों के नाम मुख्यरूप से इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

'असित, देवल, सुमन्तु, पैल, सुमति, वामदेव, जाबालि, कश्यप, भृगु, पर्वत, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, आपस्तम्ब, अणिमाण्डव्य, सत्य, कात्यायन, रथीतर, अंगिरा, कपिल, रैभ्य, मुद्गल, गौतम, कण्व, कण, अत्रि, धूम्र, हरीतक, शंकु, पृथुमङ्कु, संकृति, कौण्डिन्य, निर्ध्रुव, कणाद, गर्ग, कौशिक, गालव, बभ्रु, शुक, शक्ति, पराशर, शिनि, विभाण्डक, पंक, बुध, बौधायन, वसु, जमदग्नि, भरद्वाज, धूमपा, मौनभार्गव, शौनक, नारद, शतानन्द, शतातप, विष्णुवृद्ध, विशालाक्ष, जर्जर, जप, जङ्गम, जय, पक्क, पाशधर, पार, पारग, महाकाय, महाग्रीव, महाबाहु, महोदर, उद्दालक, महासेन, आर्त, आमलकप्रिय, एकपाद, अर्धपाद, ऊर्ध्वबाहु, जलाशन, उग्रशील, महाशील, पिङ्गल, शण्डिर, करुण, काल, कैवल्य, कलाधर, कल्पान्त, कङ्कण, कण्डु, कठ, कालाग्नि, रुद्र और श्वेताम्बर।

इनमें से अनेक ऋषि वैदिक हैं, कुछ धर्मसूत्रों के प्रणेता हैं, कुछ उपनिषदों के प्रवक्ता हैं और कुछ व्यास जी के अन्यतम शिष्य हैं।

आरब्धुं नैमिषारण्ये सत्रं द्वादशवार्षिकम् ।
आजग्मुरखिलास्तत्र मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥
असितो देवलश्चैव सुमन्तुः पौल एव च ।
सुमतिर्वामदेवश्च जाबालिः काश्यपो भृगुः ॥
पर्वतः शरभङ्गश्च सुतीक्ष्णोऽगस्त्य एव च ।
आपस्तम्बोऽणिमाण्डव्यः सत्यः कात्यायनस्तथा ॥
रथीतरोऽङ्गिराश्चैव कपिलो रैभ्य एव च ।
मुद्गलो गौतमश्चैव कण्वः कणोऽत्रिरेव च ॥
धूम्रो हरीतकः शङ्कुः पृथुमङ्कुश्च संकृतिः ।
कौण्डिन्यो निर्ध्रुवश्चैव कणादो गर्ग एव च ॥
कौशिको गालयो बभ्रुः शुकः शक्तिः पराशरः ।
शिवि विभाण्डकः पङ्को बुधो बौधायनो वसुः ॥

---

१. पद्मपुराण—१।१।२-५।

जमदग्निः भरद्वाजो धूमपो मौनभार्गवः।
शौनको नारदश्चैव शतानन्दः शतातपः॥
विष्णुवृद्धो विशालाक्षो जर्जरो जङ्गमः जपः।
पक्कः पाशधरः पारः पारगः पण्डितोत्तमः॥
महाकायो महाग्रीवो महाबाहुर्महोदरः।
उद्दालको महासेन आर्त आमलकप्रियः॥
एकपादोऽर्धपादश्च ऊर्ध्वबाहुर्जलाशनः।
उग्रशीलो महाशीलः पिङ्गलो मंन्त्रवित्पटुः॥
शण्डिरः करुणः कालः कैवल्यश्च कलाधरः।
कल्पान्तः कङ्कणः कण्डुः कठः कालाग्निरुद्रगः॥
श्वेतबाहुर्महाप्राज्ञः श्वेताश्वतरसंज्ञकः।
एतैः शिष्यैः प्रशिष्यैश्च ब्रह्मिष्ठा वेदपारगाः॥
लोकानुग्रहकर्तारः परोपकृतिशालिनः।
परप्रियरता नित्यं पञ्चयज्ञपरायणाः॥
आगत्य नैमिषारण्यमशेषगुणसंयुताः।
कर्तुमारेभिरे सत्रमथ सूतः समाययौ[1]॥

पृथिव्यां नैमिषं पुण्यम्—

गर्गमुनिः—गर्गसंहिता के प्रणेता, ज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ, गर्ग मुनि कदाचित् नैमिषारण्य के महान् तपस्वी, तेजस्वी, योगभास्कर शौनक जी का दर्शन करने के लिए आये हुए थे। गर्गसंहिता में इसको स्वीकार करते हुए कहा गया है—

कदाचिन्नैमिषारण्ये श्रीगर्गो ज्ञानिनां वरः।
आययौ शौनकं द्रष्टुं तेजस्वी योगभास्करः[2]॥

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट है कि महातपस्वी, ऋषियों में सर्वश्रेष्ठ शौनक जी अपने युग की महान् विभूतियों में से एक थे, साथ ही साथ भारतीय संस्कृति के पोषक और परिपालक थे, जिनकी ख्याति समस्त जम्बूद्वीप में प्रसृत हो रही थी।

सान्दीपनि—नैमिषारण्य के सत्रयाग में व्यास द्वारा गोमती के माहात्म्य को बताये जाने पर कि 'नित्यप्रति गोमती के तट पर सन्ध्योपासन एवं स्नान महान् पुण्यदायक है'[3]। इस आशय को जानकर श्रीकृष्ण के गुरुचरण सान्दीपनि नित्यप्रति गोमती में स्नान

---

१. पद्मपुराण, उत्तरखण्ड–६।२१९।२-१५।

२. गर्गसंहिता०, गोलोक-खंड—१।४।

३. तत्रैव गोमती तीरे चक्रुस्ते वै धृतव्रताः।
सांदीपनोऽपि तत्रैव प्रातः सन्ध्यां समाचरेत्॥
गोमतीकुण्डमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥ (स्कन्दपु०, अवन्ती० १।६२।१०-३२)

और संध्या के लिये आते थे। श्रीकृष्ण अपने गुरु के इस महान् कष्ट को न देख सके और उन्होंने उनके कष्ट के निवारणार्थ कुशस्थली में गोमती को स्मरण किया, जिससे गोमती सरस्वती के सहित वहाँ पर उद्भूत हुई। इससे स्पष्ट है कि गोमती मुख्यरूप से नैमिष में ही थी, जिसको बाद में श्रीकृष्ण ने द्वारावती (द्वारका) में उद्भूत किया। यहाँ नैमिष में सान्दीपनि का आगमन नित्य होता था[१]।

परशुराम—पुराण के एक स्थल से ज्ञात होता है कि परशुराम जी ने आकर गोमती के तट पर तपस्या की थी। यद्यपि परशुराम की तपस्या का कोई स्थल प्रामाणिक नहीं हो पाया है; फिर भी अनुमान किया जा सकता है कि गोमती के तट पर स्थित परसरामपुर (परशपुर) ही उनके इस तपस्या-स्थल का प्रतीक हो सकता है। यह तपस्या उन्होंने मातृ-वध के पश्चात् नैमिष में ही की थी, जिससे भगवान् पिनाकपाणि शंकर का उन्हें वरदान प्राप्त हुआ था।

धर्मारण्य मुनि—ये महामुनि गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर महापद्मपुर नामक नगर में रहते थे[२]। ये सोमकुल में उत्पन्न तथा अत्रिगोत्रीय ब्राह्मण थे। ये सदैव धर्म में रत, क्रोध से रहित व जितेन्द्रिय थे। बहुत समय गार्हस्थ्य जीवन-यापन करने के उपरान्त इन्होंने सन्यासमार्ग अपना लिया था। एक दिन अतिथि के रूप में कोई परिव्राजक इनके यहाँ आया, इन्होंने उससे मोक्ष-साधन के विषय में पूछा। इस परिव्राजक ने विभिन्न मोक्ष मार्गों को बतलाते हुए स्वयं को असमर्थ समझ कर धर्मारण्य को नैमिष में गोमती-तट पर स्थित नागपुर में पद्मनाभ नामक नाग के पास भेजा[३]। धर्मारण्य अपने स्थान से नैमिष आये। यहाँ पर पद्मनाभ उपस्थित न थे। स्वजनों से पूछने पर पता चला कि नागराज इस समय सूर्य का रथ खींचने के लिए गये हुए हैं। पन्द्रह दिनों के बाद वह वापस आयेंगे। इस प्रकार नागराज की अनुपस्थिति के विषय में जानकर मुनि ने १५ दिनों तक उपवास व्रत करते हुए वैदिक स्वस्ति-सन्ध्यादिकों को करते हुए गोमती तट की ही एक गुफा में व्यतीत किये। इस तरह से पन्द्रहवें दिन नागराज ने आकर इन्हें 'इच्छावृत्ति' का व्रत पालन करने का धर्मोपदेश दिया, जिसे इन्होंने स्वीकार करते हुए तथा इसका पालन करते हुए मोक्ष को प्राप्त किया[४]।

---

१. एकदा माधवे मासे गजेन्द्रो गिरिगह्वरात्।
स्नातुं तां गोमतीं गङ्गामाययौ सगणो नदन्॥
(गर्गसं० द्वारका—खंड ११।१०-२५)

२. आसीत्किल कुरुश्रेष्ठ! महापद्मे पुरोत्तमे।
गंगाया दक्षिणे तीरे कश्चिद्विप्रः समाहितः॥ (शा० पर्व ३४१।१)

३. धर्मारण्यं हि मां विद्धि नागं द्रष्टुमिहागम्।
पद्मनाभं द्विजश्रेष्ठ! तत्र मे कार्यमाहितम्॥ (शान्ति० ३४९।५)

४. वही—३४५।८।

वैखानस ब्रह्मा—कई उद्धरणों से स्पष्ट हो चुका है कि ब्रह्मा का भी निवास स्थान नैमिष है। तुलसी रामचरितमानस से स्पष्ट होता है कि मनु-सतरूपा की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश वहाँ आये थे। वैखानस विजय में एक स्थान पर चतुर्मुख ब्रह्मा का मुनिगणों से सेवित नैमिषारण्य में आगमन हुआ था।

'ततः परं चतुर्वक्त्रो जटाकाषायदण्डभृत्।
नैमिषारण्यमास्थाय मुनिवृन्दनिषेविताम्॥
धाता विखनसो नाम्ना मरीच्यादि सुतान् च'[1]॥

महात्मा पद्मनाभ—महान् चक्षुःश्रवा पद्मनाभ नामक नागराज गोमती के तट पर निवास करते थे। ये ज्ञान, कर्म, उपासना इन तीनों ही मार्गों में स्थित रहकर मन, वचन और कर्म से प्राणियों के कल्याण में लगे रहते थे। ये साम-दान-दण्ड-भेद न्याय के आधार पर धर्म से विचलित हुए पुरुषों को कुमार्ग में जाने से बचाते थे[2]। अतिथियों का सत्कार करनेवाले बुद्धिमान् तथा शास्त्रज्ञ थे। इनका हृदय स्वाभाविक जल के समान निर्मल था। ये सदैव तपस्या में निरत रहने वाले इन्द्रिय-निग्रही थे।

'स हि सर्वातिथिर्नागो बुद्धिशास्त्रविशारदः।
गुणैः सर्वमयैर्युक्तः समस्तैराभिकामिकैः॥
प्रकृत्या नित्यसलिलो नित्यमध्ययने रतः।
तपोदमाभ्यां संयुक्तो वृत्तेनानवरेण च'[3]॥

यह पद्मनाभ यज्ञ करनेवालो, दाता, क्षमाशील, सच्चरित्र, सत्यवादी, असूया-रहित शीलवान् और संयतेन्द्रिय भी थे। ये यज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन करने वाले, अनुकूल वचन बोलने वाले हितैषी, विनयी, श्रेष्ठ विषयों में कृतार्थ, कृतज्ञ, शत्रुतारहित, प्राणियों के हित में गङ्गा के जलस्वरूप थे। जैसा कि महाभारत के शान्ति-पर्व में कहा गया है—

'यज्वा दानरुचिः क्षान्तो वृत्ते च परमे स्थितः।
सत्यवागनसूयश्च शीलवानभिसंश्रितः॥
शेषान्नभोक्ता वचनानुकूलो हितार्जवोत्कृष्टकृताकृतज्ञः।
अवैरकृद्भूतहिते नियुक्तो गङ्गाह्लदाम्भोऽभिजनोपपन्नः॥

इसी पद्मनाभ नामक नागराज के पास धर्मारण्य नामक तपस्वी ब्राह्मण आकर आठ अहोरात्र निराहार रहकर गोमती के एक कुञ्ज में व्यतीत किया था और पद्मनाभ ने इन्हें जिज्ञासु जानकर उञ्छवृत्ति का उपदेश दिया था। महाभारत में यह कथा विशदरूप में वर्णित है। जिज्ञासु पाठकगण वहाँ पर देख सकते हैं[4]।

---

१. वैखानस-विजय, पृ० १६ से उद्धृत; २. महाभा० शा० पर्व० ३४३।४-५।
३. वही० ३४३।८-९।
४. महाभा० शान्ति० ३४३।१०-११।

महर्षि दधीचि—नैमिषारण्य के महर्षियों में दधीचि का नाम बड़े ही गर्व के साथ लिया जाता है। कहते हैं कि दधीचि पूर्व में वाराणसी के राजा थे; किन्तु वे नैमिषारण्य के 'डही'; जो कि दधी(चि) का अपभ्रंश है और जो परिक्रमा के अन्तर्गत वर्तमान समय में हरदोई जनपद में पड़ता है, में ही उन्होंने तपस्या करना प्रारंभ किया था। ब्रह्मपुराण में दधीचि ऋषि की कथा इस प्रकार वर्णित है। इनकी पत्नी लोपामुद्रा की बहन गभस्तिनी थीं। दोनों ही लोग तपस्या में निरत थे। इनके तपस्या के परिणामस्वरूप कोई दुष्ट या पिशाच इनके आश्रम तक जाने की हिम्मत नहीं कर पाता था। एक दिन आक्रमणकारी दुष्ट दैत्यों को जीतकर रुद्र, आदित्य, अश्विन, इन्द्र प्रभृति देवता उनके आश्रम पर गये और दधीचि की स्तुति करने लगे। दधीचि ने भी उन सबका सम्मान किया। पुनः सभी देवों ने ऋषि को प्रणाम करते हुए निवेदन किया कि हम लोग शस्त्रों से युद्ध करते-करते थक गये हैं और यदि हम सब इस शस्त्र को स्वर्ग में ले जाते हैं, तो सम्भव है कि दैत्यों के द्वारा वहाँ से ये शस्त्र अपहृत कर लिये जायें[१]।

अतएव हम लोग यही चाहते हैं कि आपके ही इस आश्रय में ये शस्त्र रख दिये जायें, जिससे ये सुरक्षित रहें; क्योंकि आप के इस आश्रम में दुष्ट दैत्यों का प्रवेश नहीं हो सकता। महर्षि ने उन देवों के वचन को स्वीकार कर उन अस्त्रों को अपने आश्रम में रखवा लिया। देववृन्द आश्रम में शस्त्र रखकर अपने को सुरक्षित व कृतकृत्य समझने लगा[२]।

इस प्रकार से देवों के हजार वर्ष बीत गये; परन्तु देवों ने अपने रखे हुए अस्त्रों के विषय में खोज-बीन नहीं की। ले जाने को कौन कहे, मन में अस्त्रों के विषय में सोचा तक नहीं। इसको देख मुनि ने अपनी पत्नी गभस्तिनी से कहा—प्रिये इतने वर्ष व्यतीत हो रहे हैं और देवों ने न तो अस्त्र को लिया और न ही ले जाने के लिए कभी चेष्टा ही व्यक्त की। अब इसके लिए क्या उपाय किया जावे[३]? गभस्तिनी ने पति दधीचि के वचन को सुनकर कहा—प्राणनाथ! मैं तो पहले ही इन्हें रखने के लिए मना कर रही थी; क्योंकि हम विरक्तों के लिए इन अस्त्र-शस्त्रों की रखवाली की क्या जरूरत? आप जैसा उचित समझें वैसा करें[४]। तब महर्षि ने सोचा कि संभव है महावली राक्षस कहीं इन अस्त्रों को छीन न ले जाँय, अतएव उन्होंने अस्त्रों की रक्षा के निमित्त मन्त्रों से जल को अभिमंत्रित कर अस्त्रों को धो दिया और पवित्र तथा सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों से युक्त उस जल को पी लिया। इस प्रकार से उन्होंने अस्त्रों की रक्षा की, जैसा कि निम्न श्लोकों से स्पष्ट है—

---

१. आसीत्तु मे भोगपते संशयः पुण्यसंचये।
सोऽहमुञ्छव्रतं साधो चरिष्याम्यर्थदर्शनम्॥ (महा० भा० शा० ३५३।९)

२. ब्रह्मपुराण—११०।३०-३३।

३. वही०—११०।३४-३५।

४. वही०—११०।३६-३७।

दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि।
तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे मन्त्रैस्तु संक्षाल्य जलैश्च पुण्यैः॥
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं तेजोयुक्तं तच्च पपौ दधीचिः।
निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात्[1]॥

इस तरह से बहुत समय व्यतीत हो जाने पर वे शस्त्र भी नाकाम हो गये तथा विनष्ट हो गये। इसी बीच अचानक एक दिन देवताओं ने कहा—महर्षे! हम लोगों पर शत्रुओं का घोर अत्याचार बढ़ गया है। इसलिए आप उन अस्त्रों को, जिनको हम सब आपके यहाँ सुरक्षित रख गये थे, दे दीजिए। तब मुनिवर ने कहा—दैत्यों के भय से आप लोग शीघ्र नहीं आये, अतएव मैंने उन्हें नष्ट होता हुआ देखकर उनकी रक्षा के निमित्त जलरूप में पीकर शरीरस्थ कर लिया है। अतः जो कुछ उपयुक्त हो उसको बतलाओ। तब देवों ने प्रार्थना करते हुए कहा—मुनिवर! उन अस्त्रों के अभाव में शत्रु हमें जीत लेंगे। हम सभी स्वर्ग-पाताल-मृत्युलोक कहीं भी उनके डर से नहीं बच सकते। इस प्रकार से महर्षि ने देवताओं की रक्षा के निमित्त कहा कि यदि ऐसा ही है, तो तुम सब मेरी हड्डियों में स्थित अपने अस्त्रों को ले लो। देवों ने कहा इसका क्या होगा? तब मुनिराज ने कहा कि इन अस्थियों से सुन्दर और उत्तम आकारवाले अस्त्रों को बनवा लीजिए, जिससे कि उन दुष्ट-राक्षसों का वध संभव हो। उस समय मुनि की धर्मपत्नी उपस्थित न थीं, अतएव देवों ने तुरन्त सुअवसर जानकर मुनि से कहा—ठीक है, आप ऐसा ही करें। महर्षि ने भी इस व्यर्थ शरीर का परोपकार के अतिरिक्त और कौन सा सदुपयोग हो सकता है? यदि यह परहित में लग जाये, तो अत्युत्तम है।' ऐसा कहते हुए उन्होंने अपने शरीर को योगस्थ करके गायों से चटवा दिया। अस्थिमात्र बची हुई महामुनि की हड्डियों से विश्वकर्मा ने वज्र बनाया। इस वज्र के द्वारा ही महान् वृत्रासुर का वध हुआ।

महर्षि दधीचि का आख्यान विभिन्न पुराणों में प्राप्त होता है। इस कथा की विशेषता यह है कि तपस्वी-मनस्वी को परोपकार के आगे प्राणों की गणना नहीं करनी चाहिए।

बकदाल्भ्य मुनि[2]—छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार ये नैमिषीय (ऋषियों) के उद्गाता थे। वामनपुराण[3] में बकदाल्भ्य मुनि का उल्लेख है, जो नैमिषारण्य में ही निवास करते थे। एक बार ये धृतराष्ट्र के यहाँ दक्षिणा प्राप्त करने के लिए गये हुए थे; किन्तु वहाँ पर उन्हें अपमानित होना पड़ा। इन्होंने इस अपमान का बदला चुकाने के लिए क्रुद्ध होकर अवकीर्ण नामक तीर्थ में अपने मांस को काट-काट कर यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि दुर्वासा मुनि के समान ही ये बहुत

१. वही०—११०।३७-३८।
२. स हि नैमिषीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति। (छान्दो० १।२।१३)
३. वामनपुराण—३९।२७-४०।

क्रोधी महात्मा थे। रायबरेली जिलान्तर्गत डलमऊ को दाल्भ्य का आश्रम-स्थान बताया जाता है।

कश्यप[१]—प्रजापतियों में इनकी गणना की जाती है। ये प्रजापति दक्ष के दामाद थे। पद्मपुराण से विदित होता है कि ये एक बार नैमिषारण्य आये और इनसे यहाँ के ऋषि-प्रवरों ने गङ्गाजी को लाने के लिए निवेदन किया। इन्होंने अर्बुदारण्य में जाकर सरस्वती के तट पर घोर तप किया और शंकर को प्रसन्न किया। शंकर ने प्रसन्न होकर इन्हें गङ्गा को प्रदान किया, जो गङ्गा नैमिष में 'काश्यपी' नामसे कहलाई। यहाँ व्यासगद्दी पर 'कश्यप' का भी स्मृति-चिह्न बना मिलता है। सम्भवतः व्यासगद्दी के नीचे प्रवाहित होने वाली 'व्यास गङ्गा' ही 'काश्यपी' गङ्गा के नाम से विख्यात रही हो।

मार्कण्डेय महामुनि[२]—द्वादश वर्षीय सत्रयाग के समय इस महामुनि के द्वारा ही नैमिष में सरस्वती और गङ्गा आकाश से लाई गयी थीं। गोमती में जिस गङ्गोद्भेद का वर्णन प्राप्त होता है, सम्भवतः वही गङ्गा इन्हीं महामुनि के प्रसादस्वरूप लाई गई थी। (विस्तृत विवरण के लिए देखें मार्कण्डेय द्वारा गङ्गावतरण)।

नारद[३]—भक्ति की प्रतिमूर्ति महामुनि नारद बारम्बार इस नैमिषारण्य की पावन भूमि का चक्कर लगाते रहे हैं। इनका नैमिष की तपोभूमि से बहुत ही लगाव रहा है। ये वीणा के तारों पर नैमिष का गुणगान करते फिरते थे। पद्मपुराण में जहाँ नैमिष में आने वाले विभिन्न ऋषियों का वर्णन मिलता है, वहीं नारद का नाम भी प्राप्त होता है। लिङ्गपुराण के प्रथम अध्याय में नारद के आगमन का वर्णन किया गया है।

वशिष्ठ—रघुकुल कुलगुरु वशिष्ठ अपने युग के ऋषियों में प्रख्यात थे। इनका अनेक स्थानों पर आवास मिलता है; किन्तु स्कन्दपुराण में इनका आश्रम 'मोहेरकपुर' बतलाया गया है। यह मोहेरकपुर सम्भवतः इसी नैमिष क्षेत्र में ही रहा। वैसे इसे धर्मारण्य में बतलाया गया है। मेरे विचार से नैमिष की ८४ कोशीय परिक्रमा के अन्तर्गत जो कौलवा बसेठी स्थान पड़ता है, वह वशिष्ठ और विश्वामित्र दोनों के परस्पर तपोवल-विवाद को इंगित करता है। विदित हो कि यहाँ दोनों ही महर्षियों के बीच झगड़ा हुआ था। महाभारत से स्पष्ट है कि ययाति स्वर्ग से नैमिष में ही पतित हुआ था। वर्तमान समय 'मोहेकमपुर ही मोहेरकपुर' कहा जा सकता है, जहाँ भगवान् राम ने हत्या से मुक्त होने के लिए यज्ञ कराया था।

---

१. पद्मपुराण ६।१३१।४-५५।
२. पद्मपुराण—३।३।२५।६-८।
३. लिङ्गपुराण—१।५।

ऋष्यश्रृङ्ग—महर्षि ऋष्यश्रृङ्ग द्वारा ही नैमिष में राजा दशरथ का पुत्रेष्टि-यज्ञ सम्पन्न हुआ था, ऐसी यहाँ लोक-प्रसिद्धि है। नैमिष साधना का क्षेत्र है। यहाँ पर की गयी साधना निष्फल नहीं होती; बल्कि शीघ्र ही फल प्रदान करती है[१]। अतएव यहाँ पर पुत्रेष्टि-याग का होना निश्चय ही पुत्रदायक सिद्ध हुआ होगा। दूसरी बात यह है कि नैमिष क्षेत्र प्राचीन अवध के क्षेत्र में था, अतएव यहाँ पर पुत्रेष्टियाग के विषय में शंका की जा सकती है। यहाँ चक्रतीर्थ के पूर्वी तट पर एक मूर्ति है, जो श्रृंगि ऋषि की बतायी जाती है। किन्तु यह प्रतिमा 'सपक्ष मनुष्य' की है। पुरातत्त्वविदों ने इसका विश्लेषण किया है, इनके नाम से एक छोटा सा मन्दिर परिक्रमा मार्ग में पड़ता है, जो उनके यहाँ आगमन को प्रमाणित करता है। ब्रह्माण्डपुराण के ललितोपाख्यान[२] में कामक्षी देवी के वरदानस्वरूप राजा दशरथ को चार पुत्र प्राप्त हुए थे, ऐसा वर्णन प्राप्त होता है।

महर्षि वाल्मीकि—काव्यतरु पर आरूढ़ होकर जिस प्राचेतस ब्रह्मविद् आदि कवि महर्षि वाल्मीकिरूप कोकिल ने 'राम-राम' इन मधुराक्षरों के रटन से साहित्य जगत् को अनुगुंजित किया, उसकी महिमा से सारा संसार सुपरिचित है। ये महर्षि लौकिक काव्य के आदि प्रणेता माने जाते हैं। भगवान् राम के सच्चरित्र को काव्यबद्ध कर 'रामायण' इस नाम वाले अमूल्य रत्न को मानव समुदाय के कल्याणार्थ प्रदान करने वाले ये प्रथम मनीषी हैं। इनका समय वही माना जाता है, जो कि भगवान् राम का है। विद्वानों ने रामायण का रचना-काल ३१०० ई० पूर्व माना है। लोकमान्य तिलक १६०० ई० से १८०० ई० पूर्व में मानते है। फादर कामिल बुल्के ६०० ई० पूर्व, कीथ ४०० ई० पूर्व, विंटरनित्स एवं बेल्वेल्कर क्रमशः ३०० और २०० ई० पूर्व तक मानते हैं। राम त्रेता युग में हुए थे। त्रेता युग की काल सीमा को विद्वानों ने ८६७१०० वर्ष पूर्व माना है। किन्तु डा० वचनदेव कुमार ने उपर्युक्त तर्कों की समालोचना करते हुए रामायण की रचना ४००० वर्ष पूर्व मानी है[४]।

स्वयं वाल्मीकि रामायण से स्पष्ट है कि सीता जी परित्याग के उपरान्त वाल्मीकि के आश्रम में ठहरीं थीं। वहीं पर लव और कुश[५] का जन्म हुआ था। उन्हें

---

१. सुप्रसन्ना च कामाक्षी सान्तरिक्षगिराऽवदत्।
भविष्यति मदंशास्ते चत्वारस्तनया नृप॥
(ब्रह्मांड, ललि० ३६।१४४ निर्णयसागर, मुंम्बई)

२ जैसा कि पुरातात्त्विकों ने इस प्रकार प्रतिमा को सपक्ष मनुष्य का बतलाया है। इसके लिए विस्तार से देखें 'भारतीय कला' लेखक—वासुदेवशरण अग्रवाल।

३. संस्कृत सा० का इति०; ले० वचनदेव कुमार पृ० ४५, संस्क० प्रथम १९७७।

४. वही, पृ० ४६।

५. लव-कुश के सम्बन्ध में ऐसी उक्ति है कि महर्षि वाल्मीकि ने कुश के द्वारा एक लव के समरूप पुत्र निर्मित कर दिया था, जिससे उनका नाम 'कुश' पड़ा था।

मुनि ने सम्पूर्ण रामायण को कंठस्थ कराया था। जिस समय भगवान् राम नैमिष में अश्वमेध यज्ञ कर रहे थे, उस समय वाल्मीकि भी लव-कुश को लेकर यज्ञ में उपस्थित हुए थे, लव-कुश ने राम को सम्पूर्ण रामायण सुनायी थी, जिज्ञासावश वाल्मीकि जी बुलवाए गये। पुनः वाल्मीकि ने सीता जी के जीवित होने का रहस्य बतलाया। उसी समय सीता जी इन्हीं महर्षि के द्वारा नैमिष में लायी गयीं[१]।

कौतूहलवश पुनः यहाँ पर सीता का परीक्षण हुआ था। उसी समय सीता माँ ने धरती माँ से प्रार्थना की थी कि यदि मैं भगवान् राम के अतिरिक्त किसी को भी मन से चिन्तन नहीं करती हूँ, तो माता पृथ्वी मुझको अपनी शरण में जगह दे दे[२]। इस प्रकार इसी नैमिष क्षेत्र में ही सीता जी पृथ्वी में समा गयीं। (विस्तृत विवरण के लिए देखें भगवान् राम द्वारा नैमिष में यज्ञ और सीता का पृथ्वी में प्रवेश)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महर्षि वाल्मीकि का नैमिष से अटूट सम्बन्ध रहा है। स्वयं महर्षि जी ने वारंबार रामायण में नैमिष की मर्यादा को गाने में थोड़ी सी कमी नहीं की। उन्होंने नैमिष भूमि को सतत पुण्यप्रद माना और यहाँ की महिमा को गाते-गाते न अघाये।

महर्षि जी का आश्रम-स्थान वर्तमान गंगातट स्थित विठूर (ब्रह्मावर्त) को माना जाता है, जहाँ तक नैमिष की पवित्रधूलि उड़-उड़ कर उनके आश्रम को पवित्र करती रही। कुछ विद्वान् तमसा-तट पर इनके आश्रम को मानते हैं।

कुछ भी हो, महर्षि महान् आत्मा थे। उनका परब्रह्म से साक्षात्कार हो चुका था। उनकी दृष्टि सामान्य न होकर दिव्य थी। इन्होंने काव्यतरु पर आरूढ़ होकर 'राम-राम' इन मधुराक्षरों के रटन से साहित्य जगत् को अनुगुंजित किया। इनकी महिमा से सारा संसार सुपरिचित है।

वेदव्यास—एक लाख श्लोकों वाले महाभारत के रचयिता के रूप में वेदव्यास का नाम किसे ज्ञात नहीं है? वेदों की शाखाओं का व्यास (विस्तार) करने के कारण ही इनका नाम 'वेदव्यास' पड़ा। 'वाचस्पत्यम्' नामक शब्दकोष में इसकी व्याख्या करते हुए लिखा गया है—'वेदान् व्यस्यति विभिन्नशास्त्रत्वेन पृथक् करोति इति

---

१. पद्मपु०—६।२७०।१७।

२. यथाऽहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि॥
(वा० रामा० ९७।१४।१६)

× × ×

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि कोकिलम्॥

वेदव्यासः'। व्यासशब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक 'अस्' जातु में 'अण्' प्रत्यय से बनता है[१]। इन्हें पाराशर से उत्पन्न होने के कारण 'पाराशर' भी कहते हैं। ये कृष्णवर्ण के थे तथा इनका जन्म द्वीप (टापू) में हुआ था, अतः ये 'कृष्णद्वैपायन व्यास' के नाम से भी जाने जाते हैं।

कूर्मपुराण के अनुसार अट्टाईसवें द्वापर के आगमन पर पराशर-पुत्र द्वैपायन व्यास का जन्म हुआ। वे ही समस्त वेदों तथा पुराणों के प्रदर्शक थे। इन्होंने देवाधिदेव त्रिलोचन साम्ब सदाशिव की आराधना करके वेदों का व्यास करने का वरदान प्राप्त किया था—

'अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते ह्यस्मिन् वै द्वापरे द्विजाः।
पराशरसुतो व्यासः कृष्णद्वैयापनोऽभवत्॥

स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शकः।
पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरिः[२]॥'

ब्रह्माण्ड तथा भागवत पुराणों में इनके प्रमुखरूप से पाँच शिष्यों का उल्लेख है—जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन, पैल और लोमहर्षण सूत[३]। इनमें पैल को ऋग्वेद का पाठक, वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता, जैमिनि को सामवेद का पाठक और सुमन्तु को अथर्ववेद का पाठक बताया गया था। पाँचवें शिष्य सूत को उन्होंने इतिहास और पुराण की विधिवत् शिक्षा प्रदान की और उन्हें इसका प्रचार-प्रसार करने को नियुक्त किया।

अथ शिष्यान् प्रजग्राह चतुरो वेदपारगान्।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च॥

पैलं तेषां चतुर्थं च पञ्चमं मां महामुनिः।
ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः॥

यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च।
जैमिनिं सामवेदस्य श्रावकं सोऽन्वपद्यत॥

तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत्[४]॥

कूर्मपुराणानुसार प्रारम्भ में यजुर्वेद एक ही था। उसके चार भाग हुए। इसी से चातुर्होत्र की उत्पत्ति हुई। इससे ही उन्होंने यज्ञ किया। इस तरह से यजुष्

---

१. वाचस्पत्यम्—खण्ड ६, प्रकाशन १९७० पृ० ४९६५।
२. कूर्मपुराण—१।५०।९-१० सर्वभारती काशीराज-न्यास, १९७१ प्रका०।
३. भागवतपु०—१।४।२२-२४।
४. कूर्मपुराण—१।५०।१२-१४।

द्वारा अध्वर्यु, ऋक् से अग्निहोत्र (होता), साम से उद्‌गाता एवं अथर्व-मन्त्रों द्वारा 'ब्रह्मा' की कल्पना हुई[१]।

इसके अनन्तर कृष्णद्वैपायन व्यास ने ऋचाओं को पृथक् करके ऋग्वेद का निर्माण किया। यजुर्मन्त्रों से यजुर्वेद का एवं साम-मन्त्रों से सामवेद का संग्रह प्रस्तुत किया।

विभेद बहुधा वेदं नियोगाद् ब्रह्मणः प्रभोः।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः[२]॥

उन्होंने ऋग्वेद के २१ भाग एवं यजुर्वेद को सौ शाखाओं में विभाजित किया। सामवेद को एक सहस्र शाखाओं में और अथर्ववेद को नव शाखाओं में विभक्त किया[३]।

इन्हीं भगवान् व्यास ने अठारह विभागों में पुराणों की रचना की। 'भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः'[४]।

ये पराशर तुत्र महामुनि व्यास उस अविनश्वर जानने योग्य ओंकारस्वरूप अव्यय वेद एवं न ज्ञात होने योग्य (अवेद) तत्त्व को भी जानते हैं—

इत्येतदक्षरं वेद्यमोङ्कारं वेदमव्ययम्।
अवेदं च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः[५]॥

वेदव्यास जी का नाम विष्णु के २४ अवतारों के अन्तर्गत प्राप्त है[६]। कहने का तात्पर्य यह है कि वेदव्यास विष्णु के अवतार ही थे। कूर्मपुराण का निम्न श्लोक उपर्युक्त रहस्य की पुष्टि करता है।

'कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायणः स्वयम्।
अपान्तरतमाः पूर्वं स्वेच्छया ह्यभवद्धरिः[७]॥'

और भी—

द्वापरे-द्वापरे विष्णुं व्यासरूपी महामुने।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते जगतो हितः[८]॥
एकोऽयं वेदभगवान् व्यासो नारायणः प्रभुः[९]॥

प्रत्येक युग में वेदव्यास हुए हैं। केवल एक ही व्यास नहीं। इन लोगों ने अपने-अपने युग में वेदों का व्यास किया। श्रीकालीपद तर्काचार्य ने विष्णुपुराण में

---

१. वही—१।५०।१५-१६। २. वही—१।५०।२; व ७।
३. वही—१।५०।१८; 'एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा'।
४. वही—१।५०।२०। ५. कूर्मपु०—१।५०।२५।
६. भागवतपु०—१।३।५-२६। ७. वही—१।४९।४८।
८. विष्णुपु०—३।३।५। ९. वही—१।४९।५०।

इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है—'वेदव्यासास्तु तत्तद्युगेषु बहव एव, न त्वेक एव। सर्वेषु युगेषु वेदव्यास इति ध्येयम्।' (विष्णुपु० पृ० २२४ टिप्पणी, प्रका० कलकत्ता)

कूर्मपुराण में ही वेदव्यास के २८ द्वापरों में होनेवाले विभिन्न नाम गिनाये गये हैं। इस वर्तमान मन्वन्तर के पूर्वकालिक प्रथम द्वापर में स्वायंभुव मनु को व्यास माना गया है। इसमें उन्होंने ब्रह्मा के निर्देश से अनेक प्रकार से वेदों का विभाजन किया। द्वितीय द्वापर में प्रजापति वेदव्यास हुए, तृतीय में शुक्राचार्य, चतुर्थ में बृहस्पति व्यास हुए। पंचम में सविता, छठें में मृत्यु, सातवें में इन्द्र, आठवें में वसिष्ठ को व्यास माना गया। नवें द्वापर में सारस्वत, दसवें में त्रिधामा, ग्यारहवें में त्रिविष, बारहवें में शततेजा व्यास हुए। तेरहवें में धर्म और चौदहवें में तरक्षु, पन्द्रहवें में त्र्यारुणि, सोलहवें में धनञ्जय, सत्रहवें में कृतञ्जय, अठारहवें द्वापर में ऋतञ्जय नामक व्यास हुए। उन्नीसवें द्वापर में भारद्वाज, बीसवें में गौतम, इक्कीसवें में वाचश्रवा तथा बाईसवें में श्रेष्ठ नारायण व्यास हुए। इसी तरह से तेईसवें में तृणबिन्दु, चौबीसवें में वाल्मीकि, पच्चीसवें में शक्ति एवं छब्बीसवें में पराशर व्यास कहलाये। सत्ताईसवें द्वापर में महामुनि जातूकर्ण व्यास हुए और इस अट्ठाईसवें द्वापर युग में पराशर के पुत्र कृष्ण-द्वैपायन व्यास हुए। ये ही सभी वेदों एवं पुराणों के प्रदर्शक हैं[1]।

विदित हो कि गोमती के पावन उत्तरी तट पर भगवान् वेदव्यास की गद्दी बनी हुई है। यहीं समीप में स्वायम्भुव मनु का तपस्या-स्थल है। कूर्मपुराण का स्पष्ट उल्लेख है कि पूर्वकालिक प्रथम द्वापर में स्वायम्भुव मनु ने वेदव्यास के रूप में ब्रह्मा के कथनानुसार वेदों का व्यास (विस्तार) किया था। मेरे मतानुसार संभवतः यह 'व्यास-गद्दी', जिसके लिए लोगों की आज भी मान्यता है कि यहीं पर भगवान् वेदव्यास ने वेदों तथा पुराणों का विभाजन किया था, वह स्वायंभुव मनु व्यास ही हैं, जिनके स्मृति-चिह्न की सजीवता आज भी विद्यमान है। पुनः अट्ठाईसवें द्वापर में होने वाले कृष्ण-द्वैपायन व्यास ने भी उन्हीं के अनुसार वेदों का विभाजन व पुराणों का भी विभाजन किया[2]। निम्नलिखित श्लोक प्राचीनकाल में व्यास जी द्वारा मुनियों के उपदेश को सिद्ध करता है—

यन्नैमिषारण्यमुनीश्वराणां प्रोक्तं पुरा व्यासमुनीश्वरेण।
तस्मादसावादिगुरुर्भवांस्तु द्वितीय आर्यो भुवने प्रसिद्धः[3]॥

महर्षि व्यास ने अन्ततोगत्वा 'बदरीवन' में अपना आश्रम स्थान बनाया था। इसीलिए इनको 'बादरायण' भी कहते हैं। शिवमहापुराण 'कैलास-संहिता' का

---

१. वही—१।५१।१-१०' विष्णुपुराण—३।३।९-२०; भागवत—१।४।२०- २।
२. कूर्मपुराण—१।५०।२; १७; २०।
द्वापरे तु पुरावृत्ते मनोः स्वायंभुवोऽन्तरे।
ब्रह्मा मनुमुवाचेदं वेदान् व्यस्य प्रजापते॥
३. शिवमहापुराण; कैलाससं०—२३।२५।

निम्न श्लोक इसकी पुष्टि करता है, जिसमें सूत जी बदरिकाश्रम में स्थित अपने गुरु के पास जाने को बता रहे हैं—

अहं गुरुपदाम्भोजसेवायै वादराश्रमम् ।
गमिष्ये भवताम्भूयस्सत्सम्भाषणमस्तु मे[1] ॥

निःसन्देह व्यास हमारी भारतीय संस्कृति के महान् महर्षि हैं। इनसे रहित हो भारतीय संस्कृति एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती ।

पौराणिकोत्तम लोमहर्षण सूत—

सूत व्यास के प्रशिष्य और पुराण-कथा के प्रवाचक थे। सम्पूर्ण पुराण-वाङ्मय सूत के ही सुमधुर मुखारविन्द मकरन्द का अमृत सागर है, जिसका पान करके सुधीजन परमसुख और शान्ति को प्राप्त करते हैं। सूत ही पुराणों के उन सूत्र के समान हैं, जिनमें नाना प्रकार के मणि-रत्नों का सुभग सायुज्य पिरोकर अलौकिक माल्यदाम-सा बन गया है। सूत पुराणों के प्रातिभासिक सूर्य हैं, जिनसे पुराण-ज्ञानरूप अमूल्य निधि प्रकाशित होती है। शौनकादिक ८८ सहस्र ऋषि ज्ञान-जिज्ञासु हैं। सूत उनकी पिपासा को शान्त करनेवाले प्रतिभावान् धर्मज्ञाता धर्मोपदेशक हैं। व्यास के अमित प्रभाव से अमृतरस का वर्षण करनेवाले स्वाती के बूँद हैं।

सूत का अर्थ कालिदास ने 'सारथी' शब्द से लगाया है[2]। मनुस्मृतिकार मनु ने ब्राह्मणी में क्षत्रिय से उत्पन्न पुत्र को सूत कहा है—

क्षत्रियात् विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः ।
अश्वसारथ्यमेवैतेषां जीविका[3] ॥

इसी मनुस्मृति में इन सूतों का कर्म मुख्यरूप से रथ का सारथित्व करना बताया गया है। बाद में इन सूतों का मुख्य कार्य 'चारण' या बंदीजनों के रूप में उभर कर आया। पद्मपुराण के सृष्टिखंड से विदित होता है कि इनकी स्तुतियों से प्रसन्न होकर वेणुपुत्र पृथु ने सूतों के लिए सूत-विषयक सारथ्य-कर्म प्रदान किया था[4]। कहीं-कहीं इन्हें क्षेत्रोपजीवी भी कहा गया है।

पुराणज्ञ सूत को व्यास जी का सत्संग प्राप्त हुआ। उनकी धर्म में प्रवीणता देख कर ब्राह्मणों ने उन्हें पुराणों में अधिकार दे दिया[5]।

१. वही, कै० सं०—२३।४५।
२. रघुवंश—३।४२।
३. मनुस्मृति—१०।११।
४. पद्मपु०, सृष्टि० ५।१।३०-३१।
५. मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्मः क्षेत्रोपजीविनः ।
पुराणेष्वधिकारो मे विहितो ब्राह्मणैरिह ॥ (पद्मपु०, सृ० खं० ५।१।३५)।

यद्यपि वर्णसंकरता के कारण सूतों को वेदों में अधिकार नहीं था; फिर भी महामति धर्मविशारद सूत को उनके अद्भुत्-वृत्तान्त, धार्मिक विचार और पवित्रता ने ही उन्हें महान् बना दिया। यह तो भगवान् वेदव्यास जी का गुरु-प्रसाद ही था।

सूत का नाम लोमहर्षण सूत था। इनके विषय में ऐसा कहा जाता है कि ये अपने सुभाषित वचनों के द्वारा श्रोताओं का रोम-रोम पुलकायमान कर देते थे। इस कारण इनका नाम लोमहर्षण पड़ा।

'लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतॄणां यत्सुभाषितैः।
कर्मणा प्रार्थतस्तेन लोकेऽस्मिन् लोमहर्षणः'[1] ॥

कूर्मपुराण में भी इसी विशेषता को उल्लिखित करते हुए कहा गया है—

अस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत्।
द्वैपायनस्य भगवांस्ततो वै रोमहर्षणः[2] ॥

ब्रह्माण्ड-पुराण में महर्षि वेदव्यास के पाँच शिष्य बताये गये हैं। इन्होंने अपने पाँचों शिष्यों को वेद-सम्मत पुराण प्रेमपूर्वक पढ़ाया था। ये पाँचों शिष्य हैं— १—जैमिनि, २—सुमन्तु, ३—वैशम्पायन, ४—पैलव, ५—लोमहर्षण सूत। इन पाँचों शिष्यों में सूत अद्भुत् वृत्तान्त वाले धार्मिक और पवित्रात्मा थे। इन्होंने सद्-गुरु व्यास से पुराणों को भली-भाँति पढ़ा और मनन किया। तदनन्तर वशिष्ठादिक गुरुजनों की आज्ञा पाकर पुराणों का उपदेश करने लगे।

द्वैपायनाय प्रददौ परं ब्रह्म सनातनम्।
तमध्यापितवान् दिव्यं पुराणं वेदसम्मितम् ॥

विख्यापनार्थं लोकेषु बह्वर्थं श्रुतिसम्मितम्।
जैमिनिं च सुमन्तुं च वैशम्पायनमेव च ॥

चतुर्थं पैलवं तेषां पञ्चमं लोमहर्षणम्।
सूतमद्भुतवृत्तान्तं विनीतं धार्मिकं शुचिम् ॥

सूतजी का आगमन नैमिषारण्य में हुआ था। इन्होंने यहाँ पर उपस्थित शौनकादिक ८८ सहस्र तपस्वियों एवं मुनियों के बीच समस्त पुराणों का धर्मोपदेश किया था[3]। प्रायः अनेक पुराणों में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। ब्रह्मपुराण के प्रथम अध्याय में नैमिष को सुपुण्य वनस्थली का विस्तृतरूप से उल्लेख करते हुए यहाँ के निवासियों के द्वारा बारह वर्षीय सत्रयाग का अनुष्ठान वर्णित है—

---

१. पद्मपुराण- सृष्टिखंड।
२. कूर्मपुराण—१।३।८।
३. श्रीमद्भागवतपु०—१।४।२२-२४।

'यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके।
आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथान्येऽपि द्विजातयः॥

तानागतान् द्विजास्ते तु पूजां चक्रुर्यथोचिताम्।
तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च॥

तत्राजगाम सूतस्तु मतिमांल्लोमहर्षणः।
तं दृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः॥

सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव संविवेश वरासने।
कथां चक्रुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः॥

कथान्ते व्यासशिष्यं ते पप्रच्छुः संशयं मुदा।
ऋत्विग्भिः सहिता सर्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः'[1]॥

उपर्युक्त श्लोक मतिमान्, व्यासशिष्य लोमहर्षण सूत के आगमन को स्पष्ट करते हैं और यहाँ के मुनियों के द्वारा सूत की सेवा एवं आतिथ्य को भी स्पष्ट करते हैं। मुनियों ने उन्हें सुन्दर आसन प्रदान किया तथा उन सूत से पुराणों की नानाप्रकार की कथाओं को सुनाने की जिज्ञासा प्रकट की।

स्कन्दपुराण में भी इसी तथ्य का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

'अत्रान्तरे महाविद्वान् व्यासशिष्यो महामुनिः।
अगमन्नैमिषारण्यं सूतः पौराणिकोत्तमः'[2]॥

गरुडपुराण में भी इसी तरह पुष्टि करते हुए कहा गया है—

'सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम्।
विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमागतम्'[3]॥

इसी तरह से पद्मपुराण[4], अग्निपुराण[5] में भी इसी तथ्य को बतलाया गया है।

सूत जी को कहीं-कहीं विष्णुभक्त कहा गया[6] है; जबकि शिवपुराण में इन्हें शैव के रूप में कहा गया है।

---

१. ब्रह्मपुराण—१।११-१५।
२. स्कन्दपु०—३।१।८-९।
३. गरुडपु०—१-३।
४. 'आजगाम महातेजाः सूतस्तत्र महाद्युतिः'।
(पद्मपुराण—१।१।६-११)
५ अग्निपुराण—१-४
६ गरुडपुराण—'विष्णुभक्तं महात्मानम्' (१।३)।
'त्वं वैष्णवो व्यासशिष्यः' (कल्किपु० २९।२)।

सूत ! सूत ! महाप्राज्ञ व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
धन्यस्त्वं शैववर्णोऽसि वर्णनीयमहद्गुणः[१] ॥

आज भी नैमिषारण्य में इन्हीं लोमहर्षण सूत की स्मृति में चक्रतीर्थ के पूर्वभाग में सूत-गद्दी बनी हुई है, जो सूत जी की अमर कहानी को कह रही है।

यत्र-तत्र पुराणों में इस बात का भी वर्णन मिलता है कि बलराम जी ने, जो तीर्थयात्रा-प्रसंग से नैमिष में आये थे, सूत का वध कर दिया था।

नैमिषारण्ये भवत इच्छया लोमहर्षणः ।
बलरामास्त्रयुक्तात्मा सूतपुत्रो हतस्तथा[२] ॥

मार्कण्डेय-महापुराण इस सूत-वध को बलराम के द्वारा द्वारिका में दिखलाया गया है। उनके सुमधुर कथारसामृत से सारा का सारा पुराण-वाङ्मय सजीव है[३]।

महर्षि शौनक—

नैमिषारण्य के तपस्वियों के अग्रणी महर्षि शौनक थे। पुराणों में शौनक ऋषि के द्वारा आयोजित किये गये सत्रों (यज्ञों) का उल्लेख मिलता है। महाभारत[४] के आदिपर्व में तथा ब्रह्मपुराण[५] के प्रथम अध्याय में शौनकादि ऋषियों के द्वारा नैमिषारण्य में बारह वर्षीय होनेवाले सत्र का वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार से अग्निपुराण[६], मत्स्यपुराण[७] आदि में भी सत्र का वर्णन मिलता है; किन्तु यहाँ पर समय निर्धारित न करके 'दीर्घसत्र' का उल्लेख किया गया है। श्रीमद्भागवत[८] तथा पद्मपुराण[९] के आदिखण्ड में नैमिषारण्य में होनेवाले 'सहस्रवार्षिक-सत्र' का वर्णन प्राप्त होता है। इन्हीं द्वारा आयोजित सत्र-याग में व्यासशिष्य रोमहर्षण सूत जी का पदार्पण हुआ था और इन्होंने ही इन्हें महाभारत, पुराण आदि का कथन किया था[१०]।

महर्षि शौनक को गृहपति अथवा कुलपति के भी नाम से पुकारा गया है[११]। महाभारत के अनुसार दश सहस्र विद्यार्थियों के भोजन एवं निवास की व्यवस्था कर उन्हें विद्यादान करनेवाले गुरुकुल-प्रमुख को कुलपति के नाम से पुकारा जाता था[१२]।

---

१. शिवमहापु०—६।१।
२. कल्किपु०—२७।२०।
३. सूत पर विस्तृत विवरण के लिए पढ़ें, 'पौराणिकोत्तम सूत' ले० डा० महेन्द्र वर्मा, नैमिषीयम्, चतुर्थ अङ्क, प्रथम संख्या।
४. महा० भा० १।१।१।
५. ब्रह्मपु०—१।११।
६. अग्निपु०—१।२।
७. मत्स्यपु०—१।४।
८. भाग०पु०—१।१।४।
९. पद्मपु० आदि—१।६।
१०. महाभारतभा० १।१।
११. वायुपु०—९३।२४।
१२. महाभारत आदि—१।१; हरिवंश नीलकण्ठ टीका—१।१।४।

इन्हें गृत्समद-पुत्र शुनक का पुत्र 'शौनक' भी कहा गया है। यह सुविख्यात आचार्य आश्वलायन के गुरु भी कहे जाते हैं। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कात्यायन सर्वानुक्रमणी के भाष्य में इस प्रकार दिया गया है। 'शुनहोत्र भारद्वाज ऋषि के पुत्र शौनहोत्र गृत्समद के द्वारा एक यज्ञ किया गया। उस समय इन्द्र स्वयं उपस्थित थे। इस यज्ञ के समय असुरों के आक्रमण से शौनहोत्र ने इन्द्र का रक्षण किया। इस कारण इन्द्र ने प्रसन्न होकर शौनहोत्र को आशीर्वाद दिया कि अगले जन्म में तुम भृगुकुल में 'शौनक-भार्गव' नाम से पुनः जन्म लोगे'[१]।

शौनक के नाम से लिखित अनेक ग्रन्थ मिलते हैं—१. ऋग्वेदप्रातिशाख्य, २. ऋग्वेदछन्दानुक्रमणी, ३. ऋग्वेदभाष्यानुक्रमणी, ४. ऋग्वेद-अनुवाकानुक्रमणी, ५. ऋग्वेदसूक्तानुक्रमणी, ६. ऋग्वेदकथानुक्रमणी, ७. ऋग्वेदपादविधानम्, ८. बृहद्देवता, ९. शौनकस्मृति, १०. चरणव्यूह, ११. ऋग्विधान। इनके अतिरिक्त शौनकादिगृह्यसूत्र, शौनकगृह्यपरिशिष्ट आदि भी प्राप्त होते हैं। मत्स्यपुराणानुसार शौनक ने वास्तुशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखा था।

पर्यालोचन कर देखने से पता चलता है कि शौनक भी कई हुए हैं, जैसे—व्याकरणशास्त्रकार शौनक[२], शिक्षाकार[३] शौनक, तत्त्वज्ञानी शौनक[४], पौराणिक नैमिषीय शौनक, गृत्समद शौनक आदि।

शौनक के प्रमुख शिष्य आश्वलायन ने अपने गुरु को प्रसन्न करने के लिए 'आश्वलायनगृह्यसूत्र' एवं श्रौतसूत्र की रचना की थी। आश्वलायन के इस ग्रन्थ को देखकर शौनक बड़े ही प्रसन्न हुए थे और अपने श्रौत-शास्त्र-विषयक ग्रन्थ विनष्ट कर दिये थे। आश्वलायन के शिष्य कात्यायन थे, जिन्होंने यजुर्वेदकल्पसूत्र, सामवेद-उपग्रन्थ आदि की रचना की थी, तथा जिन्हें उसने अपने शिष्य पतञ्जलि को प्रदान किया था[५]।

नैमिषारण्य में आज भी शौनक-यज्ञशाला व 'शौनक-गद्दी' के नाम से प्रसिद्ध स्थल हैं, जो उनकी याद दिलाते हैं।

कौण्डिन्य ऋषि—

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड में इस महर्षि के सम्बन्ध में एक कथा दी गयी है।

---

१. देखिए—प्राचीन चरित्र कोष 'शौनक' पृ० ९८५।

२. ऋक्प्रातिशाख्य का रचयिता।

३. जो कल्प, शाखा, आदि के रचयिता माने जाते हैं।

४. इन्होंने जनमेजय परीक्षित राजा के पुत्र शतानीक को तत्त्वज्ञान की शिक्षा प्रदान की थी।

५. विस्तृत विवरण के लिए देखें—प्राचीन चरित्रकोष, पृ० ९८५-९८७, प्रकाशन वर्ष—१९६४।

उसमें इनका आश्रम 'हस्तिमती' और 'साभ्रमती' के सङ्गम पर बतलाया गया है। एक बार बड़ी घनघोर वृष्टि हुई, जिससे नदियों में उफान आ गया। बाढ़ से इनका सारा आश्रम बह गया, इसलिए इन्होंने नदी को सूख जाने का शाप दे दिया और स्वतः तपोबल से विष्णुलोक को चले गये[1]।

नैमिषारण्य में इनकी स्मृति में मनु-सतरूपा तपःस्थल पर एक छोटी सी शिला बनी हुई है। विदित हो कि साभ्रमती नैमिष में कश्यप ऋषि द्वारा लायी गयी थी, जिसे काश्यपी गंगा भी कहते हैं। यहीं पर १० कदम पर हट कर कश्यप ऋषि का भी एक छोटा सा स्तूप बना है[2]।

कौण्डिन्य ऋषि का नाम तैत्तिरीयप्रातिशाख्य[3], बृहदारण्यक-[4]उपनिषद् में भी प्राप्त होता है। इन्हें शाण्डिल्य का शिष्य तथा कौशिक का गुरु बतलाया गया है[5]।

अणि माण्डव्य—

पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में नैमिषारण्य के याग में आनेवाले ऋषियों की जो सूची मिलती है, उसमें अणि माण्डव्य का नाम भी है[6]। ये प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि, धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ तपस्वी थे। महाभारत के आदिपर्व में इनकी कथा वर्णित है कि निरपराधी होते हुए भी इन्हें शूली पर चढ़ाया गया था[7]। यह लिङ्गदेह धारण कर यम के पास पहुँचे और अपनी इस सजा का कारण पूछा। यम ने बतलाया कि तुम बचपन में पतिंगों के पुच्छ-भाग में सींक घुसेड़ते थे, इस कारण से तुम्हें यह सजा मिली। इसको सुनकर माण्डव्य ने यह नियम बनाया कि १२ से १४ वर्ष तक के बालकों द्वारा नादानी में किये गये अशुभ कर्मों का पाप उन्हें नहीं भुगतना पड़ेगा। पद्मपुराणानुसार इन्हें चोरी का आरोप लगा था; किन्तु बाद में सच्चाई ज्ञात होने पर इन्हें छोड़ दिया गया[8]। स्कन्दपुराणानुसार देवपन्न राजा की कन्या का अपहरण कर शंबर ने उसके गहने माण्डव्य के आश्रम में छिपा दिया। राजा के दूतों ने इनके आश्रम के पास से आभूषणों को प्राप्त किया था, अतएव इन्हें फाँसी की सजा दी गयी; किन्तु शंबरासुर से कन्या प्राप्त होने पर राजा ने अपनी कन्या का विवाह माण्डव्य ऋषि से कर दिया[9]।

परिक्रमा क्षेत्रान्तर्गत मड़रुआ पड़ाव के पास 'माण्डव्य तीर्थ' प्राप्त होता है[10]। बहुत सम्भव है कि 'मड़रुआ-पड़ाव' 'माण्डव्य' का ही अपभ्रंश हो।[11]

---

१. पद्मपुराण—उ० खं० १४५ अ०। २. देखिए—परिक्रमा नक्शा।
३. तै० प्रा०—५।३८। ४. बृह० उप०—२।६।१।४।
५. विशेष विवरण के लिए देखें—प्राचीन-चरित्र-कोश पृ० १६८।
६. पद्मपु०, उ० खं०—६।२१९।२-१५। ७. महाभारत—आ० १०१।२५-२७।
८. पद्मपु० उ० ५१वाँ अध्याय। ९. स्कन्दपुराण—५।३।१६९-१७२।
१०. देखिये—परिक्रमा मानचित्र। ११. मत्स्यपु०—१०३।१३-१५।

कालिदास—

महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य के १९वें सर्ग में जो नैमिषारण्य के विषय में स्वाभाविक वर्णन किया है तथा यहाँ की प्राकृतिक छटा का जो निरूपण किया है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने नैमिष जैसे पवित्र तीर्थ-स्थल का अवश्य भ्रमण किया होगा[१]।

महाकवि तुलसीदास—

जिस समय तुलसीदास जी रामचरितमानस की रचना कर रहे थे, उस समय वे अयोध्या से नैमिष आये थे। अभी यहाँ से कुछ दूर पूर्वोत्तर में स्थित रामपुर-मथुरा में तुलसी से कुछ वर्ष पूर्व सम्बन्धित एक मानस सम्मेलन सम्पन्न किया गया था, जिसमें यह बात स्पष्ट की गयी थी कि तुलसीदास रामपुर-मथुरा में स्थित एक कुटिया में कुछ दिन रहे थे और उन्होंने मानस के कुछ अंशों की रचना भी यहाँ की थी। रामचरितमानस में तुलसी की यह पंक्ति 'तीरथवर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता' कितनी ही स्वाभाविक तथा महत्त्वपूर्ण है। धेनुमती गोमती का पावन तट और उसमें मनु-सतरूपा का स्नान करना। उनके इस प्रकार के तप-भाव को देख ऋषियों-मुनियों का आना तथा साथ ही साथ ऐसे पावन स्थान पर विभिन्न तीर्थों में मुनियों के द्वारा उन्हें स्नान-दर्शन आदि कराया जाना, तुलसीदास के प्रत्यक्ष अनुभव को बतलाता है। यहाँ पर हम तुलसीदास के रामचरितमानस के उस अंश को उद्धृत कर रहें हैं, जहाँ पर उन्होंने मनु-सतरूपा की तपस्या का वर्णन और विष्णु के द्वारा पुत्र-प्राप्ति का वरदान वर्णित है।[२] वहाँ उल्लेख है—

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा। जिन्ह तें भै नर सृष्टि अनूपा॥
दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू॥
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताहीं। वेद पुरान प्रसंसहिं जाहीं॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदिदेव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥
साँख्यशास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व विचार निपुन भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला॥
सो०—होइ न विषय विराग, भवन वसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुखलाग, जनम गयउ हरिभगति विनु॥१४२।
बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥
तीरथ वर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधिदाता॥

---

१. तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः। (रघु० १९वाँ सर्ग)
२. रामचरितमानस-बालकाण्ड (मनुसतरूपा तपस्या व वरदान)।

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा॥
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा॥
पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा। हरषि नहाने निर्मल नीरा॥
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी। धरम धुरंधर नृप रिषि जानी॥
जहँ तहँ तीरथ रहे सुहाये। मुनिन्ह सकल सादर करवाये॥
कृस शरीर मुनि पट परिधाना। सत समाज नित सुनहि पुराना॥

दोहा—द्वादस अक्षर मंत्र पुनि, जपहिं सहित अनुराग॥
वासुदेव पद पंकरुह। दंपति मन अति लाग॥१४३।

करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानंदा॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे। वारि अधार मूल फल त्यागे॥
उर अभिलाष निरंतर होई। देखिय नयन परम प्रभु सोई॥
अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथ वादी॥
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा॥
संभु विरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश ते नाना॥
ऐसेउ प्रभु सेवकवस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई॥
जौं यह वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा॥

दोहा—यहि विधि बति बरष षट्, सहस बार आहार॥
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार॥१४४।

बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥
विधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहुवारा॥
माँगहु वर बहुभाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥
अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहिं नहि पीरा॥
प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृपरानी॥
मागु-मागु वर भै नभबानी। परम गभीर कृपामृत सानी॥
मृतक जियावनि गिरा सोहाई। श्रवनरंध्र होइ उर जब आई॥
हृष्ट-पुष्ट तन भये सुहाए। मानहुँ अवहिं भवन तें आए॥

दोहा—श्रवन सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दंडवत, प्रेम न हृदयँ समात॥१४५॥

सुनु सेवक सुरतरु सुर धेनू। विधि हरि हर वंदित पद रेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक॥
जौं अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न ह्वै यह वर देहू॥
जो सरूप वस शिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥

देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन ॥
दंपति वचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेम रस पागे ॥
भगत वछल प्रभु कृपा निधाना। विश्वपास प्रगटे भगवाना ॥

दोहा—नील सरोरुह नीलमनि, नील नीलधर श्याम।
लाजहिं तन शोभा निरखि, कोटि-कोटि सतकाम ॥१४६।

सरद मयंक वचन छवि सींवा। चारु कपोल चिवुक दर ग्रीवाँ ॥
अधर अरुन रद सुंदर नासा। विधु करि निकर विनिंदक हासा ॥
नव अंम्वुज अंवक छवि नीकी। चितवनि ललित भावती जीकी ॥
भृकुटि मनोज चाप छवि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी ॥
कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला। पदिक हार भूषन मनि जाला ॥
केहरि कंधरि चारु जनेऊ। बाहु विभूषन सुंदर तेऊ ॥
करि-कर सरिस सुभग भुजदंडा। कटि निषंग कर सर कोदंडा ॥

दोहा—तड़ित विनिदंक पीत पट, उदर रेखवर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥१४७।

पद राजीव वरनि नहिं जाहीं। मुनि-मन-मधुप बसहि जेहि माहीं ॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि शक्ति छवि निधि जगमूला ॥
जासु अंश उपजहिं गुणखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई ॥
छवि समुद्र हरि रूप विलोकी। यक टक रहे नयन पट रोकी ॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु-सतरूपा ॥
हरष विवश तन दशा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ॥
सिर परसे प्रभु निज कर कंजा। तुरत उठाये करुनापुंजा ॥

दोहा—बोले कृपा निधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
मागहु वर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ॥ १४८।

सुनि प्रभु वचन जोरि जुग पानी। धरि धीरज बोले मृदुवानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥
एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाही ॥
तुमहिं देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाई ॥
यथा दरिद्र विवुध तरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई ॥
तासु प्रभाउ जान नहिं सोई। तथा हृदय मम संशय होई ॥
सो तुम जानहु अंतरयामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ॥
सकुच विहाइ मागु नृप मोहीं। मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं ॥

दोहा—दानि शिरोमनि कृपा निधि, नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभुसन कवन दुराव ॥ १४९ ।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले ॥
आपु सरसि खोजऊँ कहँ जाई। नृप तव तनय होव मैं आई ॥
सतरूपहि विलोकि कर जोरें। देवि मागु वर जो रुचि तोरें ॥
जो वरु नाथ ! चतुर नृप मागा। सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा ॥
प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगति हित तुम्हहि सोहाई ॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतर जामी ॥
अस समुझत मन संशय होई। कहा जो प्रभु प्रवान प्रभु सोई ॥
जो निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहि जो गति लहहीं ॥

दोहा—सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहि कृपा करि देहु ॥ १५० ।

सुनि मृदु गूढ़ रुचिर वर रचना। कृपासिंधु बोले मृदु वचना ॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माहीं। मैं सो दीन्हि सब संशय नाहीं ॥
मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटहि अनुग्रह मोरे ॥
वंदि चरन मनु कहेउ वहोरी। अवर एक विनती प्रभु मोरी ॥
सुत विषयिक तव पद रति होऊ। मोहि वड़ मूढ़ कहै किन कोऊ ॥
मनि विनु फनि जिमि जल विनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना ॥
असि बरु माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ ॥
अब तुम मम अनुशासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी ॥

सो०—तहँ करि भोग विशाल, तात गये कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुवाल, तव मैं होब तुम्हार सुत ॥ १५१ ।

इच्छामय नरवेष सँवारे। होइहऊँ प्रगट निकेत तुम्हारे ॥
अंशन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता ॥
जे सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहि ममता मद त्यागी ॥
आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरहि मोर यह माया ॥
पुरउव मैं अभिलाष तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य तुम्हारा ॥
पुनि-पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतर धान भये भगवाना ॥
दंपति उर धरि भगति कृपाला। तेहि आश्रम निवसे कछु काला ॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्हि अमरावति बासा ॥

दोहा—यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृषकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेत ॥ १५२ ।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी का आगमन—

पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पुष्टि-मार्ग के प्रवर्तक वल्लभाचार्य जी का नाम चिरस्मरणीय है। अष्टछाप महाकवियों में सूरदास आदि के परम गुरु बालकृष्णोपासक महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की प्रथम बैठक इस परम पुनीत नैमिष-क्षेत्र में हुई थी। उनकी बैठक का स्थान माँ धेनुमति का पवित्रतम उत्तरी तट था, जहाँ भगवान् वेदव्यास ने वेदों का विभाजन किया था तथा जहाँ पर मनु और सतरूपा ने निर्गुण निराकार परब्रह्म परमेश्वर को सगुण साकाररूप में दर्शन किया तथा जहाँ पर उन्होंने स्वतः ब्रह्म को ही निज पुत्र के रूप में प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया। इसी स्थान पर महाप्रभु ने ब्रह्म-चिन्तन किया एवं अपने अनुयायियों को धर्म का उपदेश दिया। आज भी उनकी स्मृति में मनु-सतरूपा की तपःस्थली से सटा हुआ यह स्थान बना है, जहाँ पर उनके अनेक भक्त श्रद्धा-सुमन समर्पित करने आते रहते हैं।

स्वामी निम्बार्काचार्य—

इनका जन्म बारहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में बेलारी जिले के निम्बपुर ग्राम के तैलङ्ग-ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ और माता का नाम सरस्वती था। निम्बार्क का वास्तविक नाम नियमानन्द था; परन्तु भक्तमाल के बाईसवें सर्ग से स्पष्ट होता है कि सूर्यास्त के समय ये नीम के पेड़ पर चढ़कर सूर्य का दर्शन करते थे। ये वैष्णव आचार्य थे तथा द्वैताद्वैतवाद या भेदाभेदवाद के प्रतिपादक आचार्य थे। इनकी प्रमुख रचनाओं में वेदान्तपारिजातसौरभ, श्रीकृष्णस्तवराज, वेदान्त-शिद्धान्तप्रदीप आदि प्रमुख हैं[१]।

धर्म-प्रचार के समय स्वामी जी का आगमन नैमिषारण्य में भी हुआ था। यद्यपि इनका कोई स्मृति-चिह्न तो नहीं मिलता; परन्तु इसके अन्य कई साक्ष्य मिलते हैं। इनकी परम्परा के लोग आज भी यहाँ दर्शन करने आते हैं[२]।

बीसवीं शती के महान् सिद्ध एवं साधक—

शिवानन्द नागास्वामी—दिगम्बर, आजानुभुज, दमकता मुखमण्डल, चमकीली आँखें, भस्म से अभिरंजित गात्र, ऐसा सोचने को समय ही नहीं देता कि यह महात्मा सिद्ध-साधक नहीं हैं; बल्कि अपने आप देखते ही देखते हृदय में उनके प्रति अपार श्रद्धा उमड़ पड़ती है। जो घोर श्मशान पर स्थित वटवृक्ष के नीचे सदैव सिकता की शैया पर अग्नि के साक्ष्य में बैठे-बैठे पारलौकिक सत्ता के अधिपति का चिन्तन किया

---

१. भारतीय दर्शन, डा० पारसनाथ द्विवेदी, पृ० ३९५, वर्ष १९८०।

२. स्वामी जी से विशेष भेंट-वार्ता एवं उनके विचार जो लेखक को उनके ही मुखारविन्द से ज्ञात हुए।

करते थे, उन्हें लोग नंगे स्वामी नाम से जानते थे। ये महात्मा आध्यात्मिक तत्त्व-चिन्तन में ही सदैव अपना समय व्यतीत किया करते थे। प्रातःकाल गोमती स्नान व सायंकाल त्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरेश्वरी माँ ललिता का अर्चन व दर्शन इनका यही दैनिक नियम था। इसके अतिरिक्त इनका सारा समय अपने निश्चित स्थान वटवृक्ष के नीचे ही व्यतीत होता था। इन महात्मा की विशेषता थी कि कभी भी किसी गृहस्थ के पास जाकर किसी भी वस्तु की कामना तक नहीं करते थे। योगक्षेम-वहन करनेवाला प्रभु इनके योग-क्षेम के लिए किसी न किसी भक्त को लाकर सेवा के लिए उपस्थित कर देता था। इन्हें तो किसी भी वस्तु की चाह नहीं थी। इन्होंने एक विद्यालय खुलवा रखा था, जो आज 'वेदव्यास संस्कृत पाठशाला' के नाम से जानी जाती है। उसके विद्यार्थियों के लिए तथा वहाँ जितने भी अतिथि आते थे, उनके लिए वे सेवा को उचित बताते थे।

कहते हैं कि स्वामी जी प्रातःकाल भस्म को ही गोमती के जल में घोल कर पी जाते थे। पुनः समस्त अतिथियों के भोजनोपरान्त एक बार सूक्ष्मरूप से अन्न-ग्रहण करते थे। वर्षा के मौसम में भी महात्मा जी उसी बरगद के तले धूनी पर ही बैठे-बैठे समय व्यतीत करते थे। इस बात को प्रत्यक्षदर्शी लोग बतलाते हैं कि स्वामी जी अपने चारों ओर भस्म से एक रेखा खींच देते थे, जिससे जल की एक भी बूँद उनके ऊपर नहीं पड़ती थी; जब कि चारों ओर जल बहता था। ये दिगम्बर होते हुए भी वैष्णव भी थे। माँ ललिता के तो अनन्य भक्त थे।

विभूतियाँ—

स्वामी जी योगी थे। योगी के पीछे-पीछे विभूतियाँ दौड़ती रहती हैं। उन्हें किसी भी वस्तु की कभी कमी नहीं होती। स्वामी जी अपनी विभूतियों से लोगों को चमत्कृत कर धनार्जन करने की कोई भी इच्छा नहीं रखते थे। वे तो निःस्पृह थे, उनकी अहैतुकी भगवन्निष्ठा थी। यद्यपि उनकी अनेक प्रकार की विभूतियों का लोग गान करते हैं। यहाँ एक विशेष वार्ता का उल्लेख करना उचित है, जो कि इन्हीं के पाठशाला के एक विद्यार्थी पं० रवीन्द्रनाथ मिश्र जी के द्वारा ज्ञात हुई।

१९५४ ई० में महाकुम्भ का मेला चल रहा था। हम सब बच्चे स्वामी नारदानन्द जी के ब्रह्मचर्याश्रम में जाया करते थे। वहाँ स्वामी जी से तथा अध्यापकों से भी गाढ़ परिचय हो गया था। वहीं यह बात हुई कि आश्रम की स्पेशल ट्रेन महाकुम्भ प्रयाग मेले में नारदानन्द जी की ओर से जा रही है। अतः तीर्थ-यात्री लोग चलेंगे। ब्रह्मचर्याश्रम के छात्र भी चलेंगे। उसी में साथ तुम सब लोग भी चलना। हुआ यह कि हम सभी तीन-चार मित्रों ने अपने पाठशाले में पढ़ने के उपरान्त सोचा कि चलो पता लगाया जाये कि ट्रेन कब प्रयाग को जा रही है? ऐसा विचार कर जब हम सभी लोग नारदानन्दाश्रम पहुँचे, तो वह ट्रेन जा चुकी थी। हम सब लोगों के मन में घोर निराशा व दुःख हुआ; मन पर भारी ठेस लगी, आँखों में आँसू

बहने लगे। हम सब लौट कर नंगे स्वामी के पास पहुँचे और अपने मन की बात बतलायी। स्वामी जी ने धीरज बँधाया। बेटा इतना क्यों परेशान हो? तुम लोग तो महातीर्थ में प्रतिदिन कुम्भ का सा पुण्य अर्जित करते हो। रही बात स्वामी नारदानन्द जी की, तो वे बहुत बड़े हैं। हमारे फक्कड़ लोगों के पास इतने पैसे कहाँ? जो हम प्रयाग में कुम्भ तक जा सकें।

स्वामी जी की बात सुनकर हम सभी बच्चों ने कुछ बालहठ जैसी बातें कीं। स्वामी जी ने कहा—अच्छा तो जाओ, सभी लोग स्नानादि करके प्रातःकाल आना। हम सभी लोग प्रयाग कुम्भ का स्नान करने चलेंगे। प्रातःकाल हुआ, सब लोग स्नानादि करके स्वामी जी के पास पहुँचे। स्वामी जी हम सब लोगों को अपने स्थान से पूर्व-दक्षिण में स्थित एक वटवृक्ष के नीचे ले गये और सभी लोगों से बोले—तुम सब ध्यान करके बैठो और '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस मन्त्र का जाप करो। हम तीन-चार मित्रों ने स्वामी जी की इस बात को मानकर वैसा करना प्रारम्भ किया। कुछ ही क्षणों में कानों में सनसनाहट जैसी आवाज हुई। फिर क्या था, समाधि ही लग गयी। हम लोग अब नैमिष में बरगद के पेड़ के नीचे न बैठ कर कुम्भ स्थित त्रिवेणी की पावन-सिकता में बैठे थे।

स्वामी जी हम लोगों को वहाँ के सभी पावन स्थलों, साधुओं के पाण्डालों को बता रहे थे। हम लोगों ने जब वहाँ गङ्गा मैया में स्नान करने का आग्रह किया, तो स्वामी जी ने कुछ पल रुकने को कहा। उसी समय घोर चीत्कार मच गया। गङ्गा पर बना हुआ पीपे का पुल टूट गया। नागा सम्प्रदाय के हाथियों के बिगड़ जाने से एवं जनता में भगदड़ मच जाने से हजारों लोग मौत के मुख में चले गये। स्वामी जी हम लोगों को यह दृश्य दिखलाने के बाद बोले—बेटा, इसीलिए मैं तुम लोगों को अभी रोक रहा था। देखो न, कितनी भीषण दुर्घटना हुई। तुम सब तो बच्चे थे, तुम लोगों का कौन ध्यान देता? पुनः स्नानादि किया गया और स्वामी जी ने कहा—बेटा, अब चलो तुम सब लोगों ने तो स्नान कर ही लिया, हमें भी अपने पूजन के लिए विलम्ब होगा। इस प्रकार हम सब दो-तीन घण्टे एक ही स्थान पर बिता दिये। स्वामी जी की कृपा से पुनः जब हम लोगों के नेत्र खुले, तो हम लोगों ने अपने को उसी स्थान पर पाया, जहाँ कि बरगद की छाया में बैठे थे।' इस तरह स्वामी जी ने हम लोगों को महाकुम्भ-स्नान करवाया था। वस्तुतः स्वामी जी को बहुत सी यौगिक-सिद्धियाँ थीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण नैमिष उस महात्मा के अभाव में अपने अनमोल रत्न को खोये बैठा है। वस्तुतः वह सिद्ध-साधक तपस्वी तथा मनस्वी थे। नैमिष की परम विभूति थे।

उड़िया स्वामी—

शिवानन्द (नंगे स्वामी) के परम शिष्य, दिगम्बर, दीर्घबाहु, नैष्ठिक ब्रह्मचारी उड़िया स्वामी भी अपने परमगुरु की अनुकृति थे। इन्होंने सदैव अपने गुरु के ही

चरण-चिह्नों पर चलने का व्रत लिया था। चूँकि ये उड़ीसा के रहने वाले थे, अतएव लोग इन्हें उड़िया स्वामी के नाम से ही जानते थे। अग्नि में आहुति देना इनका दैनिक नियम था। इनमें भी अपार योग-शक्ति थी। महारानी बलरामपुर को इन्हीं के आशीर्वादस्वरूप सन्तान हुई। वे बाबा की अनन्य भक्त थीं। इनका भी व्यक्तित्व अपने में बेजोड़ था। दिगम्बर होने के कारण इन्हें नागे स्वामी कहते थे।

आपा नारायण—

काशीकुण्ड के पश्चिमी भाग में इनकी समाधि बनी हुई है। इनके सम्बन्ध में लेखक को विशेष ज्ञात नहीं हो सका। कहते हैं कि ये भी बहुत ही सिद्ध-साधक तपस्वी थे। इन्होंने जीवित समाधि ले ली थी। आज भी यदि कोई व्यक्ति इनकी समाधि पर एक मास तक नित्य बिना व्यवधान के फूलमाला, धूप-दीप चढ़ा दे, तो निश्चय ही कार्य सिद्ध हो जाता है। यदि कार्य-सिद्ध नहीं होता, तो दैनिक नियम में व्यवधान पड़ जाता है।

मौनी बाबा—

नैमिष के सिद्ध सन्तों में मौनी बाबा का नाम बड़े ही गर्व के साथ लिया जाता है। ये यहाँ अयोध्या-तीर्थ में रहते थे। इन्होंने वहाँ एक विशाल मन्दिर बनवाया था तथा बहुत बड़ा यज्ञ किया था। कहते हैं कि सम्भवतः यज्ञ में घी की कमी पड़ गयी, तो इन्होंने गोमती मैया से उधार माँगा और गोमती का जल टीन में भर कर लाया गया, जो कि घृत बन गया, जिससे यज्ञ का कार्य सम्पन्न हुआ। ये सदैव मौन (मूक) रहते थे, अतएव लोग इन्हें 'मौनी' नाम से जानते थे।

नागा स्वामी—

अत्यन्त सिद्धिदायी हंस-हंसिनी क्षेत्र में आज से लगभग पचास वर्षों पूर्व एक नागा स्वामी जी थे, जिनकी अद्भुत चमत्कारिता का लोग गुणगान किया करते हैं। ये बिल्कुल ही अनासक्त थे, जिन्हें किसी प्रकार की कोई इच्छा न थी। वे जितात्मा थे, प्रशान्तात्मा थे, परमात्मा में एकनिष्ठ थे। जिन्होंने गीता का 'शीतोष्णसुख-दुःखेषु' का पाठ पढ़ा था। ये ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा, जितेन्द्रिय, सुवर्ण और मिट्टी दोनों को समान समझने वाले थे। ये ऋषि वस्त्रादिक न धारण करके जाड़ा, गर्मी तथा बरसात में भी दिगम्बररूप में रहते थे। इस कारण इनको भी लोग नागा स्वामी ही कहा करते थे। इन्हें न तो कुछ खाने की चिन्ता थी, न पीने की। एक-मात्र भगवद्भक्ति ही उनकी निधि थी। यहाँ के प्रत्यक्षदर्शी उनकी नाना प्रकार की सिद्धियों का वर्णन करते हैं।

ये हंस-हंसिनी के ऊँचे-नीचे घोर जंगलों में कहाँ रहते थे, इसका कुछ पता नहीं। कभी-कभी इन्हें लोग गोमती के किनारे रेतों में पड़े देखते, तो कभी ये गोमती

के जल में शयन करते देखे जाते थे। कभी-कभी ये उन्हीं तटों में कहाँ विलीन हो जाते। यद्यपि दर्शनार्थी जिज्ञासु इनके दर्शन के लिए आते; किन्तु यदि सत्य-निष्ठा से दर्शनार्थ आते, तो संभव था कि उनके दर्शन हो जायें, नहीं तो कोई जरूरी नहीं कि बाबा जी का दर्शन सम्भव हो सके, जबकि वे पास में ही होते। बाबा कब और कहाँ मिल जायें? उन भक्तों की भक्ति-निष्ठा पर आधारित था। लोगों का कथन है कि यदि कोई व्यक्ति घर वालों की बिना राय से बाबा के लिए कुछ आहार ले जाता, तो निश्चय ही वे पूछ बैठते कि तुमने ऐसा क्यों किया?

आज उन्हीं का प्रभाव है कि उस निर्भयारण्य में किसी प्रकार की कोई दुर्घटना नहीं सुनाई पड़ती।

वास्तव में आज-कल भी ऐसे ही महात्माओं की आवश्यकता है। नैमिष की भूमि किसी न किसी योग्य महात्मा का अवश्य ही सृजन करती है।

स्वामी नारदानन्द—

नैमिषारण्य की पावन तपःस्थली में एक ऐसे महापुरुष सन्त का उदय हुआ, जिन्होंने धर्म से विचलित होते हुए लोगों के पाँव को सम्बल प्रदान किया। कहते हैं उस समय नैमिष का नाम नीमसार अथवा नीमषार बोला जाने लगा था। यहाँ के लोगों की मानसिक संकीर्णता भी बहुत सीमित हो गयी थी। नैमिष जैसा पवित्र क्षेत्र प्रयाग, काशी, पुष्कर, अयोध्या, मथुरा, की अपेक्षा लोगों में अधिक प्रभाव पैदा नहीं कर सका था। ऐसे समय में नैमिषारण्य को भास्करवत् प्रकाशित करने के लिए इस महापुरुष का अभ्युदय हुआ।

इन्होंने नैमिषटीले से अपनी तपस्या का शुभारम्भ किया था। अनेक आपदाओं को झेलते हुए भी इन्होंने यहाँ के प्रकाश को भारत के कोने-कोने में पुनः प्रतिभासित कराने का प्रयत्न किया। आज उन्हीं की तपश्चर्या का प्रभाव है कि स्वामी जी का आश्रम चारों आश्रमों से सुशोभित हो रहा है और अपनी अनूठी एवं अनुपम भूमिका निभा रहा है।

स्वामी जी कन्नौज के मकरन्दनगर में कान्यकुब्ज परिवार में जन्मे थे। इनके पितामह का नाम बुलाकीदास और पिता का नाम बुद्धसेन था। कुछ दिनों बाद इनके पितामह मियाँगंज में आकर रहने लगे थे। यहीं पर उनके पितामह ने एक शिवमंदिर बनवाया था। घर-परिवार का संस्कार बालक के पवित्र मन पर पड़ता ही है। अतः बालकपन से ही ये पितामह के साथ शिवमंदिर जाते और भगवान् में एकनिष्ठ हो अपना ध्यान लगाते थे। धीरे-धीरे वे ही संस्कार और अधिक परिमार्जित एवं पुष्ट हुए। इनके मन ने संसार को असार ठहराया और ये निकल पड़े प्रभु की शरणागति प्राप्त करने। इनका उद्देश्य था मानव मात्र के त्रय-तापों का निवारण। वह कैसे सम्भव था, भगवद् भक्ति से। अतएव ये पहले गंगा-तट पर ही तपश्चर्या में

लगे रहे, तदनन्तर नैमिष की भूमि ने हठात् अपने पास खींच लिया। यहीं से उनकी साधना दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ी। अन्ततः इन्होंने नैमिष का प्रकाश, जो काल की कठोरता एवं मैल से धुँधला हो रहा था, को सरल एवं साफ कर देश-देश व जन-जन तक प्रचार किया। अन्त में नवम्बर १९८४ ई० में स्वामी जी का पार्थिव शरीर सूक्ष्म में विलीन हो गया।

आज इनके ही उत्तराधिकारी स्वामी विवेकानन्द जी महाराज गुरु की क्षति-पूर्ति में अत्यधिक लगनपूर्वक लगे हुए हैं। ये वेदान्त के अच्छे विद्वान् हैं।

माँ आनन्दमयी—

माँ आनन्दमयी का नाम नैमिषारण्य के सन्त-महात्माओं में सुवर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। माँ ने जब से नैमिष में पदार्पण किया, यहाँ की अदृश्य विभूति स्वतः प्रभासित हो उठी। जो नैमिष बहुत समय से अन्य तीर्थों की भाँति उपेक्षित रहा, उसकी ओर माँ ने अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट कराया। जो स्थान पौराणिक जन्मभूमि माना जाता है, पुराणों का वहाँ पर अभाव देखकर माँ ने एक विशाल पुराण-मन्दिर की स्थापना करायी, जिसमें चारों वेद तथा अठारहों पुहाणों को संगृहीत किया गया, जिसकी नित्य-प्रति पूजा-अर्चा हुआ करती है। यहीं पर अठारह पुराणों के स्वरूप पुराण-पुरुष की स्थापना हुई, जो विश्व में अन्यतम है। यज्ञशाला एवं महादेव-मन्दिर भी दर्शनीय हैं।

माँ का जन्म ३० अप्रैल १८९६ ई० को त्रिपुरा जिले के खेउड़ा ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम विपिन विहारी भट्टाचार्य और माता का नाम विधुमुखी देवी था। माँ बचपन से ही नाना प्रकार की अलौकिक विभूतियों से पूर्ण थीं। माँ कोई सिद्ध तान्त्रिक न थीं; बल्कि इनके अन्दर वह देवांश विद्यमान था, जो समय-समय पर भूले-भटके हुए लोगों को सन्मार्ग प्रदान करता था। माँ के सामने आने-वाला प्रत्येक प्राणी श्रद्धा और प्रेम से झुक जाता था। यही माँ का अद्भुत चमत्कार था।

माँ ने धर्म-संस्थापना का कार्य इस कलियुग में साक्षात् देवी के रूप में किया। उनके इन कृत्यों के प्रति भारतवर्ष सदा ऋणी रहेगा और मानवमात्र का क्या कहना?

डा० पन्ना लाल जी ने माँ के विषय में लिखते हुए कहा है—"देखने में आता है कि जो लोग स्त्री या पुरुष, बच्चे या बूढ़े माता आनन्दमयी के सम्पर्क में आते हैं, वे मुग्ध हो जाते हैं और एक अलौकिक आकर्षण का अनुभव करते हैं। माता जी हमारी आध्यात्मिक तृषा को उत्तेजित करती हैं और परितृप्त करती हैं[1]।"

संतों के लिए तो सारी की सारी वसुधा ही कुटुम्ब है। ये किसी भी मानव प्राणी को छटपटाते नहीं देख सकते। माँ ने भी इसीलिए कन्याकुमारी से लेकर

---

१. माँ आनन्दमयी—डॉ० पन्नालाल, १९७७।

हिमालय तक भिन्न-भिन्न स्थानों में धर्म-ध्वजा को फहराया तथा सनातन हिन्दू धर्मशास्त्र को सम्बल प्रदान किया। माँ किसी भी देश अथवा स्थान-विशेष की संकीर्णता में नहीं बँधी। उन्होंने सारे मानव-समुदाय को अध्यात्म का पाठ पढ़ाया और सिद्ध कर दिया कि भारतीय देवियों का अस्तित्व आज भी वैसा ही विद्यमान है, जैसा कि वैदिक-काल में मैत्रेयी, अपाला का था। इनके सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन के लिए माँ का साहित्य पढ़ना चाहिए। दुर्भाग्यवश माँ हम लोगों के बीच अपने पार्थिव शरीर से विद्यमान न रहीं। २७ अगस्त, १९८२ को माँ परात्परब्रह्म में लीन हो गयीं।

माँ की अनन्य देन—

माँ को इतने से ही सन्तोष न हुआ। उन्होंने यहाँ पुराणों तथा वेदों के अध्ययन एवं अध्यापनार्थ एक अनुसन्धान संस्थान की नींव डाली, जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति के पोषण का महानतम उद्देश्य पूर्ण हो रहा है। इसकी प्रेरणा भी माँ ने तत्कालीन राज्यपाल **श्री चेन्ना रेड्डी** को दी थी। इसके वरिष्ठ पूज्यपाद **श्री गौरीनाथ शास्त्री** जी स्वयं एक बड़े साधक एवं तपस्वी हैं। **श्री पानू दा** के कुशल नेतृत्व में यह संस्थान पुष्पित हो रहा है। यहाँ पर अनेक विद्वान् जैसे स्व० डॉ० सत्यव्रत सिंह, डॉ० अरुणोदय नटवर जानी आकर अपनी सेवा से अलंकृत कर चुके हैं। वर्तमान समय में संस्कृत के विद्वान् डॉ० महाप्रभुलाल गोस्वामी जी अपने कुशल निर्देशन में इसे गति दे रहे हैं।

नैमिषारण्य में आनेवाले विभिन्न राजाओं का वर्णन—

(१) महाराजा मनु— स्वायंभुव सृष्टि और प्रलय दोनों ही एक के बाद एक चक्रवत् चला करते हैं। प्रत्येक सृष्टि के एक कल्प में एक मन्वन्तर कहा गया है। इस तरह से चौदह मन्वन्तर और प्रत्येक मन्वन्तर में एक मनु हुआ करते हैं। इन्हीं मनुवों से ही मैथुनी-सृष्टि का प्रारम्भ कहा गया है। पद्मपुराण से स्पष्ट होता है कि स्वयम्भू मनु ने सहस्र वर्षपर्यन्त नैमिषारण्य में गोमती के तट पर भगवान् विष्णु की उपासना की थी, जिससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए थे और उन्होंने उनसे वरदान माँगने के लिए कहा था। विष्णु के ऐसे वचन सुनकर मनु ने तीन जन्मों तक अपने पुत्र के रूप में उत्पन्न होने का वरदान माँगा था। इससे स्पष्ट है कि नैमिष की मर्यादा अवर्णनीय है। सर्वप्रथम निर्गुण निराकार परब्रह्म का चतुर्भुज विष्णु के रूप में दर्शन मनु को नैमिष में ही हुआ था। यहीं की पुण्यभूमि का प्रसाद है कि विष्णु त्रेतायुग में राजा दशरथ के यहाँ राम के रूप में, और वृष्णिवंशीय वासुदेव के यहाँ कृष्ण के रूप में अवतरित हुए।

'स्वायंभुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णमहामनुम्।
जजाप गोमती तीरे नैमिषे विमले शुभे॥

तेन वर्षसहस्रेण पूजितः कमलापतिः।
मत्तो वरं वृणीष्वेति तं प्राह भगवान्हरिः॥
ततः प्रोवाच हर्षेण मनुः स्वायम्भुवो हरिम्।

मनुरुवाच—

पुत्रत्वं भज देवेश! त्रीणि जन्मानि चाच्युत।
त्वां पुत्रलालसत्वेन भजामि पुरुषोत्तमम्॥

रुद्र उवाच—

इत्युक्तस्तेन लक्ष्मीशः प्रोवाच सुमहा गिरा।
एवं दत्त्वा वरं तस्मै तत्रैवान्तर्दधे हरिः।
अस्याभूत्प्रथमं जन्म मनोः स्वायंभुवस्य च॥
रघूणामन्वये पूर्वं राजा दशरथो ह्यभूत्।
द्वितीयो वासुदेवोऽभूत् वृष्णीनामन्वये विभुः॥
कलेर्दिव्यसहस्राब्दप्रमाणस्यान्त्यपादके ।
(पद्मपु०, उ० खण्ड—६।२६९।१-१२)

विष्णुरुवाच—

भविष्यति नृपश्रेष्ठ यत्ते मनसि कांक्षितम्।
ममैव च महाप्रीतिस्तव पुत्रहेतवे॥
स्थितिप्रयोजने काले तत्र तत्र नृपोत्तम।
त्वयि जाते त्वहमपि जातोऽस्मि तव सुव्रत॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि तवानघ॥

परन्तु तुलसीदास ने मनु और सतरूपा दोनों को ही नैमिष आकर पुत्र-प्राप्ति के लिए तपस्या करना दिखलाया है। निःसन्देह नैमिष-भूमि तपोमयी है और साधकों को सद्यः सिद्धि प्रदान करनेवाली है।

दक्ष-प्रजापति—स्कन्दपुराण के माहेश्वरखंड से विदित होता है कि एकबार दक्ष-प्रजापति का नैमिष में आगमन हुआ। यदृच्छावश आये हुए प्रजापति का सभी ऋषियों, मुनियों तथा सुरासुरों ने स्तुति की और उनका विधिवत् पूजन किया; परन्तु वहाँ पर उपस्थित महादेव ने उठकर उनका अभिवादन नहीं किया। महादेव के द्वारा इस प्रकार के तिरस्कार को देखकर दक्ष क्रोधित हो उठे और उन्होंने कहा कि मुझे देखकर सभी मुनिगणों और सुरासुरों ने नमस्कार किया; किन्तु भूत-प्रेत, पिशाचादि से सेवित इसने मेरा तिरस्कार किया है। अतएव मैं इसे शाप देता हूँ कि यह रुद्र आज से यज्ञ से बहिष्कृत किया जाता है; क्योंकि यह वर्णातीत है और वर्ण से परे है—

'एकदा हि स दक्षो नैमिषारण्यमागतः।
यदृच्छावशमापन्नः ऋषिभिः परिपूजितः॥
रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो वृत्तो मे।
वर्णातीतो वर्णपरो यतश्च'[१]॥

शिव के प्रति दक्ष के इस प्रकार के शाप को सुनकर नन्दी क्रोध से तमतमा उठे और उन्होंने दक्ष को भी शाप दे दिया।

वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीतिवादिनः।
कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः॥
वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः।
दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा॥
(पद्मपु० उ० खं० ६।२६९।१-१२)

नन्दी के इस प्रकार के वचन को सुनकर शिव मुस्कराने लगे और उन्होंने नन्दी को भाँति-भाँति से समझाया। इसके पश्चात् ऋषियों से घिरे हुए दक्ष भी क्रुद्ध होकर अपने स्थान को चले गये। दक्ष का यही वैर था, जो कि उन्होंने अपने यज्ञ में न तो दामाद शंकर को ही बुलवाया और न ही पुत्री पार्वती को। इसी अपमान से अपमानित होकर सती ने अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। इस वृत्तान्त से स्पष्ट है कि शिव और दक्ष के बीच वैर का अंकुर इसी नैमिष में अंकुरित हो गया था[२]।

कुछ लोग कनखल में दक्ष का स्थान होने के कारण नैमिष में घटनेवाली इस घटना को वहीं कनखल में होने की शंका करते हैं। साथ ही साथ यह शाप का विवाद-स्थल भी वहीं पर मानते हैं। मगर मेरे मतानुसार यहाँ पर समस्त ऋषि-मुनि-देवों का समुदाय एकत्र रहा होगा और दक्ष-प्रजापति के आगमन पर यहीं पर यह घटना घटी होगी।

विश्वामित्र और वशिष्ठ—वायु और ब्रह्माण्ड पुराणानुसार एक बार नैमिषारण्य में विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच विवाद हुआ था। वायुपुराण के कथनानुसार विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच कुछ बातों को लेकर झगड़ा हुआ। वशिष्ठ ने विश्वामित्र के वध की इच्छा से उन्हें अग्नि प्रस्तुत किया; किन्तु विश्वामित्र के हितैषी विभुकुन्द ने उस अग्नि को दैवविधि से सन्तान के रूप में बदल दिया और उसका पालन-पोषण किया। इन दोनों के इस विवाद-स्थल की हम वर्तमान में स्थित 'कौलहवा बसेठी' (कोलाहल वसेठी) से तुलना कर सकते हैं, जो कि संभवतः उपर्युक्त दोनों महर्षियों के परस्पर वाद-विवाद को इंगित करता है। यहीं से थोड़ी दूर पर स्थित चित्रकूट में विश्वामित्र के नाम से एक मन्दिर भी प्राप्त होता है[३]।

---

१. स्कन्द० १।१।२५-२६।
२. स्कन्दपुराण—१।१।३८ ४२।
३. देखिये नैमिषारण्य का परिक्रमा-मार्ग-नक्शा।

राजा ऐल पुरुरवा का आगमन—

वायु, शिव तथा ब्रह्माण्डपुराणों के आधार पर ज्ञात होता है कि चंद्रवंशीय पुरुरवा का आगमन नैमिष में हुआ था। वायुपुराण का कथन है कि पुरुरवा के शासन काल में ही मुनियों ने द्वादशवर्षीय सत्र-याग किया था। अठारह द्वीपों का उपभोग करता हुआ भी वह अत्यन्त रत्नलोभी था। देवहूति की प्रेरणा से उर्वशी ने उसको अपना पति बनाया तथा उस भार्या उर्वशी के साथ ही उसने सत्र (याग) को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहा। कहते हैं कि विश्वकर्मा के द्वारा नैमिषारण्य में सुवर्णमय यज्ञशाला निर्मित की गयी थी। एक दिन शिकार खेलते हुए पुरुरवा यहाँ आ पहुँचा। स्वर्ण की अनुपम यज्ञशाला को देखकर उसमें लोभ आ गया और उसने उसे प्राप्त करना चाहा। तब समस्त ऋषियों ने राजा के लोभ से क्रुद्ध होकर रात बीतते-बीतते उसे कुशवज्रों से मार डाला। पुरुरवा के मरणोपरान्त राजा का अभाव देखकर समस्त प्रजा ने मिलकर उर्वशी से उत्पन्न पुत्र आयु को नरपति बनाया। राजा आयु ही नहुष का पिता था। वह बड़ा ही धार्मिक था। उसने अपने शासन-काल में उन नैमिषीय ऋषियों के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार किया। युवक ऋषियों ने उसके शासन-काल में ही धर्म की वृद्धि के लिए सत्र आरम्भ किया। इस यज्ञ में पूर्वकाल के सृष्टि-यज्ञ की भाँति अनेक महान् ऋषि, जैसे—वैखानस, प्रियमित्र, वालखिल्य, मरीचि और अनेक यक्ष, पितर, गन्धर्व, नाग, देवता इत्यादि उपस्थित हुए थे।

इस यज्ञ की परिसमाप्ति भृगु आदि ऋषियों के द्वारा शान्तिबुद्धि और क्रिया के योग से उत्तम रीति से सम्पन्न हुई। उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि नैनिष में एक बार नहीं; अपितु समय-समय पर कई बार यज्ञ सम्पन्न हुए। पुरुरवा के भी शासन काल में यह यज्ञ सम्पन्न हो रहा था। समस्त नैमिषीय-ऋषिगण पुरुरवा की छत्रछाया में निर्भय होकर यज्ञ कर रहे थे; लेकिन दैववशात् उसके लोभ ने उसको मौत के घाट उतार दिया। राजा आयु के शासन काल में यह यज्ञ सम्पूर्ण हो पाया था। शास्त्रप्रमाण है कि राजा यदि लोभी हो जायेगा, तो उसका सद्यः विनाश निश्चित है।

मान्धाता के द्वारा नैमिष में यज्ञ—

इक्ष्वाकु-वंश शिरोमणि, राजवित्तम, समस्त भूमण्डल के स्वामी, अद्वितीय पराक्रमशाली मान्धाता ने नैमिष की पावनभूमि में यज्ञ किया था। जिस यज्ञ के परिणामस्वरूप उन्होंने इन्द्र को भी पीछे कर दिया था। तात्पर्य यह कि मान्धाता ने अपने बाहुबल के पराक्रम से सप्तद्वीपा पृथ्वी पर अधिकार कर लिया था और इन्द्र की अमरावती से बढ़कर उनकी पुरी अयोध्या, समस्त धन-वैभव से समृद्ध थी। शान्तिपर्व में यह बात पुष्ट होती है तथा समस्त देवताओं के द्वारा नैमिष में यज्ञ की भी प्रामाणिकता सिद्ध होती है, जैसा कि निम्न श्लोक से ध्वनित होता है—

समग्रैस्त्रिदशैस्तत्र इष्टमासीद्द्विजर्षभ ।
यत्रेन्द्रातिक्रमं चक्रे मान्धाता राजसत्तम ॥
(महाभा० शान्तिपर्व—३४३।३)

श्रीराम का अश्वमेध-यज्ञ तथा सीता जी का उपस्थापन—

वाल्मीकिरामायण से विदित होता है कि श्रीरामचन्द्र जी ने वसिष्ठ आदि ब्रह्मर्षियों के निर्देश पर पवित्र नैमिषारण्य में गोमती के तट पर उत्तम यज्ञ करने का निर्णय लिया और भाई भरत को इस यज्ञ का प्रबन्ध देखने का निर्देश दिया। साथ ही साथ यज्ञ की निर्विघ्न परिसमाप्ति के लिए सर्वत्र शान्ति-विधान प्रारम्भ करवा दिया। उस उत्तम यज्ञ को देखकर सभी लोग कृतार्थ होने लगे[1]। इसी बात को पद्मपुराण में भी कहा गया है कि भगवान् श्रीराम ने गौतमी (गोमती) के तट पर अश्वमेध यज्ञ किया। जानकी के अभाव में उन्होंने सुवर्ण की जानकी की प्रतिमा बनाकर उनके साथ हज़ारों अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ किये। उस यज्ञ में उन्होंने याजकों तथा याचकों को दक्षिणा से संतुष्ट किया।

'ततस्तु गौतमी तीरे नैमिषे जनसंसदि ।
इयाज वाजिमेधेन राघवः परपीरहा ।
काञ्चनीं जानकीं कृत्वा तया सार्धं महाबलः ।
चकार यज्ञान् बहुशो राघवः परमार्थवित् ॥
अयुतान्यश्वमेधानि वाजपेयानि च प्रभुः ।
अग्निष्टोमं विश्वजितं गोमेधं च शतक्रतुम् ।
चकार विविधान् यज्ञान् परिपूर्णान् सदक्षिणान्[2] ॥

वाल्मीकिरामायण के अनुसार राम ने उन याजकों को उनके मन के अनुरूप पर्याप्त दक्षिणा देने को भरत को निर्देश दिया था, जब तक कि वे पूर्ण सन्तुष्ट न हो जायँ। इस प्रकार से इनके चल रहे यज्ञ में महामुनि वाल्मीकि का पदार्पण हुआ। उन्हें एक भव्य आवास-स्थान प्रदान किया गया।

उनके साथ लव और कुश भी आये हुए थे। प्रसंगवशात् वाल्मीकि ने लव और कुश को सस्वर रामायण सुनाने का निर्देश दिया। गुरु के कथनानुसार दोनों ने भगवान् राम के समक्ष रामायण का गान किया। उनके इस प्रकार के सस्वर वाचन को सुनकर भगवान् राम ने उनके रचयिता के सन्दर्भ में पूछा। तब उन दोनों ने ही बतलाया कि गुरु वाल्मीकि के द्वारा ही यह रचित है। लव और कुश के इस प्रकार के वचन को सुनकर राम ने वाल्मीकि को बुलाया। वाल्मीकि ने भी विभिन्न प्रकार से उनकी प्रशंसा की और लव तथा कुश को उनका ही पुत्र बतलाया, साथ ही

१. वाल्मीकिरामा० उत्तर-काण्ड० ९१।१५-१७।
२. पद्मपुराण—६।२७०।१३-१६।

साथ सीता के जीवित होने के भी रहस्य को बतलाया। महामुनि के द्वारा सीता जी के इस प्रकार के रहस्य को जानकर लोगों में हर्ष की सीमा न रही। सभी लोगों ने सीता जी को तत्काल यज्ञ में लाने के लिए वाल्मीकि जी से निवेदन किया। तत्पश्चात् वाल्मीकि के द्वारा सीता जी को पुनः परीक्षार्थ नैमिषारण्य में लाया गया। सीता जी ने उपस्थित समस्त जन-समूह के बीच में यह वचन कहा—

यथाऽहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति[1]॥

सीता जी के इस प्रकार के वचन को सुनकर धरित्री पृथ्वी माँ एक विमान के साथ धरातल से उद्भूत हुईं और उन्होंने मैथिली सीता को दोनों हाथों से पकड़कर सिंहासन पर बैठा लिया। देखते ही देखते वह विमान नीचे धरती में समाहित हो गया।

तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयेत्[2]॥

आज भी नैमिषारण्य में जहाँ भगवान् ने अश्वमेध यज्ञ किये थे, वह दशाश्वमेध के नाम से तथा जहाँ पर भगवती सीता पृथ्वी में समाहित हुईं, वह स्थान सीता-कूप के नाम से जाना जाता है।

स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्ड के 'सेतु-माहात्म्य' के वर्णन-प्रसंग में भी सीता-कुण्ड (सीता-कूप) का वर्णन मिलता है। यह 'सीता-कुण्ड' नैमिष का न होकर गन्धमादन पर्वत पर स्थित है। जहाँ पर भगवान् राम ने प्रथम बार लंका से माता सीता को लाकर सभी देवताओं के समक्ष सीता के सतीत्व की परीक्षा ली थी। उस अग्नि-परीक्षा में माँ सीता ने स्पष्ट कर दिया था कि उनका सतीत्व बिल्कुल उज्ज्वल है, उसमें रञ्चमात्र भी दाग नहीं। उन्हीं के नाम से वहाँ पर भी 'सीता-कुण्ड' के नाम से उत्तम तीर्थ बना। उसी सीता-कुण्ड पर जाकर इन्द्र ने भगवान् सदाशिव की उपासना की थी और शाप से मुक्ति पायी थी। जैसा कि निम्न श्लोक स्पष्ट करता है—

'सीताकुण्डं प्रयाहीन्द्र गन्धमादनपर्वते।
सीताकुण्डस्य तीरे त्वं इष्ट्वा यागैः सदाशिवम्॥
राघवप्रत्ययार्थं हि प्रविश्य हुतवाहनम्।
सन्निधौ सर्वदेवानां मैथिली जनकात्मजा॥
विनिर्गता पुनर्वह्नेः स्थिता सर्वाङ्गशोभना।
निर्ममे लोकरक्षार्थं स्वनाम्ना तीर्थमुत्तमम्[3]॥

---

१. वाल्मीकिरामायण, उ० का०—९७।१४-१६, तुलनीय पद्मपु० ६।२५०।२५।
२. वा० रा० उ० का०—९७।१९; तुलनीय० पद्मपु०—६।२७०।२९।
३. स्कन्दपुराण, ब्रह्म-खण्ड, सेतुमाहा० १।११।७२-७४।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि प्रथम बार लंका से लौटते समय जहाँ पर माँ जनकनन्दिनी सीता की अग्नि-परीक्षा हुई थी, वह स्थान 'सीता-कुण्ड' के नाम से विदित है, साथ ही साथ दुबारा जब सीता-परित्याग के पश्चात् भगवान् राम के अश्वमेध यज्ञ में नैमिष में माँ सीता की परीक्षा हुई और माता सीता जहाँ पृथ्वी में समा गयीं, वह भी सीता-कुण्ड नाम से नैमिष में विख्यात है। स्कन्दपुराण के ही वैष्णव-खंड में अयोध्या के माहात्म्य में भी 'सीता-कुण्ड' का उल्लेख मिलता है[१]।

पाण्डवों का नैमिष आगमन—

महाभारत के वनपर्व में यह उल्लेख मिलता है कि पाण्डवों ने अज्ञात-वनवास के समय इधर-उधर तीर्थ-स्थानों में गुप्तरूप से निवास किया था। इसी समय में वे लोग नैमिषारण्य भी आये थे। इस परम पुनीत तीर्थं में अनेक पावन तीर्थ सुशोभित थे। उन लोगों ने गोमती के पावन तट पर स्थित तीर्थों में अभिषेक किया तथा कनेक गोदान किये, याचकों को धन दान भी किया।

ते तथा सहिता वीरा वसन्तस्तत्र तत्र ह।
क्रमेण पृथ्वीपाल नैमिषारण्यमागताः ॥
ततस्तीर्थेषु पुण्येषु गोमत्याः पाण्डवा नृप।
कृताभिषेकाः प्रददुर्गाश्च वित्तं च भारत[२] ॥

आज भी यहाँ नैमिषारण्य में गोमती के उत्तरी पावन कूल पर एक बहुत ऊँचा टीला है, जो कि पाण्डव-किला नाम से जाना जाता है। यहाँ पर पाँचों पाण्डवों की आदमकद अतिप्राचीन मिट्टी की मूर्तियाँ बनीं हैं। बीच में भगवान् कृष्ण की भी मूर्ति है। इस किले के ऊपर पवन-पुत्र हनुमान् की विशालकाय दक्षिणाभिमुख मूर्ति है। इसी किले पर एक प्राचीन कुँआ भी बना है, जिसे लोग 'द्रौपदी-कूप' के नाम से पुकारते हैं और उसकी विशेषता यह बतलाते हैं कि महावारुणी-पर्व पर इस कुंए का जल दुग्ध-सा बन जाता है।

कुछ भी हो, यह टीला ईसा पूर्व शताब्दी की संस्कृति को अपने गर्भ में छिपाये हुए है[३]। इस टीले पर अवश्य ही कोई ऐसा पाषाण-मन्दिर बना था, जिसकी कलाकृति अपने समय की बेजोड़ थी। आज भी इधर-उधर जमीन में दबे हुए उस मन्दिर-प्रासाद के अवशेष भारीमात्रा में उपलब्ध होते हैं। इन्हीं पाषाण-खंडों को जोड़कर यवन-शासकों ने अपने समय में किला बनवाया था, जिसे हाहाजाल का किला भी कहते हैं[४]। इसके द्वारा निर्मित फाटक का ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान है, प्राचीन पाषाण-खण्डों को एकत्र करके चुना गया प्रतीत होता है[४]।'

---

१. स्कन्दपु० वैष्णवखण्ड, अयोध्या-माहात्म्य।
२. महाभारत, वनपर्व—९५।१।
३. देखिये—इसी पुस्तक का पुरातात्त्विक खण्ड।
४. श्रीरामशंकर महन्त हनु० गढ़ी से साक्षात्कार से ज्ञात।

पाण्डवों का यहाँ पर आगमन उनकी तुर्थयात्रा के प्रसंग में वर्णित है। अतः यहाँ यह कहना कठिन है कि वे तीर्थ-यात्रा प्रसंग में यहाँ आये अथवा अज्ञात वनवास के समय[1]।

संकर्षण बलराम व सूत-वध—

विभिन्न पुराणों से स्पष्ट है कि तीर्थ-यात्रा प्रसंग-वश बलराम जी नैमिष आये थे और उन्होंने यहाँ पर सूत का कुछ कारणों से वध कर दिया था। मार्कण्डेय-पुराणानुसार बलराम ने तीर्थयात्रा प्रारंभ करने से पूर्व मदिरा पान किया और मदमत्त देवाङ्गना-तुल्य पत्नी रेवती के साथ रैवतक उद्यान में पहुँचे। वहाँ उन्होंने रमणीक महावन देखा, जो कि नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से युक्त था। अनेक वृक्षों, लताओं, पुष्पों से सुशोभित था, निर्मल जलाशयों से पूर्ण था। इस प्रकार बलराम उस मनोरम वन को देखते हुए सुन्दरियों के साथ एक अनुपम लता-कुञ्ज में पहुँचे। वहाँ उन्होंने वेद-वेदाङ्गों में निष्णात कुशिक-वंश, भृगु-वंग, भरद्वाज-वंश और गौतम-वंश के लोगों को देखा, जिनके मध्य उच्चासन पर विराजमान हो सूत जी कथा सुना रहे थे। इसी समय ऋषियों तथा मुनियों की दृष्टि उस मदोन्मत्त बलराम पर पड़ी। लोगों ने तुरन्त खड़ा होकर उनका स्वागत किया; किन्तु सूत जी ने आसन न छोड़ा। इस पर क्रोध से आँखें तरेरते हुए बलराम ने सूत का वध कर दिया। बलराम के द्वारा किये गये इस घृणित कार्य को देखकर सभी मुनिगण वन से बाहर चले गये। उन सभी ऋषियों के बाहर चले जाने पर बलराम को घोर पश्चात्ताप हुआ और वे अपने को धिक्कारते हुए सरस्वती की प्रतिलोमा यात्रा करने के लिए चले गये[2]। मार्कण्डेय-पुराण की घटना रैवतक उद्यान में घटती है, जबकि स्कन्दपुराण व कल्कि-पुराण स्पष्टरूप से सूत-वध को नैमिष में हुआ बतलाते हैं। मार्कण्डेयपुराण का उपर्युक्त वर्णन स्कन्दपुराण से भिन्नता को लिये हुए है। मार्कण्डेयपुराण में तीर्थ-यात्रा प्रारम्भ के पूर्व बलराम को मदिरा पान करना दिखलाया है, जो कि धर्म-सम्मत प्रतीत नहीं होता। यहाँ पर बलराम के सूत-वध-सम्बन्धी घृणित कार्य को छिपाने के लिए उनका मदिरा से मदोन्मत्त होने के कारण पर विशेष बल दिया गया है।

बलराम ने इसी यात्रा-प्रसंग में वल्बल नामक राक्षस का भी वध किया था। आजकल कुछ विद्वान् 'वल्बल' का सम्बन्ध वर्तमान बिलग्राम से जोड़ते हैं कि वह इसी स्थान पर रहता था और उसके ही नाम से इस स्थान का नामकरण हुआ। बलराम ने उसका मार्ग में वध किया था[3]।

---

१. ततो देवर्षिसहिता सरितां गोमतीमनु।
दशाश्वमेधानाजह्ले जारुरथ्यान्सनिर्गलान्॥
(महाभारत, वनपर्व० २९१।७०)

२. मार्कण्डेयपुराण—६।३-३७।

३. कल्किपुराण।

दैत्यराज प्रह्लाद—

कौन-सा हिन्दूभक्त प्रह्लाद को कहानी को नहीं जानता ? असुर होते हुए भी वह भगवान् का अनन्य भक्त था। पिता हिरण्य-कश्यप की मृत्यु के बाद जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ, तब उसके मन में तीर्थ-यात्रा के लिए विचार पैदा हुआ[1]। उसने अपने कुलगुरु शुक्राचार्य को बुलाया और गुरु से श्रेष्ठ तीर्थ के विषय में पूछा। गुरु ने भी उसे बतलाया कि पृथ्वी पर एकमात्र नैमिष ही सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है और पाताल में चक्रतीर्थ श्रेष्ठ है तथा आकाश में पुष्करतीर्थ सर्वाधिक पावन है[2]। गुरु के इस वचन को सुनकर वह सेना-सहित नैमिष आया। यहाँ उसने देखा कि पुण्य-ह्रद में अपार जन-समूह स्नान कर रहा है। उसने भी समस्त परिजनों के साथ यहाँ चक्रतीर्थ में स्नान किया और पीतवस्त्रधारी अच्युत विष्णु का दर्शन कर देवदेव (देवदेवेश्वर) का दर्शन किया। इसके पश्चात् उसने वर्तमान गयावर ग्राम में स्थित गदाधरनाथ का दर्शन किया। इसी तीर्थ-यात्रा-प्रसंग में प्रह्लाद का नर और नारायण के साथ संग्राम भी हुआ था। कुछ लोग इस संग्राम को नैमिष में ही घटित हुआ बतलाते हैं। यद्यपि नर-नारायण की तपस्या का उल्लेख हिमालय पर प्राप्त होता है।

बाणासुर द्वारा नैमिष में शिव-लिङ्ग की स्थापना—

वर्तमान देवदेवेश्वर मन्दिर से आगे ऊपर की ओर गोमती के पवित्र तट पर ही भगवान् आदिदेव रुद्र का जल एक आवर्त है। इसके नीचे सुन्दर स्फटिक शिव-लिङ्ग स्थापित है। जनश्रुति है कि यहाँ पर रुद्रदेव की मूर्ति की स्थापना बाणासुर के द्वारा की गयी। तभी से यह 'रुद्रावर्त' नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान अरबापुर गाँव के निकट पड़ता है।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वारा गणपति की स्थापना—

यहाँ चक्रतीर्थ के पश्चिमी तट पर गणपति का एक छोटा सा मंदिर है, जहाँ से परिक्रमा की शुरुआत होती है। जनश्रुति है कि यह मन्दिर विक्रमादित्य के द्वारा बनवाया गया था। यद्यपि मन्दिर में गणपति की संगमरमर की मूर्ति अभिनव प्रतीत होती है। इसी मन्दिर में भगवान् शिव का लिङ्ग भी प्रतिष्ठापित है। वैसे तो मंदिर अत्यधिक प्राचीन लगता है। सम्भव है कि इस मन्दिर का निर्माण पूर्व में चन्द्रगुप्त द्वारा करवाया गया हो; किन्तु कालक्रमानुसार इस मन्दिर का बाद में जीर्णोद्धार हुआ। यहाँ आज भी इसे लोग विक्रमादित्य के मन्दिर के नाम से ही जानते हैं।

---

१. जनश्रुति एवं ललित कृष्ण गोस्वामी का मत।

२. पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्।
चक्रतीर्थस्तु महाबाहो पातालतले विदुः ॥ (वामनपुराण)

औरंगजेब द्वारा नैमिष को नष्ट-भ्रष्ट करना—

मुगलकालीन शासकों में औरंगजेब का नाम कट्टर हिन्दू-धर्म-विरोधी शासक के रूप में लिया जाता है। इसने अपने शासनकाल में अनेक हिन्दू-धर्मस्थलों को नष्ट-भ्रष्ट कर उस पर अपने धर्म-प्रतीकों को स्थापित कर दिया था। इसी समय वह दल-बल के सहित नैमिष भी आया था। यहाँ उसने अनेक प्राचीन मूर्तियों को अपनी तलवार से विच्छिन्न कर दिया था। कहते हैं कि वह यहाँ की मूर्तियों को ध्वस्त करते हुए देवदेवेश्वर के मन्दिर में पहुँचा। उसने देवेश्वर की मूर्ति को खडित करने के लिए ज्यों ही तलवार से चोट किया, उस शिवलिङ्ग से करोड़ों-करोड़ों बर्रे निकलकर उसकी सेना व उसको काटने लगीं। अन्ततः उसे भागते देर न लगी। समस्त सेना अपनी जान बचा-बचा भाग निकली। आज तक तलवार से खण्डित वह देवेश्वर का शिवलिङ्ग विद्यमान है, जो अतीत की घटना को जीवित रखे हुए है। यह शिवलिङ्ग भगवान् वायुदेव के द्वारा प्रतिष्ठापित है, अतएव यह वायुक्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है तथा अत्यधिक सिद्ध स्थान है।

अहिल्याबाई द्वारा चक्र का जीर्णोद्धार—

संवत् १८४७ में होल्कर की महारानी अहिल्याबाई ने नैमिषारण्य आकर चक्रतीर्थ का परिमार्जन कराया और उन्होंने यहीं किनारे पर एक धर्मशाला का निर्माण भी करवाया। चक्रतीर्थ के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में यह धर्मशाला बनी हुई है और यहाँ एक शिलालेख भी लगा हुआ है।

कुमुद बंदर—

यह राम की सेना का एक बन्दर था। इसने अपने पराक्रम और शौर्य से समस्त राक्षसी सेना को भयभीत कर दिया था। महान् बलशाली असुर अकम्पन के साथ कुमुद ने घोर युद्ध किया, जिससे सारी की सारी आसुरी-सेना नष्ट-भ्रष्ट होकर भागने लगी थी। वाल्मीकिरामायण के अनुसार यह कुमुद पहले गोमती के ही किनारे पर रम्यक् नामक पर्वत पर रहता था, जो संरोचन नामवाले अनेक छोटे-बड़े पर्वतों से युक्त था। वहीं पर यह बन्दर-समूहों का शासक था।

यः पुरा गोमतीतीरे रम्यं पर्वेति पर्वतम्।
नाम्ना संरोचनो नाम नाना नगयुतो गिरिः॥
तत्र राज्यं प्रशासत्येष कुमुदो नाम यूथपः।
योऽसौ शतसहस्राणि सहस्रं परिकर्षति।
यस्य बाला बहुव्यामा दीर्घलाङ्गूलमाश्रिताः[1]॥

---

१. वाल्मीकिरामा० युद्धकाण्ड, २६।२५-२७ व ५५वाँ अध्याय।

पद्मपुराण तथा गर्गसंहिता[1] में भी रैवतक-पर्वत का उल्लेख किया गया है, जो कि द्वारावती (द्वारका-पुरी) में स्पष्ट होता है। मार्कण्डेयपुराण के अनुसार बलराम जी अपनी पत्नी के सहित इस पर्वत के लता-कुञ्जों में विचरण कर रहे थे। अचानक उन्होंने एक मनोरम स्थान देखा, जहाँ पर सूत जी शौनकादिक ऋषियों को कथा सुना रहे थे। सूत द्वारा उठकर स्वागत न किए जाने पर बलराम क्रुद्ध हो उन्हें मार डाले। यहाँ मार्कण्डेयपुराण का आख्यान भ्रम में डाल देता है; क्योंकि सूत द्वारा शौनकादिकों को नैमिष में कथा सुनाई गयी थी और नैमिष में ही सूत का वध बलराम द्वारा किया गया था। ऐसा विभिन्न पौराणिक दृष्टान्तों से स्पष्ट है; परन्तु मार्कण्डेय-पुराण[2] का वर्णन इसे द्वारावती में सिद्ध कर देना चाहते हैं कि जो गोमती-कुण्ड कृष्ण के स्मरण मात्र से द्वारका में बना, धीरे-धीरे वही प्रख्यात हो गया। पौराणिक लोग उसे ही गोमती की संज्ञा से सम्बोधित करने लगे, जिनसे कुछ पौराणिक तथ्य बड़े ही भ्रामक प्रतीत होने लगे। वास्तविक गोमती ही नैमिष के भूभाग से ही प्रवाहित होती है। जिसको महाभारत, रामायण काव्य में वर्णित करते हैं। चूँकि रामायण का यह कथन है, अतएव यह स्पष्टरूप से गोमती तट पर ही रम्यक् पर्वत होना चाहिए।

इस नैमिष की पवित्र भूमि में एक नहीं अनेक राजाओं का आगमन हुआ होगा। चूँकि यह भूमि इतनी पवित्र थी कि लोगों को हठात् आकृष्ट करती थी। साक्ष्याभाव में हम १०वीं-११वीं शती से लेकर १८वीं शताव्दी तक के किसी विशेष राजा का उल्लेख नहीं कर सकते, इसका प्रमुख कारण यह है कि नैमिष कई शताब्दियों तक म्लेच्छों के चंगुल में पड़ा रहा[3]। इन म्लेच्छों ने इसको पनपने व प्रकाश में आने में बहुत बाधाएँ उत्पन्न कीं। इस नैमिष के चारों ओर जहाँ आज घने, मोटे वृक्ष, गुल्म व लताएँ खड़ी हैं, वे सभी किसी ध्वंस विशेष पर ही हैं। इससे लगता है कि यहाँ पर आबादी थी। स्वयं नैमिष के लोग 'लंगाह' नामक ऐसे म्लेच्छों का वर्णन करते हैं, जो कि सदाचार से हीन थे तथा हिन्दू-धर्म के कट्टर विरोधी थे। इन लंगाहों को मार-कर कुछ पास-पड़ोस के हिन्दू शासकों ने तीर्थ को पवित्र किया था। यहाँ तक लोगों का कथन है कि यहाँ किसी तीर्थ-पुरोहित का रुक पाना मुश्किल था। हिन्दुओं की ऐसी दुर्दशा थी कि ये म्लेच्छ इन तीर्थ-पुरोहितों, ब्राह्मणों से अपनी लंगोट तक छँटवाते थे, उन्हें नाना प्रकार से प्रताड़ित करते थे। लेकिन किसी ऐसे महान् सन्त पुरुष ने इन्हें ऐसा शाप दिया कि तुम सब लोगों का नैमिष से शीघ्र ही विनाश हो जायेगा। तुम लोग इस तीर्थ में ठहर नहीं सकोगे। परिणामस्वरूप आज भी इस नैमिष में केवल दो-एक परिवारों के अलावा कोई भी मुसलमान देखने को नहीं मिलता। वर्तमान औरंगाबाद, जो कि नैमिष से सात किलोमीटर पूर्व में स्थित है,

---

१. गर्गसंहिता, द्वारकाखण्ड।

२. मार्कण्डेयपुराण—७वाँ अध्याय।

३. जनश्रुति है कि पाण्डवों का किला बहुत समय तक मुसलमान शासकों का सैनिक अड्डा बना रहा। यहाँ हाहाजाल की फौज रहती थी।

के अन्तर्गत ही नैमिष पड़ता था। औरंगाबाद मुस्लिम-काल में ही एक मुसलमान शासक के हाथों चला आ रहा था, जिससे इसकी गति में अवरोध होना स्वाभाविक ही था। इन्हीं सब लोगों का यहाँ वर्चस्व था, इसलिए यह तीर्थ अन्य तीर्थों की अपेक्षा व्यापक प्रगति न कर सका। यही कारण है कि नैमिष के इतिहास का मध्यकाल शून्य-सा लगता है। यहाँ पर कोई भी अभिलेख आदि किसी राजा का प्राप्त नहीं होता। यदि कोई रहा भी होगा, तो वह इन धर्म-विध्वंसकों के द्वारा विनष्ट कर दिया गया होगा। आज भी नैमिष के इर्द-गिर्द के जंगलों की व्यापक भूमि किसी प्राचीन नगरीय सभ्यता को बोधित कराती है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि कोई भी अभिलेख आदि प्राप्त नहीं हुआ। यहाँ मिट्टी के बरतनों व मूर्तियों पर कुछ 'ब्राह्मी-लिपि' अवश्य प्राप्त होती है। सम्भव है कभी न कभी उत्खनन से यहाँ की पुरा-संस्कृति अवश्य ही उजागर होगी।

नैमिष-माहात्म्य से सम्बद्ध संस्कृत-भाषा में कुछ हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ मिलती अवश्य हैं, लेकिन कोई ३०० वर्ष से प्राचीन नहीं लगतीं। इनमें सामान्यरूप से ही नैमिष के माहात्म्य व तीर्थ-स्थलों का कुछ बोध कराया गया है। ये सब भी लगभग विभिन्न-पुराणों के संकलन से लगते हैं। यह माहात्म्य यहाँ के तीर्थ-पुरोहित लोग यात्रियों को सुनाया करते थे।

इन संस्कृत-पाण्डुलिपियों में एक प्रति अवश्य ही महत्त्वपूर्ण है। स्कन्द-पुराण के वैष्णव-खण्ड में इसका उल्लेख होना चाहिए था; किन्तु स्कन्दपुराण में यह माहात्म्य जुड़ न सका, अथवा किसी कारणवश अप्राप्त होने से अनूदित रहा, यह नैमिष का दुर्भाग्य कहा जा सकता है।

●

नैमिषारण्य के पवित्र तीर्थ-स्थल

चतुर्थ अध्याय

गोमती—

'गोमती' का नाम ऋग्वेद[1] तथा ब्राह्मण-ग्रन्थों[2] में मिलता है, अतएव इसे वैदिक-कालीन नदियों में माना जा सकता है। यद्यपि कुछ विद्वान् इसे उत्तर-प्रदेश की गोमती न मानकर पंजाब में स्थित सिन्धु की सहायक नदी बतलाते हैं, अथवा कांगड़ा जिले की 'गोमल' से इसकी तुलना करते हैं; किन्तु उनका यह तर्क मानना ठीक नहीं[3]। जहाँ तक पौराणिक काल की नदियों का सम्बन्ध है और जो वर्णन पौराणिक भूगोल से ज्ञात होता है, उसके आधार पर इसे स्पष्टरूप से उत्तर प्रदेश की गोमती ही मानना होगा, जो कि वर्तमान काल में लखनऊ, सुल्तानपुर, जौनपुर होते हुए गाजीपुर में गंगा में मिल जाती है। पुराणों में इस नदी का उद्भव हिमालय के पाद (हिमवत्पादनिःसृता)[4] से माना गया है। महाभारत स्पष्टरूप से गोमती के पवित्र तट पर नैमिषारण्य की स्थिति को अभिव्यक्त करता है[5]। इसी तरह से अन्य भी बहुत से प्रमाण हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि गोमती के तट पर नैमिष अवस्थित था[6]। इससे स्पष्ट है कि हम गोमती को उत्तर प्रदेश से बाहर कभी भी नहीं मान सकते। यद्यपि कहीं-कहीं पर इसका नाम 'गौतमी' भी प्राप्त हुआ है; फिर भी गोमती और वर्तमान काल की 'गौतमी' दोनों ही भिन्न हैं[7]। ब्रह्मपुराण[8] जिस गौतमी के माहात्म्य का वर्णन करता है, वह कदापि नैमिष की गोमती नहीं हो सकती।

स्कन्दपुराण के ब्रह्मखण्डान्तर्गत धर्मारण्य माहात्म्य के प्रसंग में गंगा आदि नदियों के साथ गोमती को पावन कहा गया है—

---

१. ऋग्वेद—१।८।८।
२. तैत्तिरीयब्राह्मण—५।४।५; तै० आ०—३।११।६ व ७।
३. Geo. of Ancient & Medival India—Page 50; by D. C. Sircar, Ed 1971.
४. बृहद्धर्मपुराण—६।१५, वाराहपु०—८५।१५-२० पद्मपु० आ० सं०, ९०।२३।
५. महाभारत, वनपर्व—२९१।७०।
६. वाल्मीकिरामा० उ० का० ९१।१५; आनन्दरामा०, यागकाण्ड ९।३१।३२।
७. पद्मपुराण—६।२७०।१३।
८. देखिये—ब्रह्मपुराण, गौतमी-माहात्म्य-वर्णन, प्रथम भाग।

गङ्गा च नर्मदा तापी यमुना च सरस्वती।
गण्डकी गोमती पूर्णा एता नद्यः सुपावनाः[1] ॥

इसी अध्याय में आगे गोमती के स्निग्ध-जल में मज्जन करने के माहात्म्य को स्पष्ट करते हुए लिखा गया है—

गोमती जलकल्लोलैर्मज्जयेत् कृष्णसन्निधौ।
चतुर्भुजो नरो भूत्वा वैकुण्ठे मोदते चिरम्[2] ॥

तात्पर्य यह कि कृष्ण की सन्निधि में गोमती की स्वच्छ जलराशि में स्नान करनेवाला मनुष्य चार भुजाओं वाला दिव्य मानव बनकर चिरकाल तक वैकुण्ठ में में निवास करता है। इसी पुराण के अवंतीखण्ड में भी गोमती के माहात्म्य को वतलाते हुए उल्लेख किया गया है कि 'न तो गोमती के समान कोई नदी है, और न तो कृष्ण के समान कोई देवता है।' 'नदी न गोमती तुल्या कृष्णतुल्या न देवता[3]।'

इसी पुराण में एक अन्य स्थान पर 'गोमती में स्नान करने वाला अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करता है तथा अपने कुल को पवित्र कर देता है, ऐसा कहा गया है[4]'। अग्निपुराण गोमती को सर्वसिद्धि-प्रदान करनेवाला कहता है–**'गोमती सर्वसिद्धिदा[5]'**। 'महाभारत' के शान्तिपर्व में गोमती के पावन मन-भावन निर्जन कूल पर पद्मनाभ नामक नाग का आवास कहा गया है[6]। यहीं पर 'धर्मारण्य' नामक मुनि नाग से 'मोक्ष-धर्म' लेने आये हुए थे। वाल्मीकिरामायण में गोमती के किनारे रम्यकूपर्वत पर रहनेवाले एक 'कुमुद' नामक बन्दर का उल्लेख किया गया है[7]।

गङ्गा-सहस्रनाम में **'गोमती गुह्यविद्यागौर्गोघ्नीगमनगामिनी'**[8] कहा गया है। देवी के १०८ पीठों में 'गोमती' नामक देवी का उल्लेख है, जो गोमन्त-पर्वत पर स्थित है। सुल्तानपुर जिले में 'धोतपाप'(धोपाप) नामक एक प्राचीन स्थान भी है, जहाँ स्नान करने से पाप धुल जाते हैं, ऐसा कहा जाता है। आज भी यह स्थान बहुत ही चर्चित व पुण्यप्रद माना जाता है। यह गोमती के तट पर ही स्थित है। डॉ० मिराशी महोदय नैमिष को इसीलिए सुल्तानपुर में मानने की भूल करते हैं। वस्तुतः गोमती नैमिषारण्य के कारण ही अतीव प्रसिद्ध है।

---

१. स्कन्दपु०—३।२।३१।३।
२ वही—३।२।३१।१५-१६।
३. स्कन्दपु०, अवन्तीखण्ड—१।६२।८-९।
४. पद्मपु० १।३२।३७-३८।
५. अग्निपुराण—१०९।११।
६ महाभारत, शान्तिपर्व।
७. वा० रामा०—युद्धका० २६ अ० व ५५ अध्याय।
८. पद्मपु०—५।१७।१९२; देवीभा०—७।३०।५५-५७।

गोमती और गोमती-कुण्ड—

स्कन्दपुराणान्तर्गत अवन्तीखंड के प्रथम भाग में गोमती के माहात्म्य को बतलाते हुए अवन्ती में गोमती-कुण्ड का कैसे निर्माण हुआ, इसका उल्लेख किया गया है—'एक बार की बात है कि नैमिषारण्य के ऋषियों को भगवान् वेदव्यास जी गोमती के माहात्म्य को बता रहे थे कि—'गोमती के समान न तो कोई नदी है और न ही कृष्ण के समान कोई देवता ही। गोमती में प्रातःकाल स्नान और संध्योपासन अतीव पुण्य-दायक है।'

'नदी न गोमतीतुल्या कृष्णतुल्या न देवता।
× × × ×
इति ते निश्चयं ज्ञात्वा ऋषयः शौनकादयः।
यत्र तत्र स्थिताः सर्वे प्रातःसन्ध्यामुपासितुम्॥
तत्रैव गोमतीतीरे चक्रुस्ते वै धृतव्रताः[1]।'

भगवान् व्यास द्वारा इस प्रकार के माहात्म्य को सुनकर शौनकादिक ऋषि यत्र-तत्र बैठकर गोमती के तट पर सन्ध्योपासना करने लगे। सान्दीपनि (कृष्ण के गुरु) भी वहीं पर आकर संन्ध्योपासना करने लगे। इस प्रकार की क्रिया करते हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। सांदीपनि अवन्तीपुरी में रहते थे। एक दिन भगवान् कृष्ण और बलराम दोनों ही प्रातःकाल गुरु के घर आये और वहाँ उन्हें न देखा[2]। गुरु-पत्नी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह गोमती मे सन्ध्योपासन के लिए गये हुए हैं। बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद जब वे लौटे, तो कृष्ण ने उनसे गोमती तक जाने का प्रयोजन पूछा। गुरु के द्वारा व्यास-कथित गोमती-माहात्म्य को बताये जाने पर, गुरु के कष्ट-निवारणार्थ भगवान् कृष्ण ने वहीं पर कुशस्थली में गोमती का स्मरण किया[3]।

इस प्रकार स्मरण करने मात्र से ही तत्काल कंथडेश्वर के उत्तर भाग में गोमती पाताल-तल को भेद कर सरस्वती के साथ हीं प्रवाहित हुई। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—ब्रह्मन्! यह सरिताम्बरा गोमती अब यहीं पर आ गयी है। आप यहीं पर स्नान-ध्यान तथा संध्योपासन इत्यादि कीजिए। अब यह गोमती यहाँ पर 'गोमती-कुण्ड' के नाम से जानी जायेगी। यह गोमती-कुण्ड समस्त प्रकार के पापों को नष्ट करनेवाला है। भाद्र मास की कृष्ण-पक्ष की अष्टमी में इस कुण्ड में स्नान करने से

---

१. स्कन्दपुराण-अवंती-खंड०—१।६२।८-९।
२. तस्यैव कामपूर्त्यर्थं विद्यार्थिनौ मम जनार्दनौ।
समायातौ सुकुमाराङ्गौ सततं ब्रह्मचारिणौ॥ (वही—१।६२।१२)
३. गोमत्याराधनं चक्रे कुशस्थल्यां द्विजोत्तम।
यत्र शिवेश्वरो देवो यज्ञकुण्डमनुत्तमम्॥ (वही—१।६२।२५)

मनुष्य सभी प्रकार के मनोरथों को प्राप्त करता है। शुक्ल-पक्ष की एकादशी के दिन स्नान करके मनुष्य गो-सहस्र-दान के फल को प्राप्त करता है।

गोमतीकुण्डमाख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्।
भाद्रमास्यसिताष्टम्यां कृष्णजन्मसमुद्भवम्॥
तत्र स्नात्वा नरो नित्यं रात्रौ जागरणं चरेत्।
गोमतो स्नानजात्पुण्यात् वासुदेवसमागमात्।
मनोरथफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः॥
तथा चैत्रासिते पक्षे यावच्चैकादशी भवेत्।
गोसहस्रफलं तेषां प्राप्यते नात्र संशयः[1]॥

जहाँ पर स्कन्दपुराण गोमती-कुण्ड का समुद्भव कृष्ण के ध्यान मात्र से बतलाता है, वहीं पर गर्ग-संहिता में इस कुण्ड का निर्माण भगवान् कृष्ण के नेत्र-बिन्दुओं से कहा गया है, जिसके दर्शनमात्र से ही ब्रह्महत्या का पाप छूट जाता है।

'तन्नेत्रबिन्दुसम्भूता गोमती सा महानदी।
यस्या दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या प्रमुच्यते[2]॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह 'गोमती-कुण्ड' 'गोमती' से भिन्न है, जिसको श्रीकृष्ण ने गुरु के निमित्त कुशस्थली में आराधना करके प्रवाहित किया था। उपर्युक्त वर्णन गोमती के माहात्म्य को ही स्पष्ट करता है; किन्तु बाद के कुछ पुराणों में उसे 'गोमती' के नाम से विख्यात होना वर्णित है।

कश्यप और साभ्रमती—

पद्मपुराण का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि एक बार महान् तपस्वी कश्यप प्रजापति विचरण करते हुए नैमिष आये। यहाँ के ऋषियों के साथ उनका विविध प्रकार से कथालाप हुआ। इसी वार्तालाप के बीच ऋषियों ने कश्यप जी से न्विेदन किया—हे भगवन्! हम लोगों के कल्याण के लिए आप गङ्गा को यहाँ पर लायें। यह श्रेष्ठा गङ्गा आप के ही नाम से जानी जायेगी। इस प्रकार ऋषियों के निवेदन को सुनकर वे अर्बुदारण्य में पहुँचे और वहाँ सरस्वती की सन्निधि में शिव की तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने उनसे वरदान माँगने के लिए कहा। तब कश्यप ने शिव से कहा—भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो हमें गङ्गा को प्रदान करें। कश्यप के इस प्रकार के वचन को सुनकर शिव ने अपनी जटा से गङ्गा को छोड़ा, जिसे लेकर कश्यप नैमिष चले आये। कश्यप के द्वारा लायी जाने के कारण वह 'काश्यपी' नाम से प्रख्यात हुई। पहले यही गङ्गा भगीरथ के द्वारा याचित हुई थी, दूसरी बार इसे कश्यप ने

---

१. स्कन्दपु०, अवंती० १।६२।२७।
२. गर्ग-संहिता, द्वारकाखण्ड—१०।७।

शिवाराधन करके प्राप्त किया। इस काश्यपी के माहात्म्य को बतलाते हुए भगवान् शंकर पार्वती से कह रहे हैं—

तीर्थं तु नैमिषं नाम चाऽऽज्ञया मम सर्वदा।
साभ्रमत्युदके देवि! निवसन्ति न संशयः॥

यह काश्यपी-गङ्गा ही कलियुग में साभ्रमती कहलायी। यह नैमिष में गंगा कहाँ है और कौन है? आज तक इसका कोई निश्चित पता नहीं है।

यद्यपि गङ्गा-सहस्रनाम में 'काश्यपी' नामक गंगा का नाम भी प्राप्त होता है। व्यास-गद्दी पर मनु-सतरूपा के तपस्या-स्थल के समीप कश्यप[1] का स्मृति-चिह्न आज भी बना है। यहाँ व्यासगङ्गा (जो अब विलुप्त हो चुकी है) के नाम से प्रसिद्ध गङ्गा सम्भवतः काश्यपी ही हो सकती है।

मार्कण्डेय मुनि द्वारा नैमिष में गङ्गा का अवतरण—

स्कन्दपुराण के तृतीय-खंड से विदित होता है कि शान्त, दान्त, महामुनि मार्कण्डेय नैमिषारण्य में आये हुए थे। उन्हें देखकर समस्त ऋषिगणों ने उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी स्तुति की। तदनन्तर उन लोगों ने निवेदन किया कि भगवन्! आपके द्वारा ही नैमिषारण्य में ब्रह्मा जी की पुत्री सरस्वती लायी गयीं और आपके ही द्वारा वहीं पर आकाश से गङ्गा का अवतरण किया गया, अतएव आप हम लोगों को उसके माहात्म्य को बतलाइये।

प्रणम्य स्तुतिभिर्भक्त्या मार्कण्डं मुनयोऽब्रुवन्।
भगवन्नैमिषारण्ये सत्रे द्वादशवार्षिके॥
त्वयाऽवतारिता ब्रह्मन् नदी या ब्रह्मणः सुता।
तथा कृतं च तत्रैव गङ्गावतरणं क्षितौ[2]॥

उपर्युक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि मार्कण्डेय मुनि के द्वारा ही नैमिष में सरस्वती और गङ्गा दोनों ही लायी गयीं थीं। पद्मपुराण गोमती में 'गङ्गोद्भेद' का वर्णन करता है—**'गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः[3]।'** इससे यहाँ पर गङ्गा का होना निश्चित होता है। इसके साथ ही साथ यहाँ पर 'काञ्चनाक्षी' नामक सरस्वती का भी उल्लेख मिलता है[4]। यह सरस्वती ऋषियों के यज्ञ के समय ही यहाँ पर लायी गयी थी।

---

१. एकस्मिन् दिवसे देवि गतोऽसौ नैमिषं प्रति।
तदा तैर्ऋषिभिः सार्धं कथां चक्रे स कश्यपः।
तदा द्विजवरै सम्यक् पृष्टोऽसौ कश्यपो मुनिः॥

२. स्कन्दपुराण—३।१।२५।६-८।

३. वही—५।११।६।

४. वामनपुराण—३७।२२-३०।

नैमिष-वासी इस गोमती को 'आदि गङ्गा गोमती' के नाम से कहा करते हैं। चूँकि नैमिष में ही गोमती में गङ्गोद्भेद है, अतएव नैमिषारण्य में गोमती 'सर्वश्रेष्ठ' और 'सर्वकामप्रदायिनी' है। प्रयाग में जो माहात्म्य संगम का है, वाराणसी में जो माहात्म्य गङ्गा का है, नैमिष में उतना ही माहात्म्य गोमती का है[१]। स्कन्दपुराण इसीलिए गोमती में प्रातःकाल स्नान पर बल देता है, जो कि पुण्यप्रद है[२]।

नैमिषारण्य और काञ्चनाक्षी सरस्वती—

ब्रह्मा की पुत्री सरस्वती, जो कि नदीरूप में विभिन्न सात स्थानों पर प्रवाहित होती हैं, की मर्यादा पुराणों में विशेषरूप से वर्णित है। यह नदी जिन-जिन पवित्र स्थानों पर प्रवाहित होती है, वह प्रदेश अतीव पुण्यप्रद माना जाता है। भारतवर्ष में मुख्यरूप से यह सात स्थानों पर प्रवाहित होती है, जिसके कारण इसे 'सप्त-सारस्वत' भी कहा जाता है। जैसे केदार में जो सरस्वती प्रवाहित होती है, वह 'सुवेणु' नाम से प्रख्यात है। इसी तरह गयाक्षेत्र में विशाला, कुरुक्षेत्र में 'मनोहरा', गङ्गाद्वार में 'विमलोदा', पुष्कर में 'सुप्रभा' और नैमिष में प्रवाहित होनेवाली सरस्वती का नाम है 'काञ्चनाक्षी।[३] मङ्कणक मुनि जिस नदी को लाये, वह "मानस-ह्रदा" के नाम से विदित है। इन सातों पवित्र नदियों द्वारा ही 'सप्त-सारस्वत' का निर्माण हुआ।

वामनपुराण के अनुसार नैमिषारण्य में ऋषियों के ध्यानमात्र से काञ्चनाक्षी का समुद्भव हुआ[४]। पद्मपुराणानुसार[५] मार्कण्डेय मुनि के द्वारा द्वादश सत्रयाग में सरस्वती और गङ्गा आकाश से लायीं गयीं। स्कन्दपुराण अवन्ती-खण्ड से ज्ञात होता है कि कुशस्थली द्वारिकापुरी में गोमती के साथ-साथ सरस्वती भी कृष्ण के ध्यान-मात्र से उद्भूत हुई। 'पातालतलमाभेद्य सरस्वत्या सहागता[६]।'

कहीं-कहीं भूलवश 'काञ्चनाक्षी' का 'कातराक्षी' भी प्रयोग मिलता है, जो सर्वथा पाठभ्रष्ट-सा प्रतीत होता है। वीरमित्रोदयकार ने महाभारत के निम्न श्लोक को उद्धृत करते हुए नैमिष में काञ्चनाक्षी सरस्वती का वर्णन किया है—

---

१. स्कन्दपु०, अवन्ती०—१।६२।८।

२. गोमतीस्नानं कर्तव्यं प्रातःकाले सदा बुधैः।
तत्रैवोपासनं पुण्यं संन्ध्याया इति निश्चितम्॥ (स्कन्दपु० अवन्तीख०—१।६२।२३)

३. सुप्रभा काञ्चनाक्षी च सुवेणुविमलोदका।
मनोहरा चौघवती विशाला च सरस्वती॥ (वामनपु० सरोमाहा० ३६।५४)

४. वही—३७।२३-३०।

५. पद्मपुराण—३।३।२५।६-८।

६. स्कन्दपु० अवन्ती—१।६२।२४।

नैमिषे मुनयो राजन्! समागम्य समासते।
तत्र चित्राः कथा ह्यासन् वेदं प्रति जनेश्वरः॥
यत्र ते मुनयो ह्यासन् नाना स्वाध्याय वंदितः।
ते समागम्य मुनयः सामरूपैः सरस्वती॥
सा तु ध्याता महाराज ऋषिभिः सत्रयाजिभिः।
समागतानां राजेन्द्र! सहायार्थं महात्मनाम्॥
आजगाम महाभागा तत्र पुण्या सरस्वती।
नैमिषे काञ्चनाक्षी तु मुनीनां सत्रयाजिनाम्॥
आगता सरितां श्रेष्ठा तत्र भारतपूजिता[1]॥

महाभारत में अन्यत्र एक स्थान पर नैमिषारण्य की सरस्वती के पावनत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

सरस्वतीं समासाद्य तर्पयेत्पितृदेवताः।
सारस्वतेषु लोकेषु मोदते नात्र संशयः[2]॥

वामनपुराण में इसे एक स्थान पर 'धर्म की माता' कहकर सम्बोधित किया गया है[3]। इसी नदी में स्नान करने के लिए एक बार चित्राङ्गदा आयी थी, जहाँ उसका राजा सुरथ के साथ प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हुआ था[4]।

स्कन्दपुराण 'सुवर्णाक्षी' (सुवर्णाक्षा) नामक सरस्वती का वर्णन करता है। सम्भवतः यह 'काञ्चनाक्षी' ही हो सकती है[5]। इसी प्रकार से 'मिलिन्दपण्ह' में सरस्वती को 'हैमवती'[6] नाम से कहा गया है। सम्भवतः यह 'नैमिषारण्य' की काञ्चनाक्षी ही है, जो क्वचिद् 'दृश्या' क्वचिद् 'अदृश्या' विशेषण से सम्बोधित की गयी है। जैसा कि पद्मपुराण में वर्णित है—

उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये।
दृश्यादृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती (१।१।६७)

---

१. वीरमित्रोदय, तीर्थप्रकाश—पृ० ४८।

२. महाभारत—८२।५९।

३. साऽहमभ्यागता भद्रे स्नातुं पुण्यां सरस्वतीम्।
नैमिषे काञ्चनाक्षीं तु विख्यातां धर्ममातरम्। (वामनपु०—३९।३४)।

४. वामनपुराण—३७।३९-४०।

५. स्कन्दपुराण, धर्मारण्य-माहात्म्य—३।३।३१।७३।

६. पतंजलिकालीन भारत—पृ० ८४।

चक्र तीर्थ—

नैमिषारण्य का पवित्रतम तीर्थ चक्रतीर्थ माना जाता है। यह भगवान् प्रजापति के चक्र की नेमि से निर्मित है। चूँकि इस महान् अरण्य में चक्र की 'नेमि' विशीर्ण हुई थी, इस कारण से इस अरण्य का नाम नैमिषारण्य पड़ा।

उक्त्वा मनोमयं चक्रं संसृष्ट्वा तानुवाच ह।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत माचिरम्॥
यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशः पुरुषर्षभाः।
ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन्॥
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत।
नैमिषं तत्स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्[1]॥

महाभारत के अनुसार जहाँ पर पूर्वकाल में धर्मचक्र प्रवर्तित हुआ था, उस कारण इसका नाम नैमिष पड़ा[2]।

जिस स्थान पर चक्र की नेमि ने पृथ्वी का भेदन किया, उस स्थान पर एक कुण्ड-सा बन गया, जिसमें से सतत जल की धारा प्रवाहित हो चली, वही चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात हुआ। इस चक्रतीर्थ का अपना विशिष्ट माहात्म्य है। महाभारत में मार्कण्डेय युधिष्ठिर से कह रहे हैं कि 'नैमिषारण्य' में स्थित चक्रतीर्थ में स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है तथा ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है—

'नैमिषे चक्रतीर्थे तु स्नात्वा भरतसत्तम।
सर्वव्याधिनिनिर्मुक्ता ब्रह्मलोके महीयते॥

इसी प्रकार से शक्तियामल नामक तन्त्र में भी इसकी विशेषता वर्णित है—

संयुक्ता सोमवारेण अमावस्या भवेद्यदि।
चक्रतीर्थे नरः स्नात्वा सिद्धि विन्दति तत्क्षणात्॥

नैमिषारण्य माहात्म्य में पं० राधाकृष्ण ने निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है, जिसका अभिप्राय है कि चक्रतीर्थ महान् पुण्यशाली और समस्त पापों का शमन करने-वाला है। साथ ही साथ वह सबके स्वामी के रूप में पृथ्वी के मध्य-भाग में स्थित है।

चक्रतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
वर्तते मध्यभागे तु पृथिव्याः सर्वनाथकम्[3]॥

---

१. कूर्मपुराण—२।४१।१-१५।
२. महाभारत, शान्तिपर्व—३४३।२।
३. नैमि० माहात्म्य—पृ० १५, सन् १९३६।

कालिकापुराण के एक श्लोक के द्वारा देवी के नैमिष में होने की पुष्टि होती है, जिसमें कहा गया है कि हे देवि ! तुम नैमिष में देखी जाती हो तथा कुरुक्षेत्र में भी देखी जाती हो। यह सारा का सारा विश्व माँ तुमसे व्याप्त है।

'नैमिषे दृश्यते देवि ! चुरुक्षेत्रे च दृश्यते।
त्वयाक्रान्ता जगत्सर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥'

पुराणों का अध्ययन करने से पता चलता है कि विभिन्न पवित्र स्थानों पर चक्रतीर्थ का वर्णन है और यह किसी तीर्थविशेष के पुण्य-स्थान के रूप में वर्णित है। जैसे ब्रह्मपुराण में गौतमी माहात्म्य के वर्णन-प्रसङ्ग में चक्रतीर्थ का वर्णन मिलता है[1]। इसी तरह स्कन्दपुराण के अवन्ती-खण्ड में भी चक्रतीर्थ का वर्णन मिलता है। यह चक्रतीर्थ नैमिष का न होकर तत्तत्स्थानों पर चक्र की कल्पना है[2]। अभी हाल में ही 'नवभारत टाइम्स' में एक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसमें इसे 'उत्स्रुत-कूप' के रूप में उदाहृत किया गया था[3]।

लिङ्गधारिणी ललिता —

पुराणों ने नैमिष में लिङ्गधारिणी नामक देवी का उल्लेख किया है। यथा—

'वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी।
प्रयागे ललिता देवी कामुका गन्धमादने[4] ॥'

१०८ देवी-पीठों में नैमिष में भी देवी-पीठ का वर्णन मिलता है। देवीभागवत का कथन है कि दक्षसुता के द्वारा अपने पिता के अपमान से अपमानित हो जाने पर सती ने जब अपने प्राणों की आहुति दे दी, तब भगवान् शंकर सती के वियोग से संतप्त हो उठे और उन्होंने अपने गणों के द्वारा दक्ष के यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और सती के शव को लेकर विक्षिप्त हो इधर-उधर विचरण करने लगे। इस तरह से शंकर को उनके संहार-कार्य से विरत न होते हुए देखकर विष्णु ने अपने शार्ङ्गधनुष से सती के शव के १०८ भाग कर दिये। इसी शव के अनेक अंश जिन-जिन स्थानों पर गिरे, वहाँ-वहाँ पर देवी के पीठ बन गये। नैमिष में भी शव का एक अंश गिरा, जिससे यहाँ भी देवीपीठ बना। इसे तन्त्रग्रन्थों में उड्डीयन-पीठ के नाम से कहा गया है, जिसका प्रादुर्भाव 'कृतयुग' में हुआ था। कहीं-कहीं इस पीठ को जालंधर में कहा गया है। 'उड्डीयनस्य पीठस्य प्रादुर्भावः कृते युगे।'

---

१. ब्रह्मपुराण० अध्याय—८५। (गौतमी-माहा०)।
२. स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड; वैष्णवखण्ड, वेंकटाचल-माहा० २।२३।५२; अयोध्या-मा०—८।६।११५।
३. नवभारत टाइम्स, नव० २५, ८५।
४. मत्स्यपुराण० १३।२६-२७; देवीभागवत—७।३०।५५-५७।

एक बात बड़ी ही ध्यान योग्य है कि पुराणों में तो नैमिष में 'लिङ्गधारिणी' नामक देवी का उल्लेख मिलता है, तो कब से यह 'ललितापीठ' के नाम से जाना जाने लगा? जब कि प्रयाग में 'ललिता देवी' का उल्लेख मिलता है। वस्तुत: हम देखते हैं कि पुराणों में जो तत्तत्स्थानों पर एक विशेष नाम से पीठ का उल्लेख है, वर्तमान समय में उनके अधिकांश नामों में परिवर्तन हो चुके हैं। इसकी समीक्षा विज्ञ जिज्ञासुओं को करनी चाहिए। हम कहीं-कही पुराणों में देखते हैं कि नैमिषारण्य की कल्पना कहीं तो प्रयाग में (प्रयागे नैमिषारण्ये), कहीं गया में, तो कहीं पुष्कर में कर ली गयी है। इससे भौगोलिक स्थानों का निर्धारण करना कठिन हो गया है। नैमिष में शक्तियामल नामक एक छोटा तन्त्रग्रन्थ मिला है। उसमें एक स्थान पर इसे 'ललिता कान्ता' कहा गया है। 'स्तोत्र-वल्लरी' के रचनाकार 'पद्मश्री' पं० रघुनाथ शर्मा ने तो 'सन्ततिस्तव' में गङ्गा-यमुना के सङ्गम-स्थल पर स्थित देवी को 'लिङ्गधारिणि ललिता' नाम से सम्बोधित करते हुए प्रार्थना की है—

अयि लिङ्गविधारिणिके ललिते सितनीलसरिद्वरसंगमगे।
अयि नैमिषकाननगे भवती तनुतां प्रसुतं गिरिराजसुते[1]॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई ऐसा समय अवश्य आया होगा, जबकि लिङ्गधारिणी ने ललिता का नाम ग्रहण किया होगा। वर्तमान ललिता देवी मन्दिर से सटा हुआ पूर्व की ओर एक छोटा सा प्राचीन मन्दिर है, जो कि पुराना ललिता देवी का मन्दिर बताया जाता है। इसमें भगवान् शंकर और पार्वती के परस्पर प्रेमभाव को अभिव्यक्त करते हुए लाल बलुआ पत्थर की मूर्ति है, जिसमें शिव की बायीं जाँघ पर माता पार्वती को बैठा हुआ चित्रित किया गया है। शिव अपने बायें हाथ को तथा पार्वती दाहिने हाथ को परस्पर कंधों पर रखी हैं। दोनों ही प्रेमभाव मुद्रा में हैं। इसी पाषाणमूर्ति में ही चारों ओर यक्ष-यक्षिणियों तथा अन्यान्य देवी-देवताओं की छोटी-छोटी प्रतिमाएँ बनी हैं[2]। इन्हें कुछ लोग शान्ता, सुमङ्गला के नाम से भी पुकारते हैं। कुछ भी हो यह ललिता-पीठ बड़ा ही सिद्ध-स्थान है, जहाँ पर भक्तों की अपार भीड़ प्रतिदिन लगी रहती है। जिस व्यक्ति की जैसी कामना होती है, निश्चय ही वह अपने कामानानुरूप फल को प्राप्त करता है।

मनु-सतरूपा की तपःस्थली—

सृष्टि के आरम्भ में मनु और सतरूपा ने पुत्रप्राप्ति की कामना से नैमिषारण्य में गोमती नदी के किनारे पर घोर तपस्या की थी, जिसका पद्मपुराण में इस प्रकार से वर्णन मिलता है—

---

१. स्तोत्रवल्लरी, पं० रघुनाथ शर्मा विरचित।

२. इसी के समान ही एक मूर्ति सूतगद्दी पर है। इससे भी प्राचीन हनुमान् गढ़ी पर है।

स्वायंभुवो मनुः पूर्वं द्वादशार्णमहामनुम् ।
जजाप गोमती तीरे नैमिषे विमले शुभे ॥

इसी की पुष्टि करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी रामचरितमानस में लिखा है—

'स्वायंभू मनु अरु सतरूपा । जिनते भइ नर सृष्टि अनूपा ॥
पहुँचे जाई धेनुमति तीरा । हरषि नहाने निर्मल नीरा ॥

गोस्वामी जी के अनुसार मनु के साथ सतरूपा भी तपस्या करने आयीं थीं । दोनों ने सर्वप्रथम गोमती के पावनजल में स्नान किया । तदनन्तर उसी के बायें तट पर तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया । इन लोगों का विश्वास था कि यह 'हरिक्षेत्र' है, पावन है और सिद्धिदायक है । इनके घोर तप को देखकर निर्गुण, निराकार परब्रह्म परमात्मा विष्णु प्रसन्न हो इनके पास आये और वरदान माँगने के लिए कहा । भगवान् विष्णु के वचन को सुनकर इन लोगों ने उन्हीं के समान पुत्र की कामना की । इस पर विष्णु ने पुत्ररूप में मिलने का वरदान दिया । पद्मपुराणानुसार यहीं पर भगवान् विष्णु ने तीन जन्मों तक लगातार पुत्ररूप में जन्म लेना स्वीकार किया था, जो कि त्रेतायुग में दशरथ के यहाँ राम के रूप में, द्वापर में कृष्ण के रूप में और तदनन्तर कलि के रूप में उत्पन्न होने का वरदान दिया ।

यह स्थल व्यासगद्दी से सटा हुआ पूर्व की ओर स्थित है, जहाँ मनु और सतरूपा की दो स्मृति शिलाएँ बनी हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों के ही चरण चिह्न हैं । वस्तुतः यह स्थान तपोमय है । जहाँ तप का जादू सद्यः शरीर पर प्रभाव डालता है ।

देवदेवेश्वर (देवदेव, देवेश)—

यह स्थान नैमिष आबादी से डेढ़ किमी० पश्चिम की ओर गोमती के तट पर विद्यमान है । शिवपुराण की वायवीयसंहिता में इसका विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है[1] । इस पुराण के अनुसार यह शिवलिङ्ग वायुदेव के द्वारा स्थापित किया गया है । यहाँ पर ही ऋषियों के तपस्योपरान्त भगवान् वायुदेव आये थे और उन्होंने ऋषियों को शिव की मर्यादा और पाशुपत ज्ञान को बताया था । इसीलिए यह 'वायु-क्षेत्र' भी कहा जाता है । वामनपुराण के अनुसार प्रह्लाद ने देवदेवेश्वर (देवदेव) की विधिवत् पूजा की थी । कूर्मपुराण के अनुसार इसी स्थान पर षट्कुलीयों ने मिलकर महेश्वर देवेश का दर्शन पाने के लिए सत्र किया था—

देवदेवं तथेशानं सम्पूज्य विधिना ततः ।
गयायां गोपतिं द्रष्टुं जगाम स महासुरः[2] ॥

× × × ×

१. शिवमहापु० पूर्वभाग—४।८ ।
२. वामनपुराण—५७।४ ।

तथा—

इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः।
सत्रेणाराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम्[1] ॥

वस्तुतः यह स्थान शैव, वैष्णव व शाक्त तीनों ही है; जिसमें शैवप्रधान अधिक है। महाभारत के एक प्रसंग से विदित होता है कि यहाँ भगवान् देवदेवेश्वर की कृपा से एक मृत बालक मृतसंजीवनी से पुनः जीवित हो गया था। समस्त शिव-स्थानों में देवदेवेश्वर का प्रधान स्थान है। यहाँ पर 'रामेश्वर' का भी प्राचीन मन्दिर है, जिसका शिवलिङ्ग बड़ा ही आकर्षक है। आज भी यह स्थान बड़ा ही हृदयाकर्षक है।

हत्याहरण—

यह प्रभास अथवा भास्कर क्षेत्र के नाम से भी जाना जाता है। यह स्थान हरदोई जनपद के कोथावाँ कस्बे से ५ किमी० पूर्व की ओर है। यहाँ पर एक प्राचीन कुण्ड बना है, जिसमें स्नान करने से हत्याएँ छूट जाती हैं। शिवमहापुराण में इस तीर्थ की मर्यादा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि—**'हत्याहरणतीर्थं तु शिवलिङ्गमघापहम्**[2]**'**।

ऐसी श्रुति है कि रावण के वध से भगवान् राम को ब्राह्मण-हत्या का पाप लग गया था। उससे मुक्ति पाने के लिए उन्हें इस स्थान पर आना पड़ा तथा यहीं पर उनकी ब्रह्म-हत्या छूटी थी। स्कन्दपुराण में वर्णित है कि वे धर्मारण्य में आये और आकर वशिष्ठ जी के कथनानुसार यज्ञादिक किया तथा ब्रह्म-हत्या के पाप से विमोचन हुआ[3]। यहाँ प्रत्येक रविवार को मेला लगता है। आज भी जिन्हें हत्या का पाप लगता है, वे इस तीर्थ में स्नान करके ब्रह्म-हत्या के पाप से मुक्त होते हैं।

मिश्रित-तीर्थ—

दानियों की अमर कहानी को स्मरण दिलाता हुआ दधीचि का परम पावन स्थान मिश्रित आज भी नैमिष की गरिमा को बढ़ा रहा है। यह वही स्थान है जहाँ इन्द्र आदि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर महान् तपस्वी दधीचि ने अपना अस्थि-दान किया था। वृत्रासुर के अत्याचार से सभी देवता घबड़ा गये थे। ये सभी अपने पूर्व धरोहर अस्त्रों को लेने आये। उस समय तक महामुनि उन्हें मन्त्राभिषिक्त करके पी चुके थे। देवताओं के प्रार्थना करने पर उन्होंने अपनी अस्थि को देने का वचन दिया। इससे पूर्व उन्होंने समस्त तीर्थों में स्नान करने की इच्छा प्रकट की। इस पर इन्द्र ने समस्त तीर्थों का जल मँगवाकर एक तीर्थविशेष में छोड़ा तथा पृथ्वी के सारे तीर्थों को

---

१. कूर्मपुराण—२।४१।११-१४।
२. शिवमहापु० कोटिरुद्रसं० ११।१६।
३. देखें—स्कन्दपुराण, धर्माख्य—आख्यान।

भी इसी ८४ कोश के अन्दर स्थापित किया, जिससे महामुनि आसानी से तीर्थाटन करके मिश्रित तीर्थ में स्नान करके गउओं के द्वारा अपना शरीर चटवाकर परहित में अस्थि-पंजर को दे सकें। इसी का विश्वकर्मा ने 'वज्र' बनाया, जिसके द्वारा वृत्रासुर का वध हुआ। चूँकि समस्त तीर्थों का जल एक ही स्थान पर लाकर मिलाया गया था, इसी से इसका नाम मिश्रित-तीर्थ पड़ा[१]।

वामनपुराण में मिश्रित-तीर्थ की मर्यादा का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना।
व्यासेन मुनिशार्दूल दधीच्यर्थं महात्मना॥
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रिके स्नाति यो नरः[२]॥

इसी प्रकार महाभारत[३] में भी इसका माहात्म्य वर्णित है। वामनपुराण के अनुसार ही पद्मपुराण में भी ऐसा ही वर्णन आया है।

ततो गच्छेत् धर्मज्ञ मिश्रकं लोकविश्रुतम्।
तत्र तीर्थानि राजेन्द्र मिश्रितानि महात्मना॥
व्यासेन नृपशार्दूल द्विजार्थमिति नः श्रुतम्।
सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रिके स्नाति यो नरः[४]॥

शिवपुराण के अनुसार 'मिश्रिततीर्थ' में दधीचि मुनि के द्वारा प्रतिष्ठापित 'दाधीच शिवलिङ्ग' है। यहाँ 'मिश्रर्षि' का अपभ्रंश 'मिसरिख' हो गया प्रतीत होता है—

दाधीचं शिवलिङ्गं तु मिश्रर्षिवरतीर्थके।
दधीचिना मुनीशेन सुप्रीत्या च प्रतिष्ठितम्॥
तत्र गत्वा च तत्तीर्थे स्नात्वा च विधानतः।
शिवलिङ्गसमर्चेद्वै दाधीचेश्वरमादरात्॥

यह मिश्रित तीर्थ नैमिषारण्य के समस्त तीर्थों में अपनी मर्यादा रखता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में इसका नाम 'मिश्रिकावण' कहा गया है। कुछ पुराण स्थल इसे कुरुक्षेत्र में इंगित फाल्गुन मास में होली परिक्रमा कहते हैं। यहाँ विशाल मेला लगता है तथा ८४ कोश की परिक्रमा चलती है।

नैमिष के प्राचीन तीर्थ-स्थल—

गङ्गोद्भेद—'गंगोद्भेद' का नैमिष में अतीव महत्त्व है। 'गंगोद्भेद' का अभि-

---

१. ब्रह्मपु०।
२. वामनपुराण—१५।५२-५३।
३. महाभारत—३।८।७६-७७।
४. पद्मपु०—३।१२।९१-९२; ९।२६।८५-८६।

प्राय है गंगा का अपने आप में पृथ्वी को फाड़कर प्रवाहित होना। महाभारत व वामनपुराण में **'गंगोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः'** कहकर अतीव महत्त्व दर्शाया गया है। यही कारण है कि नैमिषारण्य में स्थित 'गोमती' का अन्यत्र स्थित गोमती से अधिक महत्त्व है। यहाँ प्रायः देखा जाता है कि गोमती के बाएँ तट पर (विष्णवावर्त को छोड़कर) अधिकांश गंगोद्भेद जीवित अवस्था में अनादिकाल से ही चले आ रहे हैं। इनकी अलौकिक गतिविधि को देखकर ही धर्मप्राण जनता ने इन्हें नमन किया एवं इसकी रक्षा के लिए भी समय-समय पर योगदान भी किया। पद्म-पुराण में एक स्थान पर नैमिष में कश्यप के द्वारा लायी गयी गंगा की चर्चा है, जो कि 'काश्यपी' नाम से विख्यात हुई। बहुत सम्भव है कि वह 'गंगा' 'गंगोद्भेद' के रूप में ही नैमिष में तपस्वियों के यज्ञ को पूर्ण एवं पवित्र बनाने के लिए उद्भूत हुई हों। इसका स्वतंत्ररूप से हम वर्णन भी कर चुके हैं।

हस्तलिखित माहात्म्य में भी गंगोद्भेद की महत्ता अधिक वर्णित है—

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नाने यत्फलमश्नुते।
तत्फलं लभते देवि गंगोद्भेदस्य मज्जनात्॥
प्रजानां भूपतिर्देवि यथा भवति मूर्धवान्।
तथा सुन्दरि तीर्थानां गंगोद्भेदं प्रशस्यते॥

अभिप्राय यह कि 'गंगोद्भेद' में मज्जन करने का महत्त्वपूर्ण फल है। वहीं के एक अन्य उद्धरण से इसकी प्रशंसा करते हुए बतलाया गया है कि जैसे ग्रहों में सूर्य का प्राधान्य होता है, वैसे ही तीर्थों में गङ्गोद्भेद का है। इस स्थान पर यज्ञ, दान आदि अक्षय फल को प्रदान करते हैं।

ब्रह्मावर्त की दोनों ही ओर गङ्गोद्भेद कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि यह अयोध्या स्थित गोमती से लेकर अरबापुर के बीच में स्थित विभिन्न उद्भेदों की ओर संकेत है। इसके बीच में कई महत्त्वपूर्ण उद्भेद हैं, जैसे रुद्रावर्त, विष्णवावर्त, आदि, जिनका अलग से महत्त्व वर्णित किया गया है। इस उद्भेद में चक्रतीर्थ भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विदित हो कि इन उद्भेदों का जल गोमती में जाकर मिलता है, जिससे उस स्थान की गोमती महत्त्वपूर्ण है।

कुरुक्षेत्र—जैसा कि विदित ही है कि पृथ्वी के सारे तीर्थ नैमिष में विद्यमान हैं। इनमें कुरुक्षेत्र का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। यह स्थान वर्तमान समय में गोमती के बायें तट पर नारदानन्द-आश्रम के पश्चिम-दक्षिणी घाट पर स्थित है। गोमती में बाँध बँध जाने से इस तीर्थ की स्थिति बिल्कुल समाप्ति पर है। सूर्यग्रहण पर इस तीर्थ में स्नान श्रेयस्कर कहा गया है। यहीं पर 'सरस्वती' की स्थिति भी कही गयी है, जो कि अब बाँध बन जाने से उसके अस्तित्व की प्रायः समाप्ति ही है। यहीं पर सरस्वती में स्थित 'गणेश' का भी वर्णन प्राप्त होता है; परन्तु यह वर्तमान समय में लुप्त हो गया है। यहाँ गणेश के पूजन के महत्त्व को बतलाया गया है।

उत्तर-वाहिनी गोमती—

जैसे काशी में गंगा को उत्तरवाहिनी होने के कारण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कहा गया है, वैसे ही नैमिष में गोमती के उत्तरवाहिनी स्थान को पवित्र माना गया है। यह स्थान वर्तमान में स्थित अजीतपुर गाँव के दक्षिण एवं 'हंस-हंसिनी' से पूर्वोत्तर बहने वाली गोमती का भाग है। यहाँ पर किया गया स्नान द्विगुणित फल को प्रदान करने वाला कहा गया है।

हँस-हँसिनी तीर्थ—

इस तीर्थ के माहात्म्य को हस्तलिखित पुस्तक में बड़े ही रोचकपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्राचीनकाल में काशिराज की सर्वंगुणोपेता, सर्वाङ्ग सुन्दरी मदालसा नाम की स्त्री थी। उनकी पुत्री का नाम गुणकेशी था, जो कि माता के अनुरूप गुणों वाली थी। गुणकेशी भी युवावस्था के अलौकिक सौन्दर्य से विकसित कुसुम वाली हो चुकी थी। संयोग की बात है कि एक दिन वह गुणकेशी राजमहल में ही माँ की शय्या पर लेट गयी। राजा काशिराज ने मदालसा के भ्रम में उस तरुणी कन्या का स्पर्श किया। हाथ के संस्पर्श से वह कन्या भय से व्याकुल हो बोल पड़ी—पिता जी ! मैं मदालसा नहीं; अपितु आप की कन्या गुणकेशी हूँ। पुत्री के इस वाक्य को सुनकर काशिराज का शिर नीचे झुक गया[1]। वह बारम्बार पश्चात्ताप करने लगे। उसने मन में सोचा कि काम-भावना से पीड़ित होकर मैंने जो यह दुष्ट कर्म कर डाला, वस्तुतः इसका प्रायश्चित्त क्या होना चाहिए? उन्होंने पण्डितों को बुलवाया और अपना प्रायश्चित्त पूछा। तब उन पण्डितों ने भिन्न-भिन्न रूप में प्रायश्चित्त को बताया। किन्तु उन प्रायश्चित्तों के करने के उपरान्त भी राजा का अनुताप नहीं गया।

एक दिन राजा के दरबार में सुतीक्ष्ण नामक ब्राह्मण आये। राजा ने अपनी व्यथा-कथा को उनसे कहा। तब सुतीक्ष्ण ने 'शङ्खलिखित' स्मृति के आधार पर राजा को बताया कि राजन् ! आप मेरी बात को सुनें। मैं स्मृति के आधार पर प्रायश्चित्त के विधान को बता रहा हूँ। हे राजन् ! जो व्यक्ति जिन-जिन शरीर के अङ्गों के द्वारा पाप कर्म करता है, वे उसी अनुरूप ही दण्ड के भागी होते हैं। चूँकि आप के दोनों हाथों के द्वारा पाप कर्म हुआ है, अतः इन हाथों को काले रङ्ग का कीजिए तथा इन हाथों में काले वर्ण के दो कौओं को बाँधें। नीला वस्त्रवाला होकर तथा काले वर्ण वाले घोड़े पर शीघ्र सवार होकर नैमिषारण्य-तीर्थ की परिक्रमा करें। वहाँ पर एक

---

१. मदालसा भ्रमाद्राजा संस्पर्शत् तरुणीं सुताम्।
नाहं मदालसा तात तव कन्यास्मि साम्प्रतम्॥
× × ×
येन-येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः।
तत्र तत्रैव दण्डः स्यात् तस्मिन् कर्मणि तस्य वै॥ (नैमि० माहा०)

ऐसा हंस तीर्थ होगा, जहाँ पर स्नान करने से तुम्हारा यह काले वर्ण का परिधान (वस्त्र) घोड़ा और हाथों में बँधा कौओं का जोड़ा श्वेतवर्ण हो जायेगा। तब तुम समझना कि मेरा पाप बिल्कुल समाप्त हो चुका है। राजा काशिराज ने वैसा ही किया। वे उसी के अनुरूप आये। उन्होंने भिन्न-भिन्न तीर्थों में स्नान किया; किन्तु उनका वह वर्ण श्वेत नहीं हुआ। जिस समय वे हंस-तीर्थ में पहुँचे तथा स्नान किया घोड़ा भी श्वेतवर्ण का हो गया। उनके परिधान तथा हाथों में बँधे कौए के जोड़े भी श्वेत रङ्ग के हो गये। हंस और हंसिनी के रूप में बन गये। तभी से इस क्षेत्र की मर्यादा **'हंस-हंसिनी'** के नाम से ख्यात हुई।

वस्तुतः यह क्षेत्र बड़ा ही दिव्य है। तीन ओर से गोमती के बीहड़ से यह घिरा हुआ है। यहाँ पर अद्यावधि विरले ही कोई साधक रुक पाया है। वर्तमान समय में एक बाबा जी यहाँ रहते हैं, जो कि बड़े संयमित एवं तपस्वी हैं। वे यहाँ विगत तीन वर्षों से रह रहे हैं। एक बार हम संस्थान के लोग वहाँ पहुँचे। हमने बाबा जी से क्षेत्र के माहात्म्य को तथा उनके अपने अनुभवों को पूछा। बाबा ने कहा—यह शिव और पार्वती का गुह्य-केलि स्थान है। यहाँ वे लोग नाना रूपों में विचरण करते रहते हैं। प्रायः यहाँ दो युग्मों की केलि हुआ करती है। कभी वह सर्प के रूप में, पक्षी के रूप में अथवा किसी प्राणी के रूप में। यही कारण है कि यहाँ वही व्यक्ति रुक पाया है, जिसने अपने को शिशुरूप में देखा है। इतना तो निश्चित है कि यह स्थान बड़ा पावन है। कुछ वर्षों पूर्व यहाँ पर सन्त नागा बाबा रह चुके थे। हंस-हंसिनी यह दोनों शिव और पार्वती के ही प्रतीक हैं।

गोवर्धन एवं मथुरा—

इन पवित्र तीर्थों की स्थिति हरदोई-सीतापुर को जाने वाली सड़क के पश्चिम गोमती के बायें तट से थोड़ा हट कर उत्तर की ओर कही गयी है। दोनों ही तीर्थ इतने उपेक्षित हो चुके हैं कि इनको भावी पीढ़ी पहचान ही नहीं पायेगी। अब इस स्थल पर खेती करनेवाले असरदारों ने कब्जा कर रखा है और इसका नामोनिशान जाता रहा। यद्यपि परिक्रमा करनेवाला इन स्थलों के दर्शन व परिक्रमा को जरूर करता था; किन्तु यह तीर्थ उपेक्षा के कारण अज्ञात हो रहे हैं।

सेतुबन्ध-रामेश्वर—

गोमती के पवित्र वाम कूल पर देवदेवेश्वर से थोड़ी ही दूरी पर स्थित एक विशाल पुरातन मन्दिर है। इस मन्दिर में रामेश्वर-कामेश्वर दो शिवलिङ्ग हैं तथा हनुमान् की मूर्ति भित्ति में निर्मित है। कहा जाता है कि भगवान् राम लंका से लौट कर अयोध्या आने के पश्चात् नैमिष में आये थे। इसी क्षेत्र में उनकी ब्रह्महत्या का विमोचन भी हुआ था। उन्होंने समस्त तीर्थों का भ्रमण करते हुए दर्शन भी किया था

पुरवासियों के साथ[१]। हस्तलिखित माहात्म्य से ज्ञात होता है कि यहाँ पर भगवान् राम ने मृन्मयी लंका को बनाकर बाणों से ध्वस्त किया था तथा बालुका का सेतु निर्मित कर रामेश्वर की स्थापना की थी[२]। यह स्थान बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर श्रद्धालु आकर भक्तिपूर्वक गोमती-जल व दुग्ध आदि चढ़ाते हैं। यह भी स्थान हरदोई-सीतापुर मार्ग के पश्चिम स्थित है।

शूल-भेद—

शूलभेद नामक तीर्थ स्थान विशेषरूप से देवदेवेश्वर के इर्द-गिर्द का भाग माना जाता है। इस शूलभेद के सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस स्थान पर शिव के त्रिशूल से पृथ्वी का भेदन हुआ था, जिसके कारण यह स्थान शूलभेद नाम से ख्यात हुआ[३]। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड के ४९ वें अध्याय में जो शूलभेद का वर्णन प्राप्त होता है, वह बहुत कुछ यहाँ के भौगोलिक एवं आध्यात्मिक विशेषताओं से प्रभावित-सा प्रतीत होता है। यथा—

'जललिङ्ग महापुण्यं चक्रतीर्थं नृपोत्तम।
शूलभेदे च देवेशः स्नानं कुर्याद् यथाविधि॥

आत्मानं मन्यते शुद्धं न किञ्चित् कल्मषं कृतम्।
तस्यैवोत्तरकाष्ठायां देवदेवो जगद्गुरुः॥

आत्मना देवदेवेशः शूलपाणिः प्रतिष्ठितः।
सर्वतीर्थेषु तत्तीर्थं सर्वदेवमयं परम्[४]॥

विदित हो कि यह देवदेवेश वर्तमान समय में 'देवदेवेश्वर' के नाम से विदित है। शिवमहापुराण की वायवीय-संहिता के अनुसार यह शिवलिङ्ग भगवान् वायुदेव के द्वारा प्रतिष्ठापित है। वायुपुराण में भी इस शिवलिङ्ग की मर्यादा वर्णित है। इसी तरह वामनपुराण में इस क्षेत्र को 'वायुक्षेत्र' भी कहा गया है। नैमिषारण्य माहात्म्य से भी इस क्षेत्र की महत्ता पर प्रकाश मिलता है। फाल्गुन मास की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को यहाँ पर स्नान-दान का महत्त्व कहा गया है। यहीं पर महाकालेश्वर शिव नन्दि-भृङ्गिगणों के साथ निवास करते हैं। पितरों को दिया गया तर्पण भी अक्षय पुण्य प्रदान करनेवाला होता है[५]।

---

१. स्कन्दपुराण, धर्मारण्य-खण्ड व देखिये 'नैमिषीयम्' सप्तम अंक—पौराणिक परिप्रेक्ष्य में सीतापुर, ले० डॉ० महेन्द्र वर्मा।

२. सेतुबन्धेश्वरं गच्छेत् गोमतीतटसन्निधौ।
सितया निर्मितं यत्र सेतुः रामेण पावनम्॥ (नैमि० माहा० ४०५.६)

३. नैमि० माहा०—४०७वाँ श्लोक।

४. स्कन्दपुराण—५, रेवाखण्ड ४९ अ०।

५. देखिये—नैमि० माहा० परिशिष्ट ४०७-४१२वाँ श्लोक।

चतुर्मुखी शिवलिङ्ग—

इतना तो निश्चित ही हो चुका है कि हमारे देश में अति प्राचीन काल से ही शिवलिङ्ग की पूजा-प्रतिष्ठा चली आ रही है। ईसा से कई हजार वर्षों पूर्व मोहन-जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने इसको और भी स्पष्ट कर दिया है कि यह संस्कृति शिवलिङ्गों का अर्चन प्रतीकरूप में किया करती थी। प्रारम्भ में शिवलिङ्ग इतने सुडौल नहीं हुआ करते थे। धीरे-धीरे मूर्तिकारों की कल्पनाओं ने इसमें और भी अधिक सुधार किया। कुछ समय पश्चात् जैसे कुषाण, शुङ्ग और गुप्तकाल तक आते-आते इन शिवलिङ्गों को आकर्षक बनाने के लिए उसे एक दिव्य आकृति से अलंकृत कर दिया जाता रहा। यही कारण है कि कहीं-कहीं एकमुखी शिवलिङ्ग देखने को मिलते हैं। कहीं-कहीं पर एक ही शिवलिङ्ग के चार पार्श्वों में चार मुखाकृतियाँ बना दी जाती थीं, ये मुखाकृति विभिन्न रूपों में होती थीं[1]। इसका जीता-जागता उदाहरण वर्तमान समय में गोमती के पवित्र दाहिने तट पर निर्जन अरण्य में देखा जा सकता है। यह शिवलिङ्ग हरदोई जनपद में गोमती के उस पार जमुनिहाँ (जम्बू-ग्राम) गाँव से एक फर्लाङ्ग उत्तर की ओर है। इसके इर्द-गिर्द में अति प्राचीन सभ्यता के अवशेष भी देखने को मिलते हैं। यह सभ्यता ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर चतुर्थ शताब्दी तक की प्रतीत होती है। यद्यपि लेखक को यहाँ काली ओपदार पाढ़रियाँ (वर्तन) भी मिले हैं, जिससे यह सभ्यता और भी पुरानी साबित होती है।

लाल बलुआ पत्थर पर उत्कीर्ण यह शिवलिङ्ग जमीन से लगभग ५ फुट ऊँचा है। चारों दिशाओं में चार मुखाकृतियाँ पत्थर को तराशकर बनायी गयी हैं। यही कारण है कि लोग इसे ब्रह्मा जी के लाट के नाम से अद्यावधि जानते चले आ रहे हैं।

इस शिवलिङ्ग के पश्चिमी तथा उत्तरी शिर कृपाण या तेज धारवाले हथियार से खण्डित किये गये हैं, जिनको लोग म्लेच्छों के द्वेष का प्रतिफल बतलाते हैं। इसी से सटे हुए दो महत्त्वपूर्ण उद्भेद भी हैं जिन्हें विष्णवावर्त के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान समय में यह तीर्थ अपनी उपेक्षा के लिए आँसू बहा रहा है। यहाँ पहुँचने के लिए पैदल के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं। इसकी सुरक्षा एवं संरक्षा हिन्दुओं का महान् कर्तव्य है।

विष्णवावर्त—

यह भी आवर्त (उद्भेद) बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह गोमती के दाहिने किनारे पर देवदेवेश्वर से २ किमी. आगे गोमती के पार में स्थित है। यह भी सतत प्रवहमान रहता है। यहाँ जल का रंग दूधिया जैसा तथा बालू भी बहुत

---

१. भारतीय कला—ले० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ २०८, प्रका० वर्ष १९७७।

श्वेत निकलता रहता है। परिक्रमा करनेवाला यहाँ अवश्य ही जाकर दर्शन व मार्जन करता है। कई भू-वैज्ञानिक इसके जल को लेजाकर शोधशाला में अध्ययन भी कर रहे हैं। इस प्राकृतिक चमत्कार को सब लोग नमस्कार करते हैं।

रुद्रावर्त—

यदि प्रकृति की चमत्कृति को देखना चाहें, तो अवश्य ही नैमिष के तीर्थों में आप को देखने को मिलेगी। उसमें भी इसका जीता-जागता उदाहरण है रुद्रावर्त तीर्थ। यह तीर्थ वर्तमान समय में अरबापुर ग्राम से दक्षिण-पश्चिम में लगभग १ किमी. दूरी पर गोमती के तट पर स्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए भी पैदल के अतिरिक्त कोई साधन नहीं। यह तीर्थ लोगों को अपने चमत्कार से चमत्कृत किये हुए है। यहाँ पर श्रद्धालु लोग सत्प्रयास करके पहुँच ही जाया करते हैं।

यहाँ पर भी अनादिकाल से ही नीचे से बालुकामय जलधारा प्रवाहित होती रहती है। इस बालुकामय जलधारा की विशेषता देखते ही बनती है। जगह-जगह शिवलिङ्गों के रूप में बननेवाली यह जलधारा निश्चय ही दर्शकों को मोहित करती रहती है। कभी-कभी प्रवाह कम और अधिक होता रहता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर बालुकामय शिवलिङ्ग बनता रहता है। इसकी विशेषता है कि यदि आप इस आवर्त में हाथ नीचे डालकर भी किसी बड़े फल या फूल को छोड़ें, तो वह ऊपर को फेंक उठता है और पानी की धार में बह जाता है; परन्तु उसमें शुद्ध अखण्डित बिल्वपत्र यदि **'नमः शिवाय'** कह कर छोड़ें, तो बम-बम निनाद के साथ वह बिल्वपत्र नीचे चला जाता है।

यह तीर्थ बहुत पहले पक्का बना था; किन्तु गोमती की चपेट में पड़कर टूट गया है। एक व्यक्ति ने हम लोगों को बताया कि इस तीर्थ में नीचे शिव का स्फटिक का शिवलिङ्ग है। बहुत समय पहले अरबापुर गाँव का एक गोड़िया ने, जो स्वर्गवासी हो चुका है, पैसा ढूँढ़ने के उद्देश्य से इस तीर्थ में से शिवलिङ्ग निकाला था, जिसको उसने पुनः उसी स्थान पर रख दिया था। इसका प्रवाह लोग इतना तेज बताते थे कि नीचे पैसा ढूँढ़नेवाले को तीन-चार लोग दाब कर नीचे करते थे, तब वह पहुँच कर पैसा ढूँढ़ पाता था।

सम्प्रति यह तीर्थ अपनी उपेक्षा कर आँसू बहा रहा है। नेताओं ने आश्वासन देकर भी इसका अद्यावधि न तो सुधार किया और न ही पहुँचने का वहाँ तक मार्ग ही बन सका।

ब्रह्मावर्त—

समय की गति के साथ तीर्थों का उत्थान-पतन जीर्ण और नवीनीकरण हुआ करता है। गोमती के बायें कूल पर व्यास-गद्दी के ठीक दक्षिण कभी अपनी सुन्दरता एवं निर्मलता के लिए मनोहारी यह तीर्थ आज गोमती की बाढ़ की विभीषिका से

मर्माहत होकर उसी की धारा में समा गया है। जो गोमती कभी इस तीर्थ से दक्षिण होकर बहती थी, आज वह उत्तर बढ़कर तीर्थ को अपने अन्दर समेट ली है। वैसे तो आज का आनेवाला व्यक्ति बता ही नहीं सकता है कि यहाँ भी कोई उत्तम ह्रद या तीर्थ रहा होगा।

हस्तलिखित नैमिषारण्य माहात्म्य से इस तीर्थ की विशेषता का ज्ञान होता है। वैसे तो ब्रह्मावर्त तीर्थ नाम से अन्यान्य पुराणों में भी तत्तत् तीर्थ-स्थलों पर ब्रह्मावर्त तीर्थ दिखलाये गये हैं, इनके अलग-अलग प्रकार से माहात्म्य भी वर्णित हैं[१]।

नैमिषारण्य में स्थित ब्रह्मावर्त का भी माहात्म्य सुन्दर कथा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर ब्रह्मा जी ने आकर स्वयं तपस्या की थी तथा यज्ञ भी सम्पादित किया था। यहाँ पर ब्रह्मा जी के कमण्डलु के प्रपात से ही गंगा जी प्रवाहित हो उठी थीं[२]। यह तीर्थ आज गोमती के गर्भ में समाया हुआ है।

डही—

वर्तमान समय में यह स्थान हरदोई जनपद में स्थित है। यहाँ से परिक्रमा होकर निकलती है तथा स्वतन्त्ररूप से यहाँ मेला भी लगता है। यह स्थान एक झाबर के सन्निकट है[३]। इस 'झाबर' को प्राचीन लोग 'सागर' नाम देते हैं। कहते हैं 'डही' शब्द दधीचि का बोधक है। यह डही दधीचि की तपःस्थली है। सर्वप्रथम काशी से आकर के उन्होंने यहीं पर तपस्या करना प्रारम्भ किया था।

दधीचि से इसका नाम बिगड़ते-बिगड़ते 'डही' पड़ गया है।

यज्ञवाराह-कूप (द्रौपदी कूप)—

नैमिषारण्य के विशिष्ट स्थलों में यज्ञवाराह-कूप का भी उल्लेख आता है। इसका उल्लेख पुराणों में भी हुआ है। पद्मपुराण जहाँ इसकी परिपुष्टि करता है, वहीं हस्तलिखित माहात्म्य में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्मावर्त-माहात्म्य में भी भगवान् विष्णु का यज्ञवाराह के रूप में प्रकट होकर ब्रह्मा के द्वारा प्रदत्त छवि का पान करना दिखाया गया है। आज इस कूप को लोग द्रौपदी-कूप के नाम से जानते हैं। जनश्रुति है कि पाण्डव लोग वनवास के समय नैमिषारण्य में आये थे, और बारह वर्ष के समय को व्यतीत किया था, उस अवधि में कभी सोमवती अमावस्या न पड़ी। लोगों ने शाप दिया कि कलियुग में तुम्हें बारम्बार पड़ना होगा, जिससे लोगों का उद्धार हो सकेगा। कहते हैं कि महावारुणी पर्व के अवसर पर कुएँ का जल दूधिया वर्ण का हो जाता है। ज्ञात हो कि यह कूप वर्तमान समय में हनुमान् गढ़ी,

---

१. स्कन्दपुराण, रेवाखण्ड—३१वाँ अध्याय।

२. देखिये परिशिष्ट नैमि० माहात्म्य।

३. 'नैमिषीयम्' सप्तम अंक 'पौराणिक परिप्रेक्ष्य में नैमिषारण्य' ले०—डॉ० महेन्द्र वर्मा 'मधुप'।

जिसे पाण्डव किला के नाम से जानते हैं, व माता आनन्दमयी आश्रम के दक्षिण भाग में स्थित है, पुरातात्त्विक दृष्टि से यह कुआँ पूर्वमध्यकालीन प्रतीत होता है।

यह टीला प्राचीन संस्कृति की बिरासत है। यहाँ पर ई० पू० में जो विकसित सभ्यता रही, उसका प्रमाण बहुत दूर तक फैले हुए क्षेत्र में ध्वंसावशेषों का मिलना है। अभी हाल के ही १९८४-८५ ई० में खोदे गये हनुमान् गढ़ी के ऊपर एक कुएँ के गड्ढे से जो आश्चर्यजनक सभ्यता का अवशेष दिखाई पड़ा, उससे मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। हनुमान् गढ़ी के टीले में आज भी साबूत दीवारें अपनी प्राचीन अवस्था में पड़ी हैं। इनकी मोटाई भी लगभग डेढ़ मीटर है। ईंटें भी बहुत लम्बी-चौड़ी प्राप्त होती हैं। इसके भीतर मिलनेवाला आखिरी सतह में कुम्हार का आवाँ भी आश्चर्य को पैदा करनेवाला ही प्रतीत हुआ। इस टीले की खुदाई से यहाँ की सभ्यता प्रकाश में आ सकती है।

सीतापुर की ऐतिहासिकता—

उत्तर प्रदेश के लखनऊ जनपद से उत्तर दिशा में सीतापुर जनपद स्थित है। यह जनपद अपनी ऐतिहासिकता को छिपाये हुए दीर्घकाल से ही विख्यात रहा है। इसी जनपद की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा पर स्थित पवित्रतम गोमती के कगार पर नैमिषारण्य तीर्थ स्थित है। इस क्षेत्र के आस-पास की कुछ दूरी का भाग बड़े ही महत्त्व का है।

प्रायः देखा जाता है कि कोई भी देश अथवा स्थान का नामकरण किसी न किसी घटना अथवा व्यक्तिविशेष के नाम से ही आख्यात होता है। कहने का अभिप्राय यह कि कोई भी देश, राज्य, स्थान, ग्राम व नगर किसी न किसी घटना व नाम से सम्बद्ध होते हैं। उसके पीछे कोई छोटा-मोटा इतिहास होता है। जैसा कि कहा जाता है कि लखनऊ लक्ष्मणपुर का अपभ्रंश है। इसे लक्ष्मण द्वारा बसाये जाने के कारण यह लाखनपुर, लक्ष्मणपुर लखनऊ आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ। सीतापुर के इतिहास के पीछे भी इक्ष्वाकुवंशावतंस हो हैं। यह भाग इक्ष्वाकुवंशियों के लिए अतिशय प्रिय और पवित्र था। यही कारण है कि इक्ष्वाकुओं के द्वारा अनेक पुण्य-कार्य यहाँ सम्पादित किये जाते रहे। यह जनपद भी अपने नामकरण के पीछे एक विशेष पौराणिक आख्यान से जुड़ा हुआ है, जिसका वर्णन स्कन्दपुराण के धर्मारण्य खण्ड में आया है। वस्तुतः यह धर्मारण्य अभी भी विवाद का विषय विद्वानों के लिए बना हुआ है। इस धर्मारण्य को अनेक विद्वान् अपने-अपने स्थानों तक खींच कर ले गये हैं और उसे धर्मारण्य सिद्ध करने का प्रयत्न किये हैं। स्कन्दपुराण का वर्णन आद्योपान्त देखने से पता चलता है कि वह सारा का सारा वृत्तान्त धर्मारण्य नैमिषारण्य से ही सम्बन्धित है। नैमिषारण्य के ही इर्द-गिर्द का भाग कभी छोटे-छोटे अरण्यों के नाम से भी विख्यात हुआ था। जैसे मिश्रित के लिए पाणिनि का प्रयोग मिश्रिकावण वर्तमान में कोरौना के लिए जो द्वारिका-क्षेत्र से भी माना जाता है, कोरा-वन के नाम से विख्यात था। इसके उत्तर का भाग वर्तमान सरायन नदी का उभय तट सम्भवतः धर्मारण्य के नाम से प्रोक्त होता था।

नैमिषारण्य-तीर्थ-क्षेत्र का विस्तार—

विभिन्न प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि नैमिषारण्य आर्यावर्त के अन्तर्गत स्थित था[१]। हिमालय और विन्ध्य के बीच व पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र का भाग आर्यावर्त कहलाता है। नैमिष की स्थिति गोमती-तट पर थी[२], यह भी प्रमाणों द्वारा स्पष्ट हो चुका है। कुछ पुराण इसे गङ्गावर्त के समाहार में बतलाते हैं। पार्जिटर महोदय नैमिष को अयोध्या राज्यान्तर्गत मानते हैं[३]।

अब रही नैमिष-तीर्थ-क्षेत्र के विस्तार की बात, तो पुराणों में यत्र-तत्र इसका विस्तार बड़ा ही व्यापक-सा लगता है। वामनपुराण के एक श्लोक में वर्णित है कि गोमती, काञ्चनाक्षी और गुरुदा (गेरुआ) के मध्य हजारों तीर्थ स्थित हैं[४]। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह कभी सीतापुर से लेकर नेपाल की सीमा तक का भाग माना जाता था; क्योंकि गुरुदा (गेरुआ) नेपाल की सीमा से बहती हुई लखीमखीरी के पास सरयू में मिल जाती है। वैसे भी इसे हिमालय की उपत्यका में ही स्थित मानना चाहिए। वर्तमान समय में इसका विस्तार घट कर केवल ८४ कोश ही माना जाता है, जो वर्तमान समय में हरदोई तथा सीतापुर दोनों ही जनपदों में पड़ता है। इन्हीं ८४ कोश के अन्तर्गत सभी तीर्थों की स्थिति मानी गयी है, जिसकी परिक्रमा प्रत्येक वर्ष फाल्गुन मास में शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होकर पूर्णिमा तक चलती है। इस तरह हम देखते हैं कि नैमिषारण्य का विस्तार सीमित दायरे में बाँध दिया गया है[५]।

नैमिषारण्य की चौरासी कोश परिक्रमा—

प्रति वर्ष फाल्गुन के महीने में नैमिषारण्य की ८४ कोश की परिक्रमा होती है। इस परिक्रमा के अवसर पर सुदूर देश के कोने-कोने से हजारों यात्री आते हैं तथा श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त हो परिक्रमा करते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि भगवान् राम ने स्वकुटुम्बियों एवं पुरजनों के साथ नैमिष क्षेत्र की परिक्रमा की थी, इसीलिए 'परिक्रमादल' आज भी 'रामदल' कहा जाता है। कुछ लोगों का मत है कि जिस समय इन्द्र ने समस्त तीर्थों को नैमिष क्षेत्र में आवाहन किया और समस्त तीर्थ अपने-

---

१. आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः।
आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥
(शब्दकल्पद्रुम—पृ० १९०, प्रथम-भाग)

२. वाल्मीकिरामा० उ० का० ९१।१५।

३. पद्मपु० सृष्टि० १९-१०।

४. E. E. Pargiter in Ancient Indian Historical Tradition

५. गोमत्या काञ्चनाक्ष्याश्च गुरुदायाश्च मध्यतः। तत्र तीर्थसहस्राणि।

अपने स्थान पर विराजमान हो गये, उस समय दधीचि जी ने जिन-जिन मार्गों से चल कर तीर्थों के दर्शन व उनमें स्नान किए थे, साथ ही साथ जहाँ पर वे ठहरे थे, वे ही मार्ग परिक्रमा मार्ग बने तथा महर्षि के ठहरने के स्थल पड़ाव स्थल बने।

परिक्रमा के प्रमुख पड़ाव-स्थल—

नैमिषारण्य की परिक्रमा के मुख्य ग्यारह पड़ाव स्थल हैं। इन पड़ाव स्थलों पर ही परिक्रमा रात्रि में विश्राम करती है तथा वहाँ विभिन्न प्रकार का सत्संग हुआ करता है। ये परिक्रमा स्थल हैं :—

(१) कोरावन (कोरौना), (२) हरैया (हरिक्षेत्र)।
(३) नगवा कोथायाँ, (४) गिरधरपुर उमरारी।
(५) साक्षी गोपालपुर, (६) देवगवाँ।
(७) मड़रुआ, (८) जरिगवाँ।
(९) नैमिषारण्य, (१०) कौलहवा बरेठी।
(११) मिश्रित।

यहाँ भी एक बात ध्यातव्य है कि नैमिषारण्य परिक्रमा में ११ पड़ाव स्थल ही क्यों निर्धारित किये गये ? क्यों नहीं १० अथवा १२ पड़ाव रखे गये। इसके भी पीछे मेरे मतानुसार अवश्य ही कोई रहस्य छिपा है। वस्तुतः एकादश संख्या हमारे हिन्दू-धर्मशास्त्रों में बहुत ही महत्त्व रखती है।

सर्वप्रथम प्रत्येक पक्ष की 'एकादशी' का महत्त्व है। एकादशी को भगवान् विष्णु का व्रत होता है। इस दिन व्रत करने से विष्णु प्रसन्न होते हैं। जैसा कि गरुडपुराण में कहा गयाहै—'उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि'। अग्निपुराणानुसार—'उपोष्यैकादशी राजन् ! यावदायुः सुवृत्तिभिः।' इसी को सनत्कुमार-संहिता में भी स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है—"एकादशी सदा पुण्या पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः" इति। इसी तरह अन्य पुराणों ने भी इस विषय पर अपना मत प्रकट किया है और कहा है कि यह 'हरिवासर' अर्थात् प्रभु का दिन है, अतएव व्रताचरण करना चाहिए।

कहने का अभिप्राय यह कि 'एकादश' संख्या प्रभु विष्णु को प्रिय है। दूसरी बात 'एकादश रुद्रगण'[1] भी माने जाते हैं। अतः यह एकादश रुद्रगणों को भी लक्ष्य कर निर्धारित किया गया हो ! क्योंकि यह नैमिष-क्षेत्र शैव-प्रधान क्षेत्र भी है।

तीसरा अभिप्राय यह लक्ष्य कर माना जा सकता है कि एकादश इन्द्रियाँ हैं। इन इन्द्रियों के ऊपर विजय पाने के लिए पड़ाव की ग्यारह संख्या निर्धारित की गयी हो। सांख्यकारिका में एकादश इन्द्रियों का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

---

१. अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षश्च रैवतः।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः॥ (वाचस्पत्यम्—पृ०१५१३)

'बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुःश्रोत्रघ्राणरसनात्वगाख्यानि।
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः।
उभयात्मकमत्र मनः ॥'

इसके अतिरिक्त 'एकादश द्वार'[१] भी कहे गये हैं। यद्यपि लोक में नवद्वार वाला शरीर (पुरी) कहा गया है; किन्तु सूक्ष्मरूप से नाभि और सिर के छिद्र को मिलाकर शरीर में 'एकादश द्वार' हो जाते हैं। इसी तरह से 'एकादश इन्द्रियघात'[२] हैं। एकादश अक्षौहिणी सेना का उल्लेख मिलता है। पूर्व फाल्गुनी तथा उसका ऋक्षचक्र भी ११ कहा गया है[३]। 'अध्याय वृत्तियों' का गुण भी ग्यारह ही माना जाता है[४]।

उपर्युक्त उद्धरणों से एकादश (ग्यारह) संख्या का महत्त्व अपने आप स्पष्ट हो जाता है। इस एकादश पड़ाव का मुख्यरूप से सम्बन्ध एकादश इन्द्रियों से विशेष कर लगाया जा सकता है, जिनसे इन्द्रियाँ सात्त्विक हो अपने-अपने अधिष्ठातृ देवों को पहचान सकें। इन्द्रियों का निग्रह ही योग का प्रथम चरण है[५]। अतएव ग्यारह पड़ावों का रहस्य महत्त्वपूर्ण है।

१. कोरौना (कोरावन)—

यह प्रथम पड़ाव स्थल है। इसे द्वारिका-क्षेत्र भी कहा जाता है। यहाँ पर द्वारिकाधीश भगवान् का एक बहुत विशाल मन्दिर है। परिक्रमा करनेवाला सर्वप्रथम चक्रतीर्थ में स्नान करता है। स्नान करने के उपरान्त गणेश जी के मन्दिर में लड्डू चढ़ाता है। तत्पश्चात् चक्रतीर्थ के किनारे पर जितने भी प्राचीन मन्दिर, जैसे—पञ्चमुखी महादेव, बदरीनाथ, राधा-कृष्ण, भूतेश्वर, हनुमान्, ओंकारनाथ आदि के दर्शन करता हुआ ललिता देवी, पञ्च-प्रयाग आदि के दर्शन करता हुआ जानकीकुण्ड, कर्कराज, कटह, रामकुण्ड होते हुए इस क्षेत्र तक पहुँचता है। इस द्वारिका-क्षेत्र का माहात्म्य वर्णित करते हुए कहा गया है कि भगवान् द्वारिकाधीश का यहाँ सायुज्य प्राप्त होता है। यहाँ प्रतिपदा की रात्रि को परिक्रमा-विश्राम करके पुनः द्वितीया को प्रातःकाल हरैया के लिए प्रस्थान करती है।

---

१. सात शिरोभाग में ऊपर नाभि को लेकर तीन नीचे के स्थान में, तथा एक शिर में 'ब्रह्मरन्ध्र' ये सब मिलकर ११ हो जाते हैं।

२. "बाधिर्यं कुण्ठिता-घत्वं जडताऽजिघ्रता तथा।
मूकता कौण्यपङ्गुत्वक्लैवोदावर्तमन्दता।" वाचस्पत्यम्—पृ० १५१३)

३. देखिये वाचस्पत्यम् शब्दकोष पृ० १५१३।

४. वृद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, अदृष्ट, भावना, शब्द, संयोग और विभाग ये अव्याप्य वृत्तियाँ कही जाती हैं।

२. हरैंया (हरिक्षेत्र जगन्नाथ क्षेत्र)—

यह दूसरा पड़ाव है। यह कोरौना से दक्षिण गोमती के उस पार हरदोई जनपद में पड़ता है। इसे हरिक्षेत्र भी बोला जाता है। गोमती के दायें-बायें की भूमि बड़ी ही पावन कही गयी है तथा यज्ञ के लिए उत्तम बताई गई है।

कोरौना से हरैंया पड़ाव के बीच अनेक उत्तम एवं पवित्र तीर्थ स्थल प्राप्त होते हैं, जिनमें कुमनेश्वर, कुर्कुरीतीर्थ, कुर्युमेश्वर, अगवती; कैलाशन, खवीस, मानसरोवर तीर्थ, कोटीश्वर महादेव, धोधार्क, अरुकेश्वर, खगपति आदि प्रमुख हैं। इनमें कैलाशन में स्थित भगवान् शंकर का अत्यधिक प्राचीन मन्दिर है। यह वर्तमान सरायन नदी के किनारे पर बना हुआ है तथा बड़ा ही जाग्रत है।

३· नगवा (कोथायाँ) पड़ाव—

हरैंया से चलकर परिक्रमा तीसरे दिन नगवा पहुँचती है। वर्तमान कोथावाँ ब्लाक से थोड़ी दूर पश्चिम में नगवा स्थित है। कुछ लोग नागवंशीय राजाओं का स्थान भी मानते हैं। नगवा पद्मनाभ नामक नागराज का स्थान है, जो कि गोमती से लगभग ८ किमी० दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है। यह भी पड़ाव हरदोई जनपद में ही पड़ता है।

हरैंया से नगवा के बीच में प्रमुखरूप से विरजा तीर्थ, गिरिजा तीर्थ, हत्या-हरण, धौतपाप, नर्मदेश्वर तीर्थ आदि प्रमुख हैं। इन तीर्थ-स्थानों में हत्याहरण का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

४. गिरिधरपुर—

परिक्रमा का चौथा विश्राम स्थल गिरिधरपुर है, जो उमरारी से सटे होने के कारण 'गिरधरपुर उमरारी' नाम से भी जाना जाता है। यह भी पड़ाव हरदोई जनपद में ही पड़ता है।

नगवा और गिरधरपुर पड़ाव के बीच प्रमुखरूप से दर्शनीय स्थल साधयामृत, निरमेशिन, तुम्बरु तीर्थ आदि हैं। इनकी अपनी ऐतिहासिक कथाएँ भी हैं।

५. गोपालपुर—

गिरधरपुर से चलकर परिक्रमा पंचमी को गोपालपुर पहुँचती है। यह भी हरदोई जनपद में ही स्थित है। गोपालपुर इस जनपद के पूर्वोत्तर भाग में स्थित है।

इस परिक्रमा के प्रमुख तीर्थों में दशकन्या तीर्थ, इन्द्रद्युम्न, सूर्यकुण्ड, जगन्नाथ, गङ्गासागर (झावर), कपिल मुनि, ढुंढुकेश्वर, सस्कधारा आदि प्रमुख हैं।

६. देवगवाँ—

गोपालपुर से षष्ठीप्रातः को चलकर परिक्रमा गोमती को पार कर पुनः सीतापुर जनपद में आ जाती है।

इस मार्ग में मुख्यरूप से नागालय, नीलगङ्गा, शृङ्गी-ऋषि, द्रोणाचार्य पर्वत आदि पड़ते हैं।

७. मड़रुआ पड़ाव—

संभवतः पास में स्थित माण्डव्य मुनि के नाम से इसका नाम मंड़रुआ पड़ा हो। देवगवाँ से चलकर सातवाँ विश्राम मड़रुआ में पड़ता है।

देवगवाँ से मड़रुआ के मार्ग में भी अनेक पवित्रतीर्थ विद्यमान हैं, जिनमें मुख्यतः चन्दन तालाब तीर्थ, प्रमोद वन, शोणभद्र, शिवगङ्गा तीर्थ, हयग्रीव, पञ्चवटी मार्कण्डेय तीर्थ प्रमुख हैं। यहीं पर चन्द्रवदनी और चन्द्रावल देवी का भव्य मन्दिर है। जिसके नाम से ही गाँव का नाम भी 'चन्द्रावल' प्रसिद्ध है।

८. जरिगवाँ—

यहाँ अष्टमी को परिक्रमा पहुँचती है। मड़रुआ और जरिगवाँ के बीच मार्ग में कई पवित्र-तीर्थों की स्थिति मिलती है, जिनमें माण्डव्य तीर्थ, विश्वकेश्वर, गढ़मुक्तेश्वर, हरिहर, हरिद्वार, रूपकुण्ड, कुर्यावर्त, कलपकेश्वर विशेष उल्लेखनीय हैं। महुआ-भेंटन में स्थित मधूक (महुआ) का एक विशाल वृक्ष है, जिसकी लोग अभीष्ट कामना की प्राप्ति के निमित्त अँकवार दिया करते हैं।

९. नैमिषारण्य—

जरिगवाँ से चलकर परिक्रमा पुनः नवमी को नैमिषारण्य पहुँच जाती है। एक तरह से यह परिक्रमा अब आन्तरिक स्थानों में स्थित विभिन्न तीर्थों की है।

जरिगवाँ से नैमिषारण्य के बीच अनेक पवित्र तीर्थ-स्थलों की स्थिति है, जिनमें महाकालेश्वर, मन्मथेश्वर, मधुकन्द विद्याधर, वीरभद्रेश्वर, चन्द्रप्रभव, गदाधर नाथ, फल्गु अयोध्या, मणिपर्वत आदि प्रमुख हैं।

नैमिषारण्य पहुँचने पर यहाँ परिक्रमा विश्राम करती है। पुनः दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान आदि करके यहाँ के विभिन्न-पवित्र तीर्थों, मन्दिरों का दर्शन करती हुई कौलहवा बरेठी के लिये प्रस्थान करती है।

१०. कौलहवा बरेठी—

नैमिषारण्य पड़ाव और कौलहवा बरेठी के बीच सैकड़ों तीर्थों की अवली विद्यमान हैं। वस्तुतः गोमती के तट पर ये सभी पावन-तीर्थ स्थल अपनी उत्कृष्ट यादगार को अपने अंक में संजोए बैठे हैं।

इस परिक्रमा-मार्ग में मुख्यरूप से कुरुक्षेत्र, हंस-हंसिनी, वैद्यनाथ धाम, गोवर्धन, गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, नन्दगाँव, कामवन, लालवन, जेतवन, तमालवन, देवदेवेश्वर, सेतुबन्ध रामेश्वर, वैष्णवावर्त, गुप्त काशी, रुद्रावर्त, मकरावर्त, गोपेश्वर, केदारनाथ, ऊँचीमठ, बृहस्पति, हनुमान् तीर्थ आदि प्रमुख हैं।

यह परिक्रमा गोमतो के पार से न होकर भीतर में स्थित सभी तीर्थों की है। ये सभी तीर्थ सीतापुर जसपद में ही पड़ जाते हैं।

११. **मिश्रित-तीर्थं—**

कौलहवा बरेठी से चलकर लगभग आधे परिक्रमा करनेवाले दशमी को ही मिश्रित चले जाते हैं। बहुत से लोग चित्रकूट में विश्राम करने के अनन्तर मिश्रित पहुँचते हैं। मिश्रित में पहुँचने पर पाँच दिनों तक यहाँ को पञ्चक्रोशी परिक्रमा चलती है। होली के दिन यहाँ मिश्रित तीर्थ का भव्य पूजन होता है तथा होली तापकर लोग अपने घर को जाते हैं।

नैमिषारण्य का पुरातात्त्विक महत्त्व

पंचम अध्याय

सीतापुर जिले में स्थित नैमिषारण्य, जो कि पुरातात्त्विक सम्पदाओं का भाण्डार है, दुर्भाग्य से १९८० तक इसकी ओर **पुरातत्त्ववालों का** ध्यान नहीं हो पाया और न राज्य सरकार का ध्यान इस ओर गया। १९८१ ई० में **माता आनन्दमयी की** प्रेरणा से कुछ अधिकारियों के अनुरोध पर नैमिषारण्य की ८४ कोश परिक्रमा का एक सर्वेक्षण पुरातत्त्व विभाग वालों ने किया। इसकी कितनी प्राचीनता व क्या महत्ता है ? इसका पुरातात्त्विक ढंग से रिर्पोट तैयार करने में वे लगे हैं। यद्यपि मेरा पुरातत्त्व में कोई विशेष अध्ययन नहीं है; तथापि प्राचीन इतिहास का विद्यार्थी होने से आमरुचि अवश्य है। जबसे इस नैमिष में मेरे पाँव पड़े, मुझे यहाँ की ऊँची-नीची भूमि ने, जो कि कंकणों, पत्थरों से युक्त है, अवश्य मेरे दिमाग में यहाँ की पुरातात्त्विक सम्पदा के प्रति कौतूहल जागृत किया। भूमि में गड़े प्राचीन पत्थरों के टुकड़े व तमाम ऐसी ही पत्थरों पर बनी मूर्तियाँ अवश्य इसकी प्राचीनता को संबोधित करती हैं। ऐसी प्राचीन मूर्तियाँ विशेषरूप से चक्रतीर्थ पर स्थित मन्दिरों के सामने, ललिता देवी के प्राङ्गण में व देवदेवेश्वर तथा मिश्रित दधीचि कुण्ड इसके इर्द-गिर्द मन्दिरों में देखने को मिलती हैं। पुरातत्त्व-विभाग, लखनऊ के प्रभाव से प्रभावित होकर मैंने थोड़ा बहुत यहाँ उत्खनन से मिलने वाले बर्तनों के टुकड़ों, ईंटों व तमाम मिट्टी की बनी हुई मूर्तियों को संगृहीत किया है। इनमें से कुछ तो हमने पुरातत्त्व वालों को दे दी और कुछ वाद में मैंने पुनः एकत्रित किया। यहाँ पर हम इन प्राचीन साक्ष्यों के माध्यम से भी नैमिषारण्य की प्राचीनता के सम्बन्ध में अवलोकन करेंगे।

नैमिषारण्य में प्राप्त प्राचीन मूर्तियों का विश्लेषण—

नैमिषारण्य व इसके इर्द-गिर्द विभिन्न स्थानों पर पाषाण की मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें से कुछ तो मातृ-देवियों की हैं, कुछ चतुर्भुज भगवान् विष्णु की और विशेषकर शिव की मूर्तियाँ मिलती हैं। नैमिषारण्य में पुराने पत्थर मिलते हैं, जिन पर अनेक प्रकार की मूर्तियाँ व नाना प्रकार से पच्चीकारी की गयी सुन्दर कलाएँ उत्कीर्ण हैं। ये पाषाण-शिलाएँ कहाँ से और किस पर्वत खण्ड की हो सकती हैं, इसका अनुमान अभी तक नहीं लगाया जा सका है। इस प्रकार के पत्थर हनुमान् गढ़ी पर स्थित एक बहुत पुराने गेट में लगे हुए आज भी देखे जा सकते हैं, जिसको कि पाण्डव किला नाम से लोग संबोधित करते हैं। यह गेट प्राचीन पत्थरों को संगृहीत करके दुबारा बनाया गया है; क्योंकि इसमें बहुत से ऐसे भी पत्थर चुने हुए हैं, जो कि विविध प्रकार की डिजाइनों से युक्त हैं। दूसरी बात इसमें जो पत्थर चिपकाने के लिए लेप लगाये गये हैं,

वे भी बहुत पुराने नहीं लगते। इसमें लगे हुए पत्थर अवश्य ही पुराने हैं, जो स्थान-स्थान पर खुदाई से टूटे-फूटे रूप में प्राप्त होते हैं।

शिव व पार्वती का प्रणय—

हनुमान् गढ़ी पर इसी उपर्युक्त प्रकार वाले पत्थर के ऊपर मध्य भाग में शिव व पार्वती के प्रणय की एक भव्य प्रतिमा है। इस प्रतिमा में भगवान् शंकर की वायीं जाँघ पर पार्वती प्रणय कौतूहल मुद्रा में आलेखित हैं। शिव का वाम हाथ पार्वती के कन्धे पर टिया हुआ दिखाया गया है। दोनों ही लोग आभूषणों से युक्त हैं। इस पत्थर के चारों कोनों पर यक्षिणियों का चित्र अंकित है। मेरा जहाँ तक अनुमान है कि यह भगवान् शिव और पार्वती के प्रणय-प्रसंग को जीवन्तरूप में अंकित करनेवाली मूर्ति बाद के मूर्तिकारों के लिए बड़ी ही प्रेरणादायक बनी। ऐसी मूर्तियाँ दो अन्य स्थानों, जैसे सूतगद्दी पर एवं प्राचीन ललिता देवी के छोटे मन्दिर में प्राप्त होती हैं। इनमें सूतगद्दी पर स्थित यह मूर्ति लाल पत्थर पर निर्मित है। कला की दृष्टि से ये दोनों ही बड़ी उत्कृष्ट हैं। कुषाणकालीन कला का इस पर विशेष प्रभाव दिखायी देता है।

अर्धनारीश्वर शिव—

प्राचीन सभ्यता के ध्वंसावशेष मोहन जोदड़ो और हड़प्पा में बहुत सी शिव की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुईं, जिनमें भगवान् अर्द्धनारीश्वर शिव की मूर्तियाँ भी मिली हैं। इस अर्धनारीश्वर की विशेषता यह है कि मूर्ति का आधा भाग पुरुष का है और आधा भाग नारी का। इस प्रकार की एक पाषाण-प्रतिमा, जिसका वर्तमान काल में वक्ष तक आधा ही भाग अवशिष्ट है, जिसमें अर्धनारीश्वर भगवान् शिव को दिखलाया गया है। यह प्रतिमा ललिता देवी मन्दिर के प्राङ्गण में छोटे मन्दिर के अग्रभाग में पश्चिम की ओर लगी हुई है।

चतुर्भुज विष्णु—

विभिन्न प्रमाणों से स्पष्ट है कि नैमिष को वैष्णव-क्षेत्र माना जाता रहा है। इसके प्रमाण में यहाँ पर घीया पत्थर पर बनी हुई चतुर्भुज विष्णु की बहुतायत मात्रा में मूर्तियाँ मिलती हैं। भगवान् विष्णु पद्मासन लगाये बैठे हैं। उनके हाथ में गदा-चक्र-पद्म और शंख हैं। ऐसी यहाँ पर दो मूर्तियाँ चक्रतीर्थ के पूर्वी-दक्षिणी किनारे पर दीवाल में लगी हुई हैं। पुराणों में जिस विष्णु को 'पीतवासस' कहा गया है, अब वही यहाँ नैमिषनाथ के नाम से जाने जाते हैं। ललिता-मन्दिर में भी तीन मूर्तियाँ इसी मुद्रा में मिलती है। इनमें आकार में भिन्नता है।

सूर्य—

वेदों में सूर्य के सूक्त प्राप्त होते हैं, इससे स्पष्ट है कि वैदिककाल में सूर्योपासना का बड़ा ही महत्त्व था। पुराणों में भी सूर्योपासना प्राप्त होती है तथा इस नैमिष में

भगवान् सूर्य की ऐसी दो प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें एक का महत्त्व वर्णित है। पाषाण-प्रतिमा जो कि चक्रतीर्थ के पूर्वी तट पर स्थित भूतेश्वर नाथ के मन्दिर में पश्चिम-दक्षिणी दीवाल पर लगी है, बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है। इसमें भगवान् सूर्य को सात घोड़ों वाले रथ पर वैठा हुआ दिखलाया गया है।

माता-पुत्र—

अजन्ता की १७वीं गुफा में गुप्तकालीन माता-पुत्र की भव्य प्रतिमा का चित्राङ्कन किया गया मिलता है। नैमिषारण्य में देवी ललिता के छोटे मन्दिर के अग्रभाग में स्थित माता और पुत्र की पाषाण-शिला पर निर्मित एक मूर्ति है। प्रतिमा में माता अपने पुत्र को बड़ी भावुकता से अपने दोनों हाथों से खड़ा करके प्यार दे रही है। मूर्ति का शिरोभाग छिन्न हो गया है। यद्यपि यह बड़ी ही जीर्ण अवस्था में है, जिसके कारण उसके भाव आदि को स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। वहुत सी माताएँ इसको 'पुत्रदायिनी' माँ कहकर इसकी पूजा और उपासना किया करती हैं।

इस प्रकार की आकृतियाँ मथुरा और अमरावती में विशेषरूप से देखने को मिली हैं। नैमिष में चक्रतीर्थ के पूर्वी-दक्षिणी तरफ एक इसी प्रकार की मानवाकृति है, जिसका लगभग सारा भाग एक चवूतरे से ढक दिया गया है। केवल वक्ष और मस्तक का भाग ही दिखायी देता है। नैमिषवासी इसे 'श्रृङ्गी-ऋषि' कहा करते हैं। विदित हो कि इस पाषाण-प्रतिमा में सींग न होकर दोनों भुजाओं से पंख जैसा ऊपर को बना है, जिसकी लम्बाई लगभग डेढ़ फुट होगी। भारतीय कला में उद्धृत मूर्तियों का विश्लेषण करने पर निश्चय होता है कि यह एक सपक्ष मनुष्य ही है। इसी प्रकार की एक विधा महोरग और सुपर्ण की भी भारतीय कला के अन्तर्गत प्राप्त होती है, जिसमें विभिन्न आकृतियों में पंख जोड़ दिये जाते थे।

यक्ष-यक्षिणी—

यहाँ चक्रतीर्थ के मुख्य-द्वार के उत्तरी-पश्चिमी द्वार पर पूर्व की ओर बायें हाथ राधाकृष्ण मन्दिर में घीया पत्थर पर दो मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इनमें एक स्त्री की मूर्ति है और दूसरी पुरुष की। इस आकृति की लम्बाई लगभग डेढ़ फुट है। नैमिषवासी इसे द्वारपाल की संज्ञा से पुकारते हैं। वस्तुतः ये यक्ष और यक्षिणियाँ हैं, जो कि कभी ग्राम्यदेवता के रूप में पूजी जाती थीं। इस प्रकार की यक्ष और यक्षिणियों की प्रतिमाएँ अन्यत्र भी प्राप्त होती हैं।

गणपति—

गणपति का महत्त्व प्राचीन काल से ही मिलता है। पौराणिक काल में यह गणपति समस्त देवताओं में पूज्य माने जाते थे। विशेषरूप से इनकी आकृति लम्बोदर की दी गयी है। इसका शिर हाथी का दिया गया है। इनका वाहन मूषक दिखलाया गया है। इस देवता की मुख्यरूप से विघ्नों के विनाशक के रूप में सर्वप्रथम पूजा

होती है। इसलिए इन्हें विघ्नेश अथवा विघ्न-विनाशक भी कहा जाता है। इनकी बहुत सी प्राचीन मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। इनमें सर्वाधिक प्राचीन मूर्ति ललिता देवी मन्दिर के प्राङ्गण में पीपल-वृक्ष के चबूतरे में लगायी गयी है। इसके अतिरिक्त भी बहुत सी मूर्तियाँ, यथा भूतेश्वरनाथ मन्दिर, गोकर्ण मन्दिर में भी मिलती हैं, जो कि ९-१०वीं शताब्दी के लगभग की प्रतीत होती हैं। वैसे तो यहाँ पर एक मन्दिर में चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य द्वारा स्थापित गणेश की मूर्ति बतलायी गयी है; किन्तु अब उस स्थान पर न तो वह गणपति की मूर्ति है और न उतना प्राचीन मन्दिर ही लगता है। विदित हो कि इस मन्दिर में गणपति की मूर्ति अब संगमरमर की है।

महिषासुर-मर्दिनी—

चक्रतीर्थ के तटपर स्थित गोकर्णनाथ मन्दिर में महिषासुर मर्दिनी की काले पाषाण की बनी हुई एक बहुत ही कला-कौशल संयुक्त प्रतिमा है। इसमें देवी की आठ भुजाएँ दिखायी गयी हैं। इसमें देवी को महिषासुर का वध करते हुए दिखलाया गया है। मूर्ति का सौष्ठव व कलाकृति देखते ही बनती है। यह कृति कलाकार की पूर्णरूपेण निपुणता की परिचायक है। यह मूर्ति उत्तर मध्यकालीन प्रतीत होती है। इसी प्रकार की एक भूतेश्वरनाथ मन्दिर में देवी की मूर्ति है, जो महिषासुर का वध करते हुए दिखलाई गई है। यह भी इसी काल की ही प्रतीत होती है।

भैरव—

लाल पत्थर पर निर्मित देवी-मन्दिर के प्रांगण में ही इनकी एक प्रतिमा निर्मित है। ये भैरव अपने एक हाथ में त्रिशूल लिए हुए हैं। अपने दाहिने पाँव को वाहन कुत्ते के ऊपर रखे हैं। इसी मूर्ति का प्रतिरूप एक अन्य मूर्ति भूतेश्वर मन्दिर में लगी है। यह उत्तर मध्यकालीन होनी चाहिए।

कपाली—

गले में नरमुण्डमाला धारण किये हुए काली की मूर्ति बड़ी ही भयोत्पादक है। यह काली अपने पाँवों के नीचे शिव को दबाये हुए दिखाई गयी है। इसके बायें हाथ में नरमुण्ड है तथा दायें हाथ में तलवार है। कानों में कुण्डल है तथा केश बिखरे हुए हैं। यह प्रतिमा उत्तर गुप्तकालीन है।

गायत्री—

काले पत्थर की बनी हुई यह प्रतिमा भूतेश्वरनाथ मन्दिर में पूर्व की दीवाल में लगी है। अभय-मुद्रा में यह प्रतिमा कलाकार की कुशल हस्तकला का परिचायक है। देवी पद्मासन लगाये बैठी है। तीन देवियाँ नीचे बैठी हुई हैं, जिनके शिर पर देवी का आसन टिका हुआ है। दायें तथा बायें दो यक्षिणियाँ हाथ में चँवर डुला रही हैं। यह भी देवी की मूर्ति उत्तर मध्यकालीन है। पुरातात्त्विक दृष्टि से यह प्रतिमा भी महत्त्वपूर्ण है और वस्त्राभूषणों से सज्जित है।

पीतवासस-अच्युत—

इसी उत्तर मध्यकालीन कला की महत्त्वपूर्ण कृति पीतवासस अच्युत विष्णु की है। यह भी काले पत्थर की बनी है। मूर्ति लगभग ढ़ाई फुट ऊँची हैं। इस मूर्ति का निर्माण करने में मूर्तिकार ने सर्वाधिक योग्यता दिखलाई है। मूर्ति नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित है। भगवान् विष्णु मध्य में खड़े हैं। चतुर्भुजवाले हैं। चारों हाथों में क्रमशः गदा, पद्म, चक्र, और शङ्ख लिये हुए हैं। इस मूर्ति के किनारे-किनारे के भाग में मुख्यरूप से सभी अवतार भी दिखलाये गये हैं। उन्हें वर्तमान समय में 'नैमिषनाथ' के नाम से जाना जाता है।

दशशीश-रावण—

चक्रतीर्थ के पूर्व दक्षिण में बरगद के पेड़ के नीचे की दीवाल में एक प्राचीन पाषाण-मूर्ति है। इसकी ऊँचाई लगभग ८" इंच है। उभरा हुआ विशाल वक्ष एवं शरीर का गठन बड़ा ही सुन्दर है। इस मूर्ति में मूर्तिकार ने रावण के शिरों को दायें-वायें न दिखाकर एक शिर के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा, तीसरे के ऊपर चौथा क्रमशः दशों शीशों को दिखाया है। यह कलाकार की पूर्व अविकसित रूप का परिचायक है। अब वर्तमान काल में जो भी रावण की मूर्ति मिलती है, वह विकसित कला का उदाहरण हैं। रावण की इस काल की अन्य दो और भी मूर्तियाँ नैमिष परिक्रमा क्षेत्रान्तर्गत प्राप्त होती हैं। अब यह बात विचारणीय है कि अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों के साथ इस नैमिष-क्षेत्र में रावण की मूर्ति को बनाने का क्या प्रयोजन रहा? मेरे मत से जहाँ तक कि रावण की विद्वत्ता का प्रश्न था, वह उसे सर्वमान्यरूप से पूजार्ह बनायी होगी। आज भी सुदूर दक्षिण भारत में रावण को प्रतिष्ठा है। अवश्य ही इस नैमिष-क्षेत्र में पदार्पण हुआ होगा।

गौतम बुद्ध—

चक्रतार्थ के पश्चिमी तट पर छोटे से मन्दिर के अग्रभाग में बायीं ओर एक गौतम बुद्ध का शिर का भाग लगा हुआ है। कला की दृष्टि से यह अशोककालीन लगती है। सम्भव है कि बौद्ध-धर्मावलम्बियों का यहाँ भी प्रचार और प्रसार शुरू हो गया रहा हो; किन्तु बाद में शुंगकालीन ब्राह्मण राजाओं को यहाँ पर स्थापित किया। शुंग और कुषाणकाल के यहाँ पर बहुतायत अवशेष प्राप्त होते हैं।

अलंकृत वेदिकाएँ—

शुंगकालीन कला के प्रमुख उदाहरण साँची के तोरण-द्वार में विविध प्रकार की कलाकृतियों का सायुज्य मिलता है। यह विविध प्रकार की अल्पनाओं से चित्रित की जाती थीं। इसके अतिरिक्त स्तम्भों को भी कलाकृतिओं से सजाया जाता था। इस कला का नमूना चक्रतीर्थ के तट पर पश्चिम की ओर गणेश-मन्दिर में लगाया गया एक स्तम्भ है, जो कि लगभग ४ फुट लम्बा है। इसकी अपनी कलाकृति बेजोड़ है, जिसका समय हम १८५-७२ ई० के बीच में रख सकते हैं।

यदि नैमिषारण्य को पुरातात्त्विक सम्पदा का भंडार कहें तो अत्युक्ति न होगी। यहाँ ईशा पूर्व में भी ऐसी कला एवं संस्कृति फैली थी, जो कि अपने युग की बेजोड़ कही जा सकती है। यहाँ पर किसी युग में बड़े ही दूर-दूर तक नगरीय सभ्यता का विकास हुआ था; लेकिन दुर्भाग्य है कि कोई शिलालेख, अभिलेख अथवा अन्यान्य कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। नैमिष की (वर्तमान आबादी का) पश्चिमोत्तरी भाग हनुमानगढ़ी से लेकर नारदानन्द-आश्रम तथा इसके इर्द-गिर्द में इसी नगरीय सभ्यता के ध्वंसावशेष प्राप्त होते हैं।

खुदाई में यत्र-तत्र बहुत-सी लम्बी-लम्वी दिवालें मिलती हैं। इन दीवालों की ईंटें जो हनुमानगढ़ी के भूगर्भ में मिलती हैं, वही आकार-प्रकार अटिया-पटिया टीला व नैमिष टीला पर भी मिली हैं। अटिया-पटिया टीले पर मिलनेवाली दीवालें एक दूसरे को वर्गाकार काटती हैं। स्पष्ट होता है कि पक्की दीवालों से बने हुए मकानों में तमाम छोटी-बड़ी कोठरियाँ होती थीं। दीवालों की नोंव की मोटाई लगभग ५ फीट मिलती है। साधारणतया दीवालें मिट्टी से ही चुनी गयी लगती हैं। यदि इनकी विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त करने के लिए खुदाई की गयी होती, तो शायद भूगर्भ में छिपी हुई नैमिष की पुरातन संस्कृति उजागर हो सकती थी। अभी १९८५ के मई मास में हनुमानगढ़ी के ऊपर जो कुएँ की खुदाई हुई और उसमें जो भारी-भरकम ईंटों की बनी हुई दीवालें मिलीं, वे वास्तव में महत्त्वपूर्ण थीं। टीले को खुदाई ४ मीटर ऊँची दीवाल थी, इसमें पूरब से पश्चिम को जाने वाली ७ फुट ४ इंच मोटी थी और उसी में से एक दीवाल उत्तर दिशा को गयी थी, जिसकी मोटाई ५ फीट थी। ईंटों की माप १८½″ × ६½″ × ३½″ इंच थी। ऐसा लगता है कि दीवालें प्रायः बड़ी ही मजबूत बनायी जाती थीं।

नैमिषारण्य की मृन्मय मूर्तियाँ—

मृन्मय मूर्तिकला भी भारतीय इतिहास में मत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पाषाण-मूर्तिकला से पूर्व ही मृन्मय मूर्तिकला का विकास हुआ। मूर्तिकार जब मिट्टी की कलाओं में सिद्धहस्त हो गये, तब उन लोगों ने पाषाणों की प्रतिमाएँ बनानी शुरू कर दीं। सिन्धु घाटी की सभ्यता में तमाम मिट्टी की मूर्तियाँ उस काल की कला की परिचायक हैं। महाभारत, भद्दसाल जातक, मृच्छकटिक आदि के आधार पर भी ज्ञात होता है कि मिट्टी की मूर्तियाँ खिलौनों के रूप में विशेषकर प्रयोग की जाती थीं। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में एक मिट्टी के पकाये रंग-बिरंगे मयूर का उल्लेख है, जो भरत को मन बहलाने के लिए खेलने को दिया जाता था।

भारतवर्ष के उत्तरी भाग में नदियों के किनारे उत्खनन में बहुत सी मिट्टी की मूर्तियाँ व मृद्भाण्ड मिले हैं। इतिहासकारों ने कई वर्गों में विभाजित किया है।

यहाँ हम नैमिषारण्य में प्राप्त मिट्टी की मूर्तियों एवं भाण्डों का विश्लेषण करेंगे, जिनको हमने विभिन्न टीलों से प्राप्त किया है।

प्रमुखरूप से यहाँ अटिया-पटिया टीले से प्राप्त मिट्टी के बर्तनों व खिलौनों को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम-मौर्यकाल व इसके पूर्वकालीन, दूसरा—शुंगकाल व इसके उत्तरकालीन मूर्तियाँ व मृद्भाण्ड।

प्राङ्मौर्य काल में मिट्टी के खिलौनों को साँचों में न ढाल कर हाथ से ही सुडौल करके बनाया जाता था। इनमें मुख्यरूप से मातृ-देवियों की मूर्तियाँ हैं, जो हाथ से ही विनिर्मित हैं। ये बिल्कुल ठोस हैं और इनके बनाने में मूर्तिकार उतना कुशल-हस्त नहीं जान पड़ते। यहाँ टीले से खुदाई में दर्जनों मृन्मय मातृ-देवियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका समय लगभग २५०० ई० पू० के आस-पास निश्चित किया जा सकता है। यहाँ पर प्राप्त मातृ-देवियाँ अन्य स्थानों, जैसे—मथुरा, अहिच्छत्रा, कौशाम्बी, तक्षशिला आदि स्थानों पर प्राप्त मातृ-मूर्तियों की अपेक्षा कला में अच्छी नहीं हैं। ये बिल्कुल सादी हैं, कोई अलंकरण नहीं है। इनमें से कुछ मूर्तियाँ बिल्कुल प्रतीकात्मक ही हैं।

इसी परम्परा में अन्य बहुत सी पशु-पक्षियों की भी मृन्मय मूर्तियाँ तत्का-लीन कला के नमूने के रूप में प्राप्त हैं। इनमें एक वृषभ की मूर्ति मिली है, जो कि ठोस और उस पर तीन अक्षर ब्राह्मी-लिपि में लिखे हैं। इसको पुरातत्त्वविद् 'नकवी' ने 'नमष' पढ़ा है और उससे 'नैमिष' सिद्ध करना चाहा है, जो कि तर्कसंगत नहीं। इसी की परम्परा में एक घोड़े का मध्य भाग मिला है, जिसके चारों पैर टूट चुके हैं और शिर भी खंडित हो चुका है। यह दौड़ते हुए प्रतीत होता है। बनावट में यह मोटा और भद्दा है। इसी प्रकार से एक तोता का धड़ प्राप्त हुआ, जिसका शिर टूट चुका है। यह बैठी हुई आकृति में दिखलाया गया। यह भी कला की दृष्टि से भद्दा ही है। इसी तरह एक मछली का पुच्छ डौलिया कर बनाया गया है। ऐसा लगता है कि मूर्तिकला के यह अविकसित स्वरूप को बतलाता हो। इसके बाद कला में एकाएक विशेष परिवर्तन दिखाई देता है। यह कला बहुत ही सिद्धहस्त व बड़ी मौलिक जान पड़ती है।

मौर्यकाल तक आते-आते कलाकारों की कलाएँ अत्यधिक व्यापक व जनप्रिय बन गयीं। इन लोगों ने मूर्तियों व बर्तनों पर एक विशेष प्रकार की लेप करना प्रारम्भ कर दिया था। इनमें कुछ तो गेरु या लाल रंग के पोत हैं, कुछ भूरे वर्ण के हैं और कुछ काले ओपदार हैं। इनमें काले ओपदार चमकीले भाण्ड सारे भारत में प्राङ्मौर्य-काल और लगभग मौर्यकालीन स्थानों पर पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मौर्यकाल में इस प्रकार की ओपदार चमकीली मिट्टी की विविध वस्तुएँ बनाने में लोग बहुत ही रुचि रखते थे तथा कुशलहस्त थे। इस काल का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण नमूना यहाँ पर टीले से शेर का मिला है। यह काले ओपदार चमक से युक्त है। ऐसा लगता है कि शेर अपने शिकार पर बड़े ही जोरों के साथ मुँह बाये हुए झपट रहा हो। यह भी हाथ से डौलिया कर बनाया गया है। इसके मुँह से पीछे भाग तक गोला-छिद्र है। पीछे का भाग जो कि टूटा हुआ प्रतीत होता है, लगता है वह किसी वस्तु से

जुड़ा हुआ था। बहुत सम्भव है कि टोंटीदार बर्तन की यह कलापूर्ण टोंटी भी रही हो। वैसे तो यह मूर्ति बड़ी ही आकर्षक व सुन्दर है। काले ओपदार चमकीले रंग के तमाम मृद्भाण्ड भी मिले हैं, जो कि कला की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। ये मौर्यकालीन कला के विशिष्ट उदाहरण हैं। ऐसे ओपदार वर्तनों का समय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने ६०० ई० पू० निर्धारित किया है।

एक अन्य उदाहरण एक स्त्री का शिरोभाग है, जो कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। स्त्री का केश-विन्यास बड़ा अच्छा है। कानों में कुण्डल और ललाट पर टीका सुशोभित है। माँग में विशेष प्रकार का माँग टीका भी है। शिर पर मुकुट जैसी कोई वस्तु है। यह मूर्ति आकार-प्रकार में बड़ी दिखायी देती है। यह स्त्री-शिर बिल्कुल ठोस है।

इसी टीले से एक अन्य स्त्री-मूर्ति का शिर मिला है, जो इस समय भारतीय पुरातत्त्व-विभाग लखनऊ में है। इसमें भी स्त्री को विशेष शृङ्गार-प्रसाधन से युक्त दिखलाया गया है। स्त्री के पृष्ठ-भाग में जूड़ा बँधा है। कला की दृष्टि से यह भी महत्त्वपूर्ण है। पुरातत्त्वविद् राजकुमार ने इसको मौर्यकालीन कला का उदाहरण कहा है।

इसी काल की एक कुबेर की मूर्ति इसी टीले से प्राप्त हुई है। यह मूर्ति शासन पर बैठी है। गले में माला धारण किये हुए है। सुन्दर केश-विन्यास से युक्त है। धोती पहने हुए है। इस मूर्ति की विशेषता यह है कि यह अपने दोनों हाथों में एक घड़े जैसा पात्र लिये हुए है। प्रतीकरूप में यह प्रतिमा दोनों हाथों से धन को उलीच रही है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक भारतीय कला में चित्र सं० ५१५ में जो कुबेर और हारीती का चित्र वर्णित किया है, वह इससे साम्य रखता है। यहाँ नैमिष से प्राप्त मूर्ति में केवल कुबेर ही हैं, जब कि फलक ५१५ में कुबेर के साथ हारीती दोनों को भी दिखलाया गया है। दोनों ही बैठे हुए हैं। बनावट की दृष्टि से भक्ति में समानता है। मैंने भी इसी का साम्य रखते हुए इसे कुबेर की संज्ञा दी है।

पुरातात्त्विक अध्ययन—

प्रायः टोंटीदार बर्तनों का प्रयोग भी इस काल में प्रमुखरूप से होता था। इस प्रकार के पात्र भी बहुतायत मात्रा में यहाँ मिलते हैं। इन पात्रों में काले रंग से युक्त धारियोंवाला एक मिट्टी का टोंटीदार पात्र मिला है। बनावट की दृष्टि से यह भी महत्त्वपूर्ण है। ऊपर की तरफ छोटा-सा गोलाकार मुँह बना है। पेंदा चिपटा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्हारों ने इसे चाक पर बनाया है। चाक पर बर्तन बनाने की प्रक्रिया पुरानी है। यद्यपि कोई चाक तो नहीं मिला, लेकिन खुदाई में बहुत से थपुवे, जिनके द्वारा बरतनों को थपथपाकर कुम्हार गढ़ता है, मिले हैं। मैंने मिट्टी के ठप्पों को भी यहाँ पाया, जिनसे मिट्टी के बरतनों पर पुष्प आदि की डिजाइनें बनाई जाती थी। इसी काल में निर्मित लाल गेरु के रङ्ग से युक्त कई स्याही रखनेवाली मिट्टी की दावातें भी मिली हैं। यद्यपि इनका नीचे का आधार नहीं है; फिर भी कला-कौशल व हाथ

की काफी सफाई इसमें दीख पड़ती है। ये बड़े ही सुडौल एवं कलापूर्ण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुम्हारों ने इसमें आकृति विशेष को चित्रित कर दिया हो। ये या तो कलमदान स्याही-पात्र हुआ करते थे, अथवा किसी टोंटीदार बर्तन की टोंटी; क्योंकि किन्हीं-किन्हीं में तो नीचे की तरफ ३-४ छिद्र हैं, जो जाली का संकेत करते हैं और ये किसी पात्र-विशेष से अलग (टूटे) हुए से हैं।

मौर्यकालीन मूर्तियों, जिनमें साँचे की प्रथा न थी, अब धीरे-धीरे शुंग व कुषाण-काल में आते-आते इनमें और भी निखार आया। मूर्तियों की जन-सामान्य में खपत होने लगी। लोग इन मूर्तियों को दीवालों पर सजाने के काम में लाने लगे तथा साथ ही साथ पूजा आदि के लिए भी विभिन्न देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनने लगीं। इस कला की सर्वाधिक विशेषता यह है कि साँचे कुशल कलाकारों के द्वारा बनाये जाते थे। उन्हें सामान्य व्यक्ति भी अच्छी मिट्टी को खूब सजाकर उस साँचे से बहुत सी मूर्तियाँ तैयार कर लेता था। इन्हें सुखाकर आँवे में पकाकर अभिलषित रङ्ग से रङ्ग कर बेचा जाता था। इस कला के उदाहरण लेखक के पास मुख्यतया तीन विद्यमान हैं। इनमें प्रथम है भगवान् आदि नारायण विष्णु का शिरोभाग। दुर्भाग्यवश मूर्ति का केवल शिर ही विद्यमान है। यह मूर्ति ठोस है तथा साँचे में ढाली गयी है। मूर्ति का आकार-प्रकार उसकी रचना कुशल कारीगर की मूर्तिकला का परिचय देती है। शिर पर विशेष प्रकार का मुकुट जैसा है। कान लम्बे व कुण्डल से विभूषित हैं। यत्र-तत्र गड्ढों में लाल रङ्ग की विशेष पोत इसके रंगीन होने का प्रमाण देत हैं। यह मूर्तिकला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है।

शुंगकालीन कुछ ईंटों की कलाकृतियाँ भी यहाँ मिली हैं। कच्चे ईंटों को छुरी से डिजाइनदार बनाकर पका लिया जाता रहा और उन्हें मकान के खम्भों में परगह के रूप में लगाया जाता था। इन्हें वेदिका अथवा पिंडिका भी कहते थे। स्तम्भों के ऊपरी भाग में भी इसी प्रकार की डिजाइनदार ईंटें लगाये जाते थे, जिन्हें 'उष्णीष' कहा जाता था। आजकल भी खम्भों के नीचे तथा ऊँचे भाग को ईंटों की डिजाइनों से सजाने का प्रचलन है। शुंगकाल में कच्चे ईंटों को डिजाइनदार बनाने के उपरान्त ही तेज आग में पकाया जाता था। इस प्रकार के परगहे बहुतायत मात्रा में इस टीले में मिले हैं, जिनमें कुछ तो संस्थान में रखे हैं, कुछ लखनऊ पुरातत्त्व-विभाग संग्रहायल में हैं। इस प्रकार की स्थापत्य कला का नमूना मौर्यकालीन अशोकीय स्तंभों से लेकर कुषाणकाल तक देखा जा सकता है[१]।

टीले की खुदाई व यत्र-तत्र प्राप्त बर्तनों के ढेरों से ऐसा लगता है कि कभी किसी समय में कुम्हारों की भी आबादी यहाँ रही हो। कुम्हारों के आँवें तथा उनके अन्य विभिन्न काम आनेवाली सामग्री इस बात की साक्षी हैं। वैसे भी प्राचीनकाल में राजा लोग कुम्हारों को बसाया करते थे और उनसे अभीष्ट कार्यों को करवाते थे। जैसा कि डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ में लिखा है—'शिल्पियों को राजा

---

१. देखिये—भारतीय मूर्तिकला—पृ० ३४-३५, ले० रायकृष्णदास, सं० २०३०।

और प्रजा दोनों ही सम्मान देते थे।' बौधायनश्रौतसूत्र (१५।१४) में लिखा है कि राजा कुम्हारों को बुलाकर उन्हें ईंट बनाने का काम सौंपते थे और यज्ञ के लिए छोटे-बड़े भाण्डों का निर्माण करवाते थे ! कुम्भ, कुम्भी, कुसूल, भाण्ड और स्थालियाँ बनायी जाती थीं। कुम्हारी के काम की बड़ी ही माँग थी, जिसके लिए नया शब्द 'कौलालक' प्रयोग में आया[1]।"

मृद्भाण्ड—

नैमिष के टीलों में प्राप्त भाण्ड कई प्रकार के देखे जाते हैं। प्रथम तो ऐसे भाण्ड हैं, जो कि बहुत मोटे व भद्दे हैं। इन्हें कुम्हार चाकों पर बनाते थे। ऐसे पात्रों में वे समस्त गृहस्थी-सम्बन्धी मिट्टी के बर्तन आ जाते हैं, जिनका आज-कल गृहस्थी के कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान है। हौदे, मटके, परई, स्थाली, ढक्कन इत्यादि प्रमुखतया इन भाण्डों के अन्तर्गत मिलते हैं। ये मृद्भाण्ड १३वीं, १५वीं शदी के प्रतीत होते हैं। इनमें कौलालकी कला का ह्रास होता दिखाई देता है। इनके अतिरिक्त दूसरे प्रकार के जो भाण्ड मिलते हैं, उनमें उतनी मोटाई नहीं मिलती। ये औसतन पतले बनाये जाते थे। इनमें भी वे समस्त प्रकार के आवश्यक मृद्भाण्ड बनते थे। ये उत्तर-मध्यकालीन कहे जा सकते हैं। तीसरे प्रकार के भाण्ड, जो कि काले ओपदार चमकीले हैं, मौर्यकालीन कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। यदि देखा जाय तो यह काल मृद्भाण्डों के उन्नत कला का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। इस काल के पात्र बड़े सुडौल, चिकने व हृदय-आकर्षक हैं। इनका समय ६०० से २०० ई० पू० तक निर्धारित किया जा सकता है।

अक्ष अथवा द्यूत—

भारत में अक्ष अथवा द्यूतक्रीड़ा वैदिक-काल से ही प्रचलित है। वेदों में इसका बड़े ही सहज ढंग से वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में भी इसका चित्रण है। महाभारत तो इसी द्यूतक्रीड़ा के ही नींव पर पुष्ट होकर कौरवों के विनाश का कारण बनता है। अनेक परवर्ती लेखकों, कवियों और नाटककारों ने भी इसका उल्लेख किया है। मृच्छकटिक के रचनाकार शूद्रक ने संवाहक माथुर, दर्दुरक आदि जुआरियों का उल्लेख किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि भारत में द्यूतक्रीड़ा अति प्राचीन है।

यहाँ अटिया-पटिया टीले से एक मिट्टी का ३ १/२ सेमी० लम्बा १ १/२ सेमी० मोटा चौकोर एक अक्ष-पासा प्राप्त हुआ है। इस पासे में चार पटल हैं। प्रथम पटल पर एक, द्वितीय पर दो, तृतीय पर तीन और चतुर्थ पर चार फूल बने हैं। आज कल जैसे पासों को खेलने या फेंकने का विधान अंकों या चिह्नों के ऊपर निर्भर करता है, ठीक वैसे ही इस पासे से भी लक्षित होता है कि इसका प्रयोग जुआरी जुआ खेलने के काम में लाता था अथवा यह मनोरंजनार्थ भी होता था।

उपर्युक्त पुरातात्त्विक अध्ययन से ज्ञात होता है कि नैमिष, जहाँ एक ओर प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रचार केन्द्र रहा, तीर्थों में उत्तम और प्राचीन तीर्थ

---

१. भारतीय कला—ले० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, सन् १९७७।

गिना जाता रहा। कभी यही वन नगरीय-सभ्यता में सज-सँवर कर गोमती के पावन-तट को अलंकृत भी किया। आज भी वर्तमान नैमिष का विस्तृत भू-भाग, जो कि अरण्यों से भरपूर हैं, किसी प्राचीन संस्कृति की कहानी को कह रहा है। इतना तो स्पष्ट है मुस्लिम-काल नैमिष के लिये अन्धायुग है, जिसने इसकी ज्वाज्ज्वल्यमान कीर्ति को अन्धकार से युक्त बना दिया। शुंग और गुप्तकाल में इसका उत्कर्ष अपनी चरम सीमा पर दिखाई देता है। १२वीं शदी से लेकर १९-२०वीं शदी तक का इतिहास नैमिष के लिये ह्रास जैसा दिखायी देता है। लोगों का ध्यान यहाँ से हट कर विभिन्न स्थानों पर स्थित नैमिष की कल्पना में ही रम गया। यही कारण है कि यहाँ का अपना मध्यकालीन विशेष साहित्य में विशेष वर्णन नहीं आया। यहाँ के इतिहास की अपनी कोई स्वतन्त्र पुस्तक भी प्राप्त नहीं हो पाती, जिससे इसके माहात्म्य को सुचारु-रूप से वर्णित किया जा सके।

●

नैमिषारण्य से सम्बन्धित आख्यान

षष्ठ अध्याय

गृद्ध-जम्बूक-आख्यान—

महाभारत के शान्तिपर्व के आपद्धर्म पर्व में गृद्ध और जम्बूक (शृगाल) की एक कथा वर्णित है। इस कथा का श्रीगणेश इसी नैमिषारण्य से प्रारम्भ हुआ था। भीष्म जी कह रहे हैं कि हे कुन्तीपुत्र ! पूर्वकाल में नैमिषारण्य में गृद्ध और जम्बूक का संवादयुक्त इतिहास जिस प्रकार लोगों में कहा गया था, उसे सुनो, मैं बता रहा हूँ[1]। किसी (व्यक्ति) के वंश का सर्वस्वभूत, अप्रौढ़ अवस्थावाले मृत बालक को लेकर कुछ लोग रोते हुए तथा अत्यंत शोक से संतप्त हो श्मशान घाट पर पहुँचे। वहाँ पर पहुँचने पर वे लोग और भी फूट-फूट कर रोने लगे। उन लोगों के करुण-क्रन्दन को सुनकर एक गृद्ध आया और उसने कहा कि तुम लोग इस मृत बालक को इस श्मशान में छोड़कर शीघ्र चले जाओ; क्योंकि यह मृत हो चुका है। ऐसे तो सहस्रों मरे हुए नर-नारी व बालक-वृद्ध को लोग यहाँ छोड़कर चले जाते हैं। व्यर्थ के विलाप से कोई लाभ नहीं; क्योंकि यह संसार ही सुखमय दुःख है। पर्यायक्रम से तो पुत्र-कलत्र इत्यादि का संयोग-वियोग होता ही रहता है[2]। तुम लोगों का इस घोर श्मशान में ठहरना ठीक नहीं। जो व्यक्ति काल-कवलित हो चुका है, उसे रोकर तो जिलाना सम्भव नहीं। यह तो सभी प्राणियों की ऐसी गति है; क्योंकि कहा गया है कि इस मृत्युलोक में जिसने जन्म लिया है, उसे मरना अवश्य है। इसलिए इस कालमृत नियम को कौन टाल सकता है? सायंकाल होने जा रहा है, अतएव तुम सब लोग शीघ्र ही घर लौट जाओ।

गृद्ध के वचन को सुनकर वे सभी बान्धव उस बालक को वहीं छोड़कर जाने के लिए तैयार हुए, तब तक वहीं उन्हें मार्ग में एक बिल से कौए के समान आकृति-वाला स्यार मिला। स्यार ने कहा—मनुष्यों ! नुम लोग बड़े ही दयाहीन दिखाई पड़ रहे हो। अरे मूर्खों ! देखो तो, अभी सूर्य अस्त नहीं हुए हैं, इसलिए अभी भी बच्चे को स्नेह करो, भय मत करो। मुहूर्त का बड़ा ही चमत्कारी प्रभाव होता है। शुभमुहूर्त

---

१. शृणु पार्थ यथावृत्तमितिहासं पुरातनम्।
गृद्धजम्बूकसंवादं यो वृत्तो नैमिषे पुरा ॥ (महा० आप० १४९।१)

२. संम्पश्यत जगत्सर्वं सुखदुःखैरधिष्ठितम्।
संयोगो विप्रयोगश्च पर्यायेणोपलभ्यते ॥ (महा० आप० १५९।६)

के प्रभाव से इसका जीना कोई असम्भव नहीं है[1]। तुम सब पुत्र-वियोग से युक्त होने पर भी निर्दयी होकर इस बच्चे को क्यों छोड़े जा रहे हो। बोलो पशु-पक्षी आदि अपने बच्चों का प्रतिपालन करते हैं, जिनसे कोई विशेष फल नहीं मिलता। क्या तुम लोग पशु-पक्षियों से भी गये गुजरे हो? पशु-पक्षी तो कर्म सन्यासियों के यज्ञ की भाँति निष्चेष्टभाव से पुत्र का पालन करते रहते हैं, जिनसे उन्हें परलोक की गति का भी फल काम्य नहीं होता। परन्तु तुम मनुष्यों को तो पुत्र लौकिक तथा पारलौकिक सुख को देनेवाला बताया गया है[2]; फिर भी इतने निर्दय-भाव से छोड़े जा रहे हो। तुम लोग बहुत समय तक आँसू बहाते हुए स्नेह-युक्त नेत्र से इस बालक को देखो। ऐसे प्रियपात्रों को छोढ़ना अत्यंत कठिन है। दुर्बल, अभियुक्त और श्मशान स्थित पुरुष, इन तीनों के निकट उनके बान्धव ही रहते हैं, दूसरा नहीं[3]। अरे! इसके सुन्दर गात को तो देखो। इतने सुन्दर बालक को छोड़े जाने में दया भी नहीं आती[4]। इस प्रकार स्यार के वचन को सुनकर वे बान्धव लोग उस बालक के शरीर की रक्षा के लिए फिर से लौट पड़े।

उधर भूखा गृद्ध उन व्यक्तियों को पुनः श्मशान में लौटा देख कहने लगा—अरे मूर्ख मनुष्यों! तुम लोग इस अल्पबुद्धि क्रूर और क्षुद्र सियार के वचन में क्यों पड़ रहे हो? भला बताओ कि पञ्चत्व को प्राप्त हुए शून्य, चेष्टाहीन मुर्दे के पीछे क्या पड़े हो? तुम लोग अपने लिए क्यों नहीं शोक करते? घर जाओ, तपस्या करो, तपस्या के ही प्रभाव से जीवन सुधर सकता है। अनिष्ट फल और भाग्य शरीर के साथ ही उत्पन्न होते हैं। धन, गाय, सुवर्ण, मणि-रत्न और पुत्र, ये तपस्या के ही प्रभाव से मिलते हैं[5]। जो प्राणी जैसा करता है, वैसा ही सुख-दुःख भोगता है। प्रत्येक जीव सुख और दुःख लेकर ही जन्म लेता है[6]। इसलिए तुम सब धर्माचरण करो, अधर्म से निवृत्त हो जाओ। देवता व ब्राह्मणों की सेवा करो। शोक और दीनता का परित्याग करो। पुत्र-स्नेह से निवृत्त होओ और बालक को इस शून्य स्थान में छोड़कर शीघ्र घर की ओर प्रस्थान करो। मरे हुए के लिए शोक करने से कोई लाभ नहीं।

किं करिष्यथ शोचित्वा मृतं किमनुशोचथ।
सर्वस्य हि प्रभुः कालो धर्मतः समदर्शनः[7]॥

संसार की तो यही गति है कि युवक, बालक, वृद्ध, गर्भस्थ सभी काल-कवलित होते हैं[8]।

---

१. बहुरूपो मुहूर्तश्च जीवेतापि कदाचन। (महा० आप० १४९।१५)

२. संततिः शुद्धवंश्या हि परत्रेह च शर्मणे (रघुवंश—१ सर्ग)

३. महाभा० आप० १४९।२४।

४. त्यक्त्वा कथं गच्छयेमं पद्मलोलायताक्षकम्।
यथा नवोद्वाहकृतं स्नानमाल्यविभूषितम्॥ (वही—२६)

५. महाभा० आप० १४९।३२।

६. वही—१४९।३३।

७. वही—१४९।१४०।

८. वही—१४९।४१।

इस प्रकार गृद्ध के वचन को सुनकर वे बान्धव लोग इसके वचन पर विश्वास करते हुए संसार के इस सतत नियम को मानते हुए पुनः घर जाने को तैयार हुए। तब तक सियार ने पुनः उन मनुष्यों को रोका और कहा—'यह गृद्ध व्यर्थ ही प्रलाप कर रहा है। इसके बहकावे में तुम लोग क्यों आ रहे हो? मैं कहता हूँ तुम लोग इस प्राणरहित बच्चे को मत छोड़ो। कभी-कभी तो दैवकृपा से मृत्यु को प्राप्त हुआ व्यक्ति भी जीवित हो जाता है। शम्बूक द्वारा मारा गया ब्राह्मण का इकलौता बच्चा राम के द्वारा जीवित कर दिया गया। इसी तरह राजर्षि श्वेत का बालक पञ्चत्व को प्राप्त हुआ था; परन्तु धर्मनिष्ठ श्वेत ने अपने तपोवल से उसे जीवित कर दिया था। हो सकता है, कोई सिद्ध, मुनि, देवता तुम लोगों के करुण-क्रन्दन को सुनकर तुम पर दया कर दे'[1]।

भीष्म जी ने कहा—पाण्डु-पुत्रो! सियार के ऐसे वचन को सुनकर शोकाकुल बान्धव लोग घर जाने से निवृत्त होकर मृत बालक का शिर गोद में रख कर जोर-जोर से विलाप करने लगे। गृद्ध ने इन्हें पुनः अपने पुराने उपदेशों को देना प्रारंभ किया और उन बान्धवों को लौट जाने के लिए समझाया। इतना ही नहीं, गृद्ध ने कहा कि सियार यदि अपने समान सैकड़ों शरीर प्रदान करे, तो भी सैकड़ों वर्षों में भी यह बालक जीवित नहीं हो सकता। हाँ, यदि रुद्रदेव, स्वामी कार्तिक, ब्रह्मा अथवा विष्णु इसे वरदान दें, तो सम्भव है कि यह जीवित हो सकता है;[2] किन्तु ऐसे ही अगर ये देवता लोग सब पर कृपा करते फिरें, तो हर एक व्यक्ति अपने अभीष्ट को रो-पीट कर जीवित कर ले। देखो, यह बालक न तो नेत्र से देख रहा है और न तो अंग ही हिला रहा है। अतएव इसके पीछे व्यर्थ विलाप करने से कोई लाभ नहीं।

गृद्ध के इस वचन को सुनकर पुनः उन बान्धवों के मन में आया कि वस्तुतः हम सबों के व्यर्थ के विलाप से कोई लाभ नहीं होनेवाला है। अतः वे लोग शिशु को पुनः भूमि पर सुप्त छोड़ कर जाने को उद्यत हुए। पुनः सियार ने उन्हें विविध प्रकार से समझाया और कहा कि मुझे ऐसा आभास होता है कि रात्रि में इस स्थान पर निवास करने से यह बालक अवश्य ही जीकर तुम लोगों को सुख प्रदान करेगा[3]। अतएव तुम लोग इसे छोड़कर मत जाओ।

भीष्म जी ने पाण्डुपुत्रों से कहा कि सियार ने स्वार्थसिद्धि के लिए ही उन्हें इस प्रकार की अमृत के समान धर्म-विरोधी बातें समझा रहा था और उधर गृद्ध भी अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए इस प्रकार के धर्मसंयुत वचन कह रहा था। इस प्रकार दोनों ही भूखे-प्यासे अपनी-अपनी कार्य-सिद्धि में लगे थे और जाने से निवृत्त कर रहे थे। उधर भेड़िया सोचता था कि दिन डूब जाने पर यह शव मुझे खाने को मिल जायेगा। गृद्ध भी सोचता था कि दिन रहते ये लोग उस शव को छोड़

---

१. महाभा०—१४९।६२-६४। २. वही—१४९।७१-७२।
३. वही—१४९।८६।

जायें, जिससे उसे खाने को मिल जाय। सियार कहने लगा—जब-तक सूर्य नहीं डूबता है, तब-तक तुम लोग इसे गोद में उठाकर स्नेहयुक्त नेत्रों से देखो। इस मांस-भक्षी गृद्ध के वचन को मत मानो। इस प्रकार उन दोनों के बीच परस्पर विवाद होने लगा। गिद्ध कहता अभी सूर्य अस्त नहीं हुआ है और सियार कहता कि सूर्य डूब चुका है[1]।

इस प्रकार गिद्ध और सियार दोनों ही अपना काम बनाने के लिए तैयार हुए थे और दोनों ही भूख-प्यास से कातर हो शास्त्र का आधार लेकर बातें कर रहे थे। वे लोग कभी उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियार के वचन को सुनकर प्रभावित होकर ठहर जाते, तो कभी घर की ओर प्रस्थान करने में उद्यत होते[2]। इस प्रकार परस्पर विवाद करनेवाले उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियार तथा वहाँ पर स्थित बान्धवों के समीप भगवान् शंकर प्रकट हुए। उन्होंने उन मनुष्यों से कहा कि मैं शूलधारी वरदाता शंकर हूँ। तब उन मनुष्यों ने भगवान् शंकर के चरणों में प्रणाम करते हुए कहा कि भगवन्! यह मेरा एकमात्र प्रिय पुत्र मर गया है, इसलिए आप कृपाकर इसे पुनः जीवित करके हम लोगों को अनुगृहीत कीजिए[3]।

भगवान् शंकर ने तत्काल उस बालक को जीवित कर दिया और उसे सौ वर्षों की आयु प्रदान की। साथ ही साथ उस गिद्ध और सियार को भी क्षुधा-शान्ति का वरदान दिया[4]।

इस प्रकार से वे सभी बान्धव उस बच्चे को जीवित पाकर हर्ष से प्रफुल्लित होकर अपने घर को प्रस्थान किये।

भीष्म जी कहते हैं कि उत्साह, दीर्घ-प्रयत्न और सुदृढ़ निश्चय से भगवान् देवाधिदेव (देवेश्वर) अतिशीघ्र ही मनोवाञ्छित फल को प्रदान करते हैं।

अनिर्वेदेन दीर्घेण निश्चयेन ध्रुवेण च।
देवदेवप्रसादाच्च क्षिप्रं फलमवाप्यते[5]॥

उपर्युक्त नैमिषोपाख्यान से विदित है कि देवदेवेश्वर भगवान् शंकर की महिमा अवर्णनीय है। उनके कृपाप्रसाद से मृतक को भी 'मृत-संजीवनी विद्या' से जीवन प्राप्त हो सकता है। इस कथा से नैमिषारण्य में भगवान् शंकर का प्रभुत्व विशेषरूप से झलकता है। आज भी शंकर यहाँ के पूज्य देव माने जाते हैं।

---

१. वही—१४९।१०१-१०२।
२. वही—१४९।१०३।
३. वही—१०९।१०७-१०८।
४. एवमुक्तः स भगवान्वारिपूर्णेन पाणिना।
जीवं तस्मै कुमाराय प्रादाद्वर्षशताय वै॥ (वही।१४९।१०९)
५. वही—१४९।११२ स्वाध्यायमण्डल, महा० शान्तिपर्व, सन् १९७९।

महाकाल एवं करन्धम-आख्यान—

ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों ही अभिन्न हैं। एक बार करन्धम ऋषि के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि कुछ लोग शिव को आश्रय लेकर उनकी पूजा करते हैं और कुछ विष्णु को आश्रय मानकर विष्णु की उपासना करते हैं और इन्हें मोक्ष का प्रदाता बतलाते हैं। इस कारण हे महाकाल! मेरे मन में भारी ऊहा-पोह है। इसलिए आप ही हमें बतलावें कि हम किस देवता की उपासना करें? करन्धम के वचन को सुनकर महाकाल ने कहा—करन्धम से तीनों ही देव अपार वैभववाले हैं। योगीन्द्र-मुनीन्द्र भी इनका पार नहीं पाते हैं और इस विषय में वे मोहित हो जाया करते हैं। इस सम्बन्ध में मैं एक प्राचीन घटना सुना रहा हूँ, सुनो—प्राचीनकाल में एक बार इसी तरह से नैमिषारण्यवासी मुनियों के मन में भी यह शंका उत्पन्न हुई कि विष्णु को श्रेष्ठ माना जाय अथवा ब्रह्मा या शिव को! इस प्रकार से वे लोग सन्देह के निवारणार्थ श्रेष्ठता को जानने के लिए ब्रह्मलोक को गये। उस समय ब्रह्मा ने कहा—'उस अनन्त को नमस्कार है, जिसका अन्त ही नहीं मिलता' तथा उस महेश को नमस्कार है, जिन दोनों की कृपा हम पर सर्वदा रहती है'[1]। इस प्रकार उस ब्रह्मा को श्रेष्ठ मानते हुए वे मुनि लोग क्षीर-सागर पहुँचे, जहाँ पर विष्णु जी शेषनाग पर शयन कर रहे थे। वहाँ भी योगेश्वर विष्णु ने इस श्लोक का उच्चारण करते हुए मुनियों से कहा—

ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्।
सदाशिवं च तं वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे[2]॥

अर्थात् समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मरूप ब्रह्मा एवं सदैव कल्याण करनेवाले सदाशिव इन दोनों की मैं वन्दना करता हूँ। ये दोनों ही मेरा मङ्गल करनेवाले होवें।

विष्णु के इस वचन को सुनकर वे मुनि लोग पुनः आश्चर्यान्वित होकर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पहुँच कर देखते क्या हैं कि भगवान् शंकर गिरजा से कह रहे थे—

एकादश्यां प्रनृत्यानिजागरे विष्णुसद्मनि।
सदा तपस्यां चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः[3]॥

तात्पर्य यह कि भगवान् विष्णु और ब्रह्मा का एकादशी के दिन रात्रि में विष्णु के मन्दिर में जागरण करना चाहिए तथा नृत्य करना चाहिए। इसी से वे प्रसन्न होते हैं। हे पार्वति! इसी कारण मैं उनकी तपस्या करता हूँ। भगवान् शिव के वाक्य

---

१. अनन्ताय नमस्तस्मै यस्याऽन्तो नोपपद्यते।
महेशाय च भक्ते द्वौ कृपायेतां सदामपि॥ (स्कन्द० माहे० ४१।४-५)

२. तदेव—४१।६-७; ३. तदेव—४१।७-८।

को सुनकर वे मुनि लोग लौट आये और परस्पर खिन्न मन से कहने लगे कि जिनका देवता लोग भी पार नहीं पाते हैं तथा जो परस्पर किसी के पार को नहीं पाते हों, ऐसे उस ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर के समक्ष हम लोगों की क्या गणना ? वास्तव में जो लोग इन्हें उत्तम, मध्यम, अधम बतलाते हैं, निश्चय ही वे आत्मवादी घोर नरक को जाते हैं। इनमें कोई न तो बड़ा है और न ही छोटा। इस प्रकार नैमिषारण्य के मुनि लोग परस्पर इस निर्णय पर पहुँचे। वेदों में भी **'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'** इसी उपर्युक्त बात की पुष्टि हुई है। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन से उपर्युक्त बातों को स्पष्ट करते हुए कहा कि लोग जिन-जिन भावों से मेरी उपासना करते हैं, मैं उन-उन रूपों में प्राप्त हुआ करता हूँ।

यो यो यां यां तनुं भक्त्या श्रद्धयाचिर्तुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्[1]॥
देवान्देवयजो यान्ति यान्ति पितॄन्पितृव्रताः।
भूतेज्या यान्ति भूतानि यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्[2]॥

इसी निर्णय को महाकाल भी करन्धम को बतलाते हुए कहते हैं कि जिस व्यक्ति का जिस देवता में अनुराग हो, वह उस देवता को भजे और पापमुक्त होवे।

तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन्देवे भवेत्स्फुटम्।
स तं भजेद्विपापः स्यान्ममेदं मतमुत्तम्॥[3]
(स्कन्द० माहे० ४१।१४)

उपर्युक्त प्रसंग महाकाल करंधम-संवाद नाम से प्रसिद्ध है। इसमें सर्वदेव समन्वय की बात कही गयी है, जिसको नैमिष के ऋषियों-मुनियों के प्रसंग को जोड़कर अति रुचिकर बनाया गया है। यह बात सत्य ही है कि जो विष्णु हैं, वही शिव हैं, और जो ब्रह्मा हैं और जो शिव हैं वही ब्रह्मा और विष्णु हैं और जो ब्रह्मा हैं वही शिव और विष्णु हैं। इनमें मात्र स्रष्टा, पालनकर्ता और संहर्ता का कार्य-भेद कहा जा सकता है; किन्तु ये सभी मूलरूप से एक ही हैं।

चित्राङ्गदा और सुरथ का आख्यान—

वामनपुराण में नैमिष में घटनेवाली इस कथा का बड़े ही मनोहर ढंग से वर्णन किया गया है[4]। प्राचीनकाल में विदर्भ देश में सुदेव नामक एक राजा थे। उन्हें सुरथ नामक एक अत्यन्त बुद्धिमान् और सर्वलक्षण सम्पन्न पुत्र हुआ, जो कि कामदेव के समान अत्यन्त सुन्दर था। एक दिन ये शिकार खेलते हुए नैमिषारण्य आये। यहाँ पर टहलते हुए वे गोमती के सुरम्य तट पर पहुँचे। उसी समय विश्वकर्मा की पुत्री चित्राङ्गदा अपनी सखियों के साथ स्नान करने के लिये आई थी—

---

१. गीता। २. स्कन्दपुराण, माहे०—४१।१४।
३. बृहन्नारदीय—१४।२१३-२१४। ४. वामनपुराण—३७।३९-४०।

विश्वकर्मा सुता साध्वी नाम्ना चित्राङ्गदाऽभवत् ।
रूपयौवनसम्पन्ना .... पद्मिनी ।।

सा कदाचिन्महारण्यं सखीभिः परिवारिता ।
जगाम नैमिषं नाम स्नातुं कमललोचना[1] ।।

राजा सुरथ की दृष्टि अचानक उस चित्रांगदा के रूप-लावण्य पर पड़ी। उस समय ऐसा लगा मानों उसे कामदेव के बाणों ने बाँध दिया हो। वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी समय चित्रांगदा की भी दृष्टि उस राजकुमार पर पड़ी। वह भी उसके रूप-लावण्य को देख कर मुग्ध हो गयी। उसने राजा के अन्तर्भाव को जान लिया। इस घटना को उसने अपनी सखियों से ठीक-ठीक बता दिया कि यह पुरुष मुझे देखकर कामासक्त हो रहा है, अतः इसे अपने को समर्पित कर देना चाहिए। उसके इस विचार को सुनकर सखियों ने उसे वारम्वार समझाया और कहा कि तुम स्वेच्छा से अपने को आत्मदान नहीं कर सकती और न ही तुम्हारे लिए यह उचित ही है। सखियों के द्वारा समझायी जाती हुई उस चित्राङ्गदा के पास सुरथ पहुँच कर अत्यन्त कामदाह से प्रपीड़ित होते हुए बोला—मदिरेक्षणे ! तुम दृष्टि से ही मुझे दग्ध कर रही हो। मदन ने तुम्हारे दृष्टिरूपी बाण से मुझे आहत कर दिया है। अतएव मुझ कामासक्त की रक्षा करो। राजा के ऐसे वचन को सुनकर सखियों के मना करने पर भी उसने अपने को राजा को समर्पित कर दिया।

जब उसके पिता विश्वकर्मा को इस घटना का पता चला, तो उसने चित्राङ्गदा को शाप दे दिया। यतः तुमने स्त्री-स्वभाववश धर्म का परित्याग कर स्वयं को प्रदान कर दिया है, अतः तुम्हारा विवाह नहीं होगा। विवाह न होने से तुम्हें पति और पुत्र का भी सुख नहीं मिल सकेगा। बस क्या था ? शाप देते ही राजा को सरस्वती नदी तेरह योजन बहा ले गयी। राजा के दूर चले जाने पर वह चित्राङ्गदा भी मूर्छित हो गयी। उसकी मूर्छा को शान्त करने के लिए सखियों ने अनेक उपाय किये; किन्तु वह मृत तुल्य-सी हो गयी। उसको ऐसा देखकर सखियाँ विह्वल होकर काष्ठ तथा अग्नि लेने चली गयीं। तव तक उसे होश आ गया। उसने न तो सखियों को देखा, न राजा सुरथ को। तदनन्तर पुनः वेहोश होकर वह काञ्चनाक्षी सरस्वती के जल में गिर पड़ी। काञ्चनाक्षी ने उसे वेगपूर्वक गोमती के तरंगों में फेंक दिया। भवितव्यतावश गोमती ने भी उसे ले जाकर सिहों तथा व्याघ्रों से घिरे वन में फेंक दिया। उसी समय उसे गगनचारी अंजन नामक गुह्यक ने देखा। अंजन ने जाकर उसे धीरज बँधाया और कहा कि तुम्हें राजा सुरथ अवश्य ही मिलेगा। अतः तुम शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने जाओ। उसके ऐसा कहने पर वह कालिन्दी में स्थान कर

---

१. महाभारत में मणिपुर के राजा चित्रवाह की कन्या का नाम भी चित्राङ्गदा प्राप्त होता है। 'तस्य चित्राङ्गदा नाम दुहिता चारुदर्शना।'

(महाभारत —१।२१६।१५)

भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने आयी। उसी समय संयोगवश उसी स्थान पर ऋतध्वज नामक पाशुपताचार्य पधारे। उन्होंने देवकन्या सदृश उसे देखकर पूछा— बेटी ! तुम किसकी पुत्री हो ? और क्यों तुम इस निर्जन वन में आई हो ? इस पर उसने अपनी सारी गाथा उस मुनि को सुनायी। उसके वचन को सुनकर ऋषि क्रुद्ध हुए और उन्होंने शिल्पियों में श्रेष्ठ विश्वकर्मा को शाप दे दिया, जिससे वे शाखामृग हो गये।

इस प्रकार से वामनपुराण में यह कथा बड़े ही विस्तारपूर्वक दी गयी है। अन्ततोगत्वा चित्रांगदा और सुरथ का मिलन हो जाता है। यद्यपि कथा की दृष्टि से यह उत्तम है; परन्तु इसका भौगोलिक विश्लेषण करने पर इसके स्थानों में परस्पर भ्रम उत्पन्न होने लगता है।

धर्मारण्योपाख्यान—

महाभारत के शान्तिपर्व में धर्मारण्य नामक एक मुनि का आख्यान आया हुआ है, जिसका सम्बन्ध इस नैमिष से है[1]। इसलिए हम यहाँ पर उस आख्यान को संक्षिप्तरूप से प्रस्तुत करना उचित समझते हैं। 'प्राचीन काल में गङ्गा के सुरम्य पावन तट पर महापद्मपुर नामक कोई स्थान था। उसमें कोई एकाग्रचित्तवाला ब्राह्मण रहता था, जिसका नाम था धर्मारण्य। वह बड़ा ही सौम्य, वेदज्ञानी, धर्मरत, अक्रोधी, और जितेन्द्रिय था। वह स्त्री-पुत्र-धन सबसे परिपूर्ण था। आश्रमधर्मानुसार उसने अपने पुत्रों के ऊपर घर का सर्वस्व भार सौंपकर लौकिक कार्यों से विरक्त हो धर्माचरण करने में ही तत्पर रहता था। एक दिन उसने मन ही मन चिन्तन किया कि क्या करने से मेरा कल्याण होगा ? मेरा कर्त्तव्य क्या है ? मुझे किस धर्म का अवलम्बन करना चाहिए ? इन सब बातों को सोचकर वह दुःखित होता था; किन्तु कुछ भी निर्णय नहीं कर पाता था। दैववशात् उस किंकर्तव्यविमूढ़ ब्राह्मण के घर एक समाहित अतिथि ब्राह्मण आया। उसने अतिथि को सम्मानपूर्वक आसन पर बैठाया[2]। अतिथि-सत्कार के बाद उसने अपने अन्तर्मन की बात उस अतिथि से कही—हे विप्रवर ! मैंने पुत्रोत्पादनपर्यन्त गृहस्थ धर्म का प्रतिपालन किया है[3]। इस समय कौन से परम धर्म का अवलम्बन करूँ, अथवा किस मार्ग का सहारा लूँ ? मैंने आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अकेले रहने की इच्छा की है; किन्तु सांसारिक विषयपाश इतने प्रबल हैं कि मैं कुछ भी नहीं कर पाता हूँ। अब तक तो मेरी आयु पुत्रों से फल प्राप्त करने की कामना में बीती; किन्तु अब मैं पारलौकिक पाथेय को प्राप्त करने की चेष्टा करता हूँ। आप ही मुझे बतायें कि इस संसार को पार करने के लिए मुझे

---

१. महाभारत, शा० पर्व—३४१।१-३।

२. वही—३४१।७-९।

३. गृहस्थधर्मं विप्रेन्द्र कृत्वा पुत्रगतं त्वहम्।
धर्मं परमकं कुर्यां को हि मार्गो भवेद्द्विज ॥ (महा० भा०, शान्ति० ३४२।२)

धर्मरूपी नौका कहाँ प्राप्त हो सकती है? मैं देखता हूँ कि संसार में सात्त्विक पुरुष भी विषयों से पीड़ित होते रहते हैं। परिव्राजक लोग दूसरों के घर जाकर अन्न माँगते हैं, इससे मेरा मन यतिधर्म में भी अनुरक्त नहीं होता। इसलिए हे अतिथि! तुम ही मुझे कोई उपयुक्त मार्ग बतलाने की कृपा करो।

धर्मारण्य नामक ब्राह्मण के इस वचन को सुनकर अतिथि ने मधुर वाणी में कहा—'ब्रह्मन्! मैं भी इस विषय में मोहित हो रहा हूँ। मेरी भी यही मनोकामना है। अनेक द्वारवाले, साधनवाले मोक्ष के विषय में मैं भी निश्चित नहीं कर पा रहा हूँ। कुछ लोग तो मोक्ष की प्रशंसा करते हैं और कुछ लोग यज्ञफल को श्रेष्ठ बतलाते हैं। कोई वानप्रस्थ का अवलम्बन करके धर्म रत हैं, तो कुछ गृहस्थाश्रम को ही परम-साधन मानते हैं। कुछ लोग गुरुशुश्रूषा, कुछ मौनव्रत, कुछ माता-पिता की सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति मानते हैं, कुछ अहिंसा और सत्य से भी स्वर्ग-प्राप्ति कहते हैं। कुछ लोग संग्राम में युद्ध करते हुए मारे जाने को स्वर्ग का द्वार बताते हैं। कितने लोग उञ्छवृत्ति का अनुष्ठान करने से सिद्ध हो स्वर्गगामी हुए हैं। कुछ वेदव्रत से, कुछ स्वाध्याय से, कुछ जितेन्द्रिय होकर स्वर्ग में गमन किये हैं। हे ब्राह्मण! जैसे वायु के वेग से बादल इधर-उधर हो जाते हैं, वैसे ही संसार के अनेक अनावृत धर्मों से मेरी भी बुद्धि भ्रमित हो रही है'[१]; किन्तु ब्रह्मन्! मेरे गुरुदेव ने जैसा कि पहले मुझे तात्त्विक उपदेश दिया है, उसी के अनुसार मैं ज्यों का त्यों तुमसे बता रहा हूँ। तुम इस विषय को मन लगाकर सुनो।

पुराकल्प में जिस स्थान पर धर्मचक्र-प्रवर्तित हुआ था, उस नैमिष तीर्थ में गोमती के पावन तटपर नागपुर नामक एक नगर है[२]। हे द्विजवर! उस स्थान पर समस्त देवों ने यज्ञ किया था। यहाँ पर यज्ञ करके राजसत्तम मान्धाता इन्द्र से भी आगे बढ़ गये थे। उसी स्थान में महान् महात्मा पद्मनाभ नामक पद्म इस नाम से विख्यात महान् चक्षुःश्रवा महानाग वास करता है। वह कर्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों मार्गों में स्थित हो मन, वचन और कर्म से प्राणियों को प्रसन्न करता है[३]। वह साम-दाम-भेद-दण्ड इन चारों ही उपायों से विषयस्थ पुरुषों को राह पर लाता है और नाना प्रकार से मनुष्य को कुमार्ग से बचाता है[४]। आप उसी की शरण में जाओ, वही तुम्हारी इस शंका का समाधान करेगा। यह सुन वह नैमिषारण्य आया और नागराज से उञ्छवृत्ति का ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर उसे शान्ति प्राप्त हुई।

---

१. महाभारत, शान्ति०—२४२।१०-१६।

२. वही—२४३।२।

३. कृताधिवासो धर्मात्मा तत्र चक्षुःश्रवा महान्।
पद्मनाभो महानागः पद्म इत्येव विश्रुतः॥ (वही २४३।४)

४. वही—२४३।६।

नैमिषारण्य में स्थित मन्दिर एवं आश्रम

सप्तम अध्याय

(१) **अखण्ड-धाम**—स्वामी अचिन्त्यानन्द जी के संरक्षण में यह आश्रम सन् १९७७ में स्थापित हुआ। वर्तमान बस अड्डे से सटे हुए उत्तर की ओर है।

(२) **अयोध्या-मन्दिर**—पवित्र सलिला गोमती के तट के पूर्वी भाग में स्थित अयोध्या में मौनी बाबा के द्वारा एक भव्य मन्दिर बनवाया गया, जो कि अपने समय के मन्दिरों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। आजकल देखरेख के अभाव में इस स्थल की शोभा समाप्त होती जा रही है।

(३) **अहोविल-मठ (नृसिंह-मन्दिर)**—गोपाल मन्दिर से सटे हुए ही पूर्व की ओर यह आश्रम विद्यमान है। इसके संस्थापक थे अहोविल स्वामी, जिसके स्वामी कृष्णाचार्य जी महाराज हैं। वैसे इसके संस्थापक दाक्षिणात्य होने के कारण इसे मद्रासी आश्रम के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ पर नृसिंह भगवान् का भव्य मन्दिर है, जिसकी सुबह शाम पूजा-आरती हुआ करती है।

(४) **आजाद-आनन्दाश्रम**—गोमती के पावन तट पर अपनी रमणीयता को बिखेरता हुआ यह आश्रम अतीव सुखदायक एवं स्वच्छता का प्रतीक है। १०४ वर्षीय स्वामी रामानन्द जी परमहंस, जिन्हें सुरीले स्वामी के नाम से जाना जाता है, ने इस आश्रम की स्थापना लगभग १९२४ ई० में की थी। यह आश्रम एक भव्य उपवन की याद दिलाता है। स्वामी जी आज भी विद्यमान हैं, जिन्होंने साक्षात्कार के बीच यह बतलाया कि जिस समय मैं आया उस समय यह दशाश्वमेध का पश्चिमी भाग श्मशान था; किन्तु इसे आज यह भव्यरूप मिला है।

(५) **उड़िया स्वामी आश्रम**—यह स्थान अपनी महनीय तपस्या की तेजो-राशियों को आज भी बिखेर रहा है। प्रसिद्ध नागा संत उड़िया स्वामी के तप से यह भी पवित्र है। पूर्णकाम इन महात्मा की तपस्या के प्रभाव से आज भी लोग तद्वत् अपने को इस स्थान से कृतकृत्य कर रहे हैं। वहाँ पर एक संस्कृत पाठशाला वेदव्यास के नाम पर चल रही है। यहाँ के प्रथम आचार्य एवं संस्थापक पं० मंगलदत्त शास्त्री जी नैमिष उत्थान में सर्वाधिक प्रशंसनीय हैं।

(६) **कमलकुञ्ज-आश्रम**—यह एक वैष्णवाश्रम है। इसकी स्थापना १९६७-६८ में यतिराजाचार्य स्वामी के द्वारा की गयी है। यह आश्रम रामानुज कोट (नैमिषनाथ) मंदिर के दक्षिणभाग में स्थित है। यहाँ पर 'बाल गोपाल' भगवान् का एक छोटा सा मन्दिर है।

(७) कश्यप-मन्दिर—व्यास-गद्दी के ही सन्निकट कश्यप मन्दिर के नाम से एक छोटी सी मठिया है। जनश्रुति है कि कश्यप और अदिति ने यहाँ पर तपस्या की थी। यहाँ पर काश्यपी गङ्गा नाम का एक कुण्ड भी प्राप्त होता है, जो कश्यप द्वारा लायी गयी गङ्गा को प्रमाणित करता है। विशेष विवरण के लिए देखें काश्यपी गङ्गा।

(८) काशीकुण्ड—नैमिषारण्य के क्षेत्रान्तर्गत काशी भी है। यहाँ एक कुण्ड बना है, जिसे काशी कुण्ड के नाम से जाना जाता है। इसी कुण्ड के ठीक पश्चिमी तट पर एक अन्नपूर्णा का छोटा सा भव्य मन्दिर बना है। यहाँ पर लोग क्वार के पितृपक्ष में तथा मास में मृतक शरीर का पुतला जलाते हैं तथा ऐसा मानते हैं कि उन्होंने अपने पिता को पवित्र काशी में ही जलाया है। जिसमें विशेषरूप से शिव के लिङ्ग ही स्थापित हैं। अरण्य का निर्जन एवं शान्तस्वरूप आज भी यहाँ द्रष्टव्य है।

(९) केशवदास-आश्रम—बाराबंकी जिले के स्व० केशवदास जी के द्वारा इस आश्रम की स्थापना की गयी थी। यह वैष्णवाश्रम है, जिसमें सीता, राम, लक्ष्मण की मूर्तियाँ स्थापित हैं और सामने हनुमान् की मूर्ति बनी है। इसे 'कुर्मी' आश्रम भी कहा जाता है। यह हनुमान् नदी से पश्चिम नीचे को तरफ स्थित है।

(१०) गंगादास-आश्रम—प्राचीन ललिता देवी-मन्दिर के उत्तरीभाग में सटा हुआ प्रथम आश्रम है। इसके महन्त हैं हरीदास जी। यह आश्रम लगभग ३० वर्ष प्राचीन है। इनमें प्रथम शिव-मंदिर तथा दूसरा राम-जानकी का मंदिर है। यहाँ पर वैष्णव सन्त लोग निवास करते हैं।

इस आश्रम के उत्तरी भाग में लगभग ४-५ छोटे-छोटे अन्य आश्रम हैं, जिनमें सन्त-महात्मा लोग रहते हैं।

(११) गड़रिया-आश्रम—देवी-मंदिर को जानेवाली सड़क के उत्तरी भाग में निर्मित है। गड़रिया (भेड़-पालक) लोगों के द्वारा स्थापित होने के कारण यह इस नाम से विख्यात है।

(१२) गोपाल-मन्दिर—नेपाली-मन्दिर के ही दक्षिण की ओर हनुमान् गढ़ी मार्ग पर यह आश्रम बना हुआ है। इसकी स्थापना स्वामी गोपाल दास एवं मधुसूदन दास ने १९६४ ई० के आस-पास की थी। यह भी वैष्णवाश्रम है, जहाँ दूर-दूर से आने वाले वैष्णवों का आतिथ्य हुआ करता है। राधा और कृष्ण की सुन्दर विग्रह-मूर्ति स्थापित है।

(१३) गोपालदास-आश्रम—प्रजापति से सटे हुए यह वैष्णवाश्रम बना है।

(१४) चक्रतीर्थ पर स्थित मन्दिर—चक्रतीर्थों के पश्चिम में नैमिषनाथ का मन्दिर है। इसके उत्तर में गणेश-मन्दिर है, जो कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बनवाया बताया जाता है। पुनः इसके भी उत्तर में एक शिव-मन्दिर बना है,

इसे लोग पञ्चमुखी ब्रह्मा का मन्दिर कहते हैं। इससे सटा हुआ उत्तर की ओर प्राचीन वदरीनारायण का मन्दिर है। प्रायः यहाँ पर वेत इत्यादि लोग लाकर चढ़ाते हैं। इससे पूर्व उत्तर में राधा-कृष्ण का मन्दिर है। पुनः इससे भी पूर्व भगवान् भूतेश्वर नाथ का मन्दिर है, जो कि अत्यधिक प्राचीन व महत्त्वपूर्ण है। इसी से सटा हुआ हनुमान् मन्दिर भी है। उसके भी पूर्व-दक्षिण में रामधाम तथा उसी से सटा हुआ दक्षिण-पूर्व में गोकर्णेश्वर महादेव का एक मन्दिर है। उससे भी दक्षिण-पश्चिम बरगद-वृक्ष के नीचे सरस्वती का छोटा सा मन्दिर है। इससे भी पश्चिम दिशा की ओर सूर्यमन्दिर के नाम से विख्यात एक छोटा सा मन्दिर है। इसके सम्वन्ध में लोगों का कथन है कि जब अहिल्यावाई चक्रतीर्थ का परिमार्जन करवा रही थीं तथा वहीं पर एक धर्मशाले का निर्माण करवा रही थीं, तो उनके साथ ही एक श्रेष्ठ ब्राह्मण आये थे, जिन्होंने तब तक अनुष्ठान इसी स्थान पर किया था, जब तक कि निर्माण कार्य पूरा नहीं हुआ। उनके हाथों बना हुआ एक श्रीचक्र भी मंदिर में विद्यमान है। इसमें एक शिवलिङ्ग की भी स्थापना है।

(१५) **चन्द्रभगवान्-मन्दिर**—ललिता देवी मन्दिर के पश्चिमोत्तर भाग में यह मंदिर बना है। इसको उदासीन बड़ा अखाड़ा नाम से जाना जाता है। इसकी स्थापना १९६२ ई० में हुई थी।

(१६) **जगन्नाथ-मन्दिर**—यह जगन्नाथ मन्दिर पहले तो गोमती और चक्रतीर्थ के बीच नाले पर स्थित था; किन्तु १९५५ की बाढ़ में बह जाने से यह अब उससे हटकर पश्चिम तरफ बना है। इस मन्दिर के पुराने संस्थापक बाबा श्री निवासाचार्य जी ने बतलाया कि यह स्थान बड़ा ही पुराना था। अब उन्होंने जगन्नाथ जी के साथ-साथ वेङ्कटेश की भी मूर्ति स्थापित कर रखी है। इसके उत्तराधिकारी अब कमलनयनाचार्य हैं। यह दशाश्वमेध घाट से उत्तर और नृसिंह-मन्दिर से पूरब में स्थित है।

(१७) **जानकी कुण्ड (बड़ी छावनी)**—यह ललिता-मंदिर के पूर्व में स्थित है। यह छावनी अयोध्या में स्थित बड़ी छावनी की एक शाखा है। यहाँ श्रीसीता और राम की एक मूर्ति प्रतिष्ठापित है। ठीक सामने मंदिर में हनुमान् जी सेवक के रूप में स्थित हैं। प्रतिदिन भजन-कीर्तनादि हुआ करता है। यह स्थान अन्य स्थानों से जागृत है। यहाँ वैष्णवों का प्रमुखरूप से संगम है।

(१८) **टाटम्बरी-आश्रम :**—विशेषरूप से टाट-पट्टी पहनने व धारण करने के कारण इसका नाम टाटम्बरी पड़ा। ये बाबा जी बड़े ही फक्कड़ प्रसन्नचित्त रहने वाले हैं। इनके आश्रम से पश्चिम की ओर वर्तमान मुरादाबाद आबादी के अन्तर्गत ४-५ छोटे-छोटे साधुओं के कबीले हैं, जहाँ ये नित्यप्रति ईश्वराराधन में लगे रहते हैं।

(१९) **तोताद्रिमठ (वेङ्कटेश-मन्दिर)**—रामानुज सम्प्रदाय के ही अनुयायी स्वामी अनन्ताचार्य के परमशिष्य श्री स्वामी कमलनयनाचार्य जी के द्वारा इस आश्रम

की नींव आज से लगभग २५ साल पूर्व डाली गयी थी। विशेषरूप से यह नेपाली लोगों की ही धार्मिक चेतना का परिणाम है। आज भी यह आश्रम कमलनयनाचार्य जी के परमशिष्य देवनायकाचार्य के द्वारा प्रगतिपथ पर है। शेषवेङ्कटेश की मनोहारिणी मूर्ति बड़ी ही दिव्य है। इसकी अयोध्या और नारायण धार नेपाल में भी शाखाएँ है।

(२०) **त्यागी-आश्रम**—त्यागी नाम से प्रसिद्ध बाबा प्रेमदास जी के द्वारा स्थापित है। लगभग यह आश्रम ३० साल प्राचीन है।

(२१) **दयालदास मौर्य आश्रम**—मौर्य (मुराव) महात्मा के द्वारा स्थापित है। स्वामी दयालदास जी इसके संस्थापक हैं। यह लगभग २० वर्ष प्राचीन है।

(२२) **नागा आश्रम**—अर्जुनशरण नाम के नागा बाबा द्वारा स्थापित है। विशेष रूप से नागा सम्प्रदाय वालों का यह आश्रम है।

(२३) **नारदानन्द-आश्रम** :—नैमिषारण्य में विद्यमान सभी आश्रमों से यह बड़ा और महत्त्वपूर्ण है। समस्त आश्रमों का इसे सिरताज कहें, तो अत्युक्ति न होगी। नैमिष पीठाधीश्वर जगदाचार्य स्वामी नारदानन्द जी की तपस्या के परिणामस्वरूप यह आश्रम दिन दूने रात चौगुने पुष्पित और पल्लवित हुआ। इसमें चारों ही आश्रमों के लोग रहते हैं, यथा—ब्रह्मचर्याश्रम जिसमें ब्रह्मचारीगण यहाँ गुरुकुल में अध्ययन करते हैं। गृहस्थाश्रम गार्हस्थ लोग रहते हैं। इसी आश्रम का दक्षिणी भाग वानप्रस्थ और सन्यासियों का है। वस्तुतः यहाँ उटजों में बनी छोटी-छोटी गुफाएँ व यहाँ का शान्तमय वातावरण मन को हठात् हर लेता है और प्राचीन-कालीन शास्त्रों में वर्णित आश्रमों की याद दिलाता है। चातुर्मास्य भर बराबर सन्त महापुरुषों का प्रवचन चला करता है। इस समय स्वामी विवेकानन्द जी के संरक्षण मे यह आश्रम विशेषरूप से पुष्पित-पल्लवित हो रहा है। यहाँ पर बहुत से मन्दिर हैं, जो कि मन को हरने वाले हैं। निर्माणाधीन देवपुरी इस आश्रम का ताज है। हनुमान् मन्दिर पञ्चदेव मन्दिर १००८ शिवलिङ्ग, शौनक कुटी, पञ्चमुखी महादेव व स्वामी जी का समाधि-स्थल प्रमुखरूप से दर्शनीय है। यह आश्रम नैमिष का प्राण है।

(२४) **निर्भयदास-आश्रम**—इसके स्वामी हैं निर्भयदास जी। इनका एक आश्रम हरियाणा में भी है। यह वर्तमान बस अड्डे से उत्तरी भाग में स्थित है। स्थापना काल लगभग १९७० ई० है।

(२५) **परमहंस-आश्रम**—स्वामी परमहंस जी के द्वारा स्थापित होने के कारण इनकी राम-जानकी में बड़ी ही निष्ठा है। लगभग १९६५ में यह स्थापित हुआ।

(२६) **पञ्चमुखी हनुमान् मन्दिर**—पञ्चप्रयाग से पूर्वोत्तर में सटा हुआ एक आश्रम है। इसमें पञ्चमुख हनुमान् की आदमकद मूर्ति स्थापित है। यहाँ पर बहुत से वैष्णव लोग निवास करते हैं।

(२७) **प्रजापति-आश्रम**—यह लगभग १९८० में प्रजापति साधु के द्वारा स्थापित है। यह ललिता देवी-मंदिर से पूर्व में स्थित है।

(२८) **पुराण-मंदिर**—नैमिषारण्य के प्रमुख दार्शनिक स्थानों में से यह विशेष आकर्षक है। श्री श्री माँ आनन्दमयी के भक्तों द्वारा १९६७ में माता आनन्दमयी-आश्रम की स्थापना हुई थी और विशेष आकर्षक पुराण-मन्दिर को बनवाया गया। १९७५ में पुराण-पुरुष की भी स्थापना हुई। यह आश्रम बड़ा ही भव्य है। पर्यटकों एवं दार्शनिकों का मनमोहक है। पुराण मंदिर में अठारहों पुराणों व चारों वेदों की स्थापना की गयी है, जिसका नित्य-प्रति विधि-विधानपूर्वक पूजन होता रहता है। इसी आश्रम में एक अखंड ज्योति व यज्ञशाला भी बनी है। यज्ञशाला की अग्नि प्रायः ५ वर्ष प्राचीन है। इस अग्नि को सर्वप्रथम ढाका से वाराणसी लाया गया था और वाराणसी से उसी अग्नि को नैमिष में लाया गया, जिसे प्रतिदिन हवन आदि के द्वारा सजीव रखा जाता है। यहीं पर १९८० ई० में एक शिव-मन्दिर की भी स्थापना श्री श्री माँ के कर कमलों द्वारा हुई।

(२९) **वेद-मन्दिर**—पहला के महन्त ने १९८३-८४ में यहाँ वेद-मंदिर और वेद-वेदाङ्ग-पाठशाला की स्थापना की। यहाँ पर छोटे-छोटे वटु वेद-विद्या का अध्ययन करते हैं।

(३०) **वैरागीदास-आश्रम**—बाबा वैरागीदास के द्वारा स्थापित है। लगभग २०-२२ वर्ष प्राचीन है। उटजों की शोभा से आश्रम दर्शनीय लगते हैं।

(३१) **भोलाबाबा-आश्रम**—ये बड़े ही सिद्ध महात्मा थे। पहले तो ये सीतापुर से नैमिष में ही निवास कर रहे थे। १९८४ ई० में इनका स्वर्गवास हो गया। इनके शिष्य विद्याधर जी हैं। आश्रम की शोभा दर्शनीय व हृदयग्राह्य है।

(३२) **मनु-सतरूपा**—व्यासगद्दी से पूर्व में स्थित यह स्थान निर्मित है। हनुमान् मन्दिर—यहीं पर छोटा सा हनुमान् का एक मंदिर है, जो कि पूर्व में ब्रह्मावर्त के समीप था। बाद में बाढ़ से प्रभावित होने के कारण इसे यहाँ पर स्थापित किया गया।

(३३) **महाप्रभु की बैठक**—वल्लभाचार्य जी का आगमन इस नैमिष क्षेत्र में हुआ था। इनकी प्रथम बैठक व्यासगद्दी से ५० कदम पूर्व-दक्षिण की ओर गोमती तट पर हुई थी, जहाँ पर एक छोटा सा उनकी स्मृति में स्थान बना है। यह महाप्रभु की बैठक नाम से प्रसिद्ध है।

(३४) **रामदास-आश्रम (तुलसीबाड़ी)**—इसके महन्त रामदास जी हैं। इसमें राम-जानकी का छोटा सा मन्दिर भी बना है। यह लगभग २० वर्ष प्राचीन है।

(३५) **रामदास-आश्रम**—यह औरंगाबाद सड़क के किनारे स्थित है। बाबा रामदास जी इसके संस्थापक हैं।

(३६) राम-शबरी-मन्दिर—इसके महन्त चेतनदास व शंकरदास जी हैं। यह भी वैष्णवाश्रम ही है। यह भी जागृत स्थान है, जहाँ नित्य कुछ न कुछ कार्य-क्रम चला ही करते हैं। शबरी भीलनी का मंदिर है, जो भगवान् के चरण-रजों में सादर समर्पित है। इसी से सटे हुए पञ्चमुखी भगवान् शिव का मंदिर भी है। इसकी स्थापना १९५० में हुई थी। प्रमुखरूप से कैवर्त लोगों का यह आश्रम है।

(३७) लक्ष्मीनारायण-मंदिर—दशाश्वमेध पर ही स्थित लक्ष्मीनारायण का एक प्राचीन मंदिर है, जिसको श्रीविष्णुप्रपन्न श्रीनिवासाचार्य जी ने निर्मित करवाया था। ये दाक्षिणात्य के सिद्ध महात्मा थे। इन्हें सुवर्ण बनाने की प्रक्रिया ज्ञात थी। इनके शिष्य इस समय मधुसूदनाचार्य जी वैद्यराज हैं। यहाँ पर प्रतिदिन कीर्तन-गायन हुआ करते हैं। इसी के दक्षिण में सटे हुए दो मन्दिर विद्यमान हैं। इनमें एक नागेश्वर महादेव का है तथा दूसरा राम का। भगवान् राम ने यहीं पर दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। यह मंन्दिर मुगलकाल का लगता है।

(३८) लक्ष्मीनारायण-मन्दिर—भगवान् के श्रीचरणों में सर्वस्व को समर्पित किये हुए वैष्णव श्रीरामकरण शर्मा व उनकी धर्मपत्नी के द्वारा इस मन्दिर की स्थापना की गयी है। इसमें लक्ष्मी व नारायण की बड़ी ही भव्य मूर्ति स्थापित है।

(३९) हरिहरानन्दाश्रम (ब्रह्मविज्ञानपीठ)—स्वामी १०८ हरिहरानन्द जी ने १९८० में इस आश्रम को संस्थापित किया। यह ब्रह्मविज्ञान-पीठ के नाम से जाना जाता है। स्वामी जी वेदान्त के अच्छे पंडित हैं एवं ज्ञान-चर्चा में पटु हैं।

(४०) सन्तदास-आश्रम—इस आश्रम के संस्थापक व संरक्षक बाबा सन्तदास जी हैं। दो-चार सन्त-महात्मा यहाँ बराबर निवास करते हैं। आश्रम उटजों के मध्य शोभा देता है।

(४१) सावित्री-आश्रम—सावित्री नाम की एक ब्रह्मचारिणी माता जी हैं, जिन्होंने अपने नाम से इस आश्रम की स्थापना की है।

(४२) सितारीबाबा-आश्रम—लगभग ५० वर्ष प्राचीन है। इसके मुख्य संरक्षक दुर्गादास जी हैं। आश्रम छप्परों और उटजों के बीच प्राचीन आश्रमों की शान्ति और सुख को अभिव्यक्त करते हैं।

(४३) सिद्धेश्वर-महादेव—इस मन्दिर की प्राचीनता लगभग ३०० वर्षों से ऊपर होगी। यह अपने समय का बड़ा ही भव्य मन्दिर बना था। आज भी इसमें स्थित शिवलिङ्ग और नन्दीश्वर की मूर्ति अन्य शिव-मन्दिरों से काफी बड़ी और अच्छी है। यह चक्रतीर्थ नाले के दक्षिणी भाग में स्थित है। विदित है कि यहाँ पर लगभग १० वर्षों तक नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अज्ञातरूप से निवास किया था। इसलिए इस आश्रम को सुभाषचन्द्र बोस आश्रम के नाम से भी जाना जाता है। शिवनारायण राजाराम दीक्षित इस समय इसके संरक्षक हैं।

(४४) **सूत-गद्दी**—सूत जी की स्मृति में बनवायी गयी चक्र के पूर्वी ओर यह गद्दी स्थित है। यह स्थान प्राचीन है और टीले पर बना हुआ है। इसका गूजरमल मोदी ने पुनरुद्धार भी करवाया था। यहीं पर एक विशाल शिव-मन्दिर भी है, जो कि १८वीं शदी का बना है।

(क)–धर्मशालाएँ—

यात्रियों की सुख-सुविधा तथा आराम को ध्यान में रहते हुए नैमिष में कई धर्मशालाएँ हैं। यद्यपि सभी पंडों का घर व्यक्तिगतरूप से यात्रियों की सुख-सुविधा के लिए धर्मशाला ही है, जहाँ पर इन्हें सुविधाएँ मिल जातो हैं; फिर भी नैमिषारण्य में बड़े-बड़े सेठों ने यात्रियों की सुविधा के लिए अनेक धर्मशाले बनवाये हैं, जिनमें निम्नाङ्कित प्रमुख हैं—

१. **मोदी-भवन**—सेठ गूजरमल मोदी के द्वारा इसकी नींव १९७७ ई० में माता आनन्दमयी की प्रेरणा से डाली गयी। यह नैमिष का सबसे सुविधाजनक आधुनिक साज-सज्जा से युक्त अतिथि-भवन है। इसमें छः कमरे हैं। सेठ केदारनाथ मोदी इसके मुख्य संरक्षक हैं। यह पुलिस चौकी से दक्षिण की ओर बना है।

२. **माधोप्रसाद विट्ठलदास धर्मशाला**—यह लखनऊ धर्मशाले के नाम से जाना जाता है। लखनऊ के रस्तोगी परिवार ने इसका निर्माण कराया है। इसमें भी यात्रियों के लिए विशेष सुविधाएँ हैं। इसमें ११ कमरे हैं, जिसमें बिजली-पानी आदि की सुविधा है।

३. **बालमुकुन्द-धर्मशाला**—यह स्वामी बालमुकुन्द जी की प्रेरणा से बाँगड़ (कलकत्ता) के द्वारा बनवाया गया है। यह भी आधुनिक सुविधाओं से युक्त है। हनुमान्-गढ़ी मार्ग के बायें हाथ में यह स्थित है।

४. **बारावंकी-धर्मशाला**—बारावंकी के एक सेठ के द्वारा बनवाये जाने के कारण यह इस नाम से जाना जाता है। यह रामानुज कोट से चक्रतीर्थ जानेवाली सड़क के दाहिने हाथ में ढ़ालान से आगे बना है।

५. **पंचायती-धर्मशाला**—यह कलकत्ते के एक सेठ द्वारा बनवाया गया था। कमरों और विस्तार की दृष्टि से यह सबसे बड़ा धर्मशाला है।

६. **कलकत्ता-धर्मशाला**—चक्र से ललिता देवी मार्ग पर जाते समय दाहिने हाथ में यह स्थित है। आकार-प्रकार में यह दूसरे नम्बर पर है, जो कि पुराने ढंग से बना है।

इसके अतिरिक्त बहुत से छोटे-छोटे, जैसे–अवस्थी धर्मशाला, गेंधरिया धर्मशाला, अहिल्याबाई का धर्मशाला, मालो धर्मशाला, गड़रिया धर्मशाला इत्यादि भी यात्रियों की सुविधा हेतु बने हैं। धर्मशालाओं के अलावा यहाँ पर पर्यटन-विभाग की ओर से भी

अथिति-भवन बनाये जा रहे हैं, जो बाह्यागन्तुकों के लिए विशेष सुविधाजनक होंगे। सार्वजनिक निर्माण विभाग की ओर से बना निरीक्षण-भवन सरकारी लोगों के लिए सुविधाजनक है।

(ख)–शिक्षण संस्थाएँ—

नैमिषारण्य में बालक और बालिकाओं की शिक्षा के निमित्त प्राथमिक से लेकर माध्यमिक स्तर तक कई विद्यालय हैं। १. नगरपालिका प्राथमिक स्कूल, २. चक्रतीर्थ प्राईमरी पाठशाला, ३. नगरपालिका बालिका विद्यालय, ४. प्रेमी जूनियर हाईस्कूल, ५. वेदव्यास ललिता जूनियर स्कूल, ६. नगरपालिका बालिका जूनियर स्कूल, ७. लाला रामनारायण इण्टर कॉलेज, ८. मुन्नी देवी सहगल बालिका विद्यालय।

इसके अलावा यहाँ पर छः संस्कृत-विद्यालय, जो कि सम्पूर्णानन्द सं० वि० वि० वाराणसी से सम्बन्धित हैं। १. वेदव्यास संस्कृत पाठशाला, २. ललिता देवी महाविद्यालय, ३. अनन्त वासुदेव संस्कृत विद्यालय, ४. अध्यात्म संस्कृत विद्यापीठ, ५. पौराणिक और वैदिक अध्ययन एवं अनु० संस्थान, ६. वेद-वेदाङ्ग विद्यालय। यह उच्च शिक्षा एवं अनुसंधान विषयक है। राजकोय तथा केन्द्रीय दोनों ही सरकारों के द्वारा पोषित है।

यद्यपि यह स्थान शिक्षा के क्षेत्र में अभी तक बहुत पीछे रहा। दुर्भाग्य की बात है कि यहाँ १९८२-८३ तक कोई इण्टरमीडिएट विद्यालय तक न था; किन्तु माँ आनन्दमयी के भक्त स्व० प्रयागनारायण सहगल के सतत प्रयास से यहाँ पर बालक और बालिकाओं का माध्यमिक विद्यालय चल रहा है। हर्ष की बात है कि शासन का ध्यान अब नैमिष की पवित्रता और विकास को बनाये रखने की ओर गया है। अब यहाँ की जनता भी सोई हुई निद्रा से जाग पड़ी है और स्व-स्व कार्यों में लग गयी है। यहाँ की प्रगति अब चौगुनी बढ़ने लगी है।

नैमिषारण्य की प्रशस्तियाँ

अष्टम अध्याय

** 'संवत्सरमष्टमे काले भुञ्जानो ग्राम्यमन्नं प्र तु द्रवेति दशतमावर्तयन् नैमिषीयम् द्वादश सम्वत्सरमवाप्नोति ।

(सामविधानब्राह्मण—५।१०।५)

** 'यज्ञवाटश्च सुमहान्गोमत्या नैमिषे वने ।
आज्ञाप्यताम् महाबाहो ! तद्धि पुण्यमनुत्तमम् ॥

(आदिकवि वाल्मीकिरामायण—९१-१५)

** पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ॥

× × × ×

नैमिषं प्रार्थयानस्य पापस्यार्धं प्रणश्यति ।
प्रविष्टमानस्तु नरः सर्वपापात्प्रमुच्यते ॥
तत्र मासं वसेद्धीरो नैमिषे तीर्थतत्परः ।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि नैमिषे तानि भारत ॥

× × × ×

यस्त्यजेन्नैमिषे प्राणानुपवासं परायणः ।
स मोदेत्स्वर्गलोकस्थ एवमाहुर्मनीषिणः ॥

(पद्मपुराणे—८२।५३-५८)

** तत्र तीर्थसलिलेन दीर्घिकास्तल्पमन्तरितभूमिभिः कुशैः ।
सौधवासमुटजेन विस्मृतः सञ्चिकाय फलनिस्पृहस्तपः ॥

(रघुवंश, सर्ग—१९।२)

*४ तस्यां देवर्षिजुष्टायां नैमिषं नाम भारत ।
यत्र तीर्थानि देवानां सुपुण्यानि पृथक् पृथक् ॥
यत्र सा गोमती पुण्या रम्या देवर्षिसेविता ।
यज्ञभूमिश्च देवानां शामित्रं च विवस्वतः ॥

(महाभा०—वनपर्व ८५-३-५)

** नैमिषारण्यनिलये ऋषयः शौनकादयः ।
अष्टाङ्गयोगनिरता ब्रह्मज्ञानैकतत्पराः ॥

मुमुक्षवो हृ महात्मानो निर्भया ब्रह्मवादिनः ।
धर्मज्ञा अनुसूयाश्च सत्यव्रतपरायणाः ॥

जितेन्द्रिया जितक्रोधाः सर्वभूतदयालवः ।
भक्त्या परमया विष्णुमर्चयन्तः सनातनम् ॥

तपस्तेपुर्महापुण्ये नैमिषे मुक्तिदायिनी ।
एकदा ते महात्मानः समाजञ्चक्रुरुत्तमम् ॥

× × × ×

अत्रान्तरे महाविद्वान्व्यासशिष्यो महामुनिः ।
अगमन्नैमिषारण्यं सूतः पौराणिकोत्तमः ॥

** प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम् ।
अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले ॥
(देवीभागवत—४।८।४०)

** प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारसेतुबन्धनम् ।
गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥
(स्कन्दब्रह्मोत्तर—३।३।१।२७)

** नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादायः ।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥
(स्कन्दपु० ३।१।३)

** 'इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम् ।
महादेवप्रियकरं महापाताकनाशनम् ॥'
(कूर्मपु० २।४१।१)

** 'तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणां क्षेत्रमुत्तमम् ।'
(स्कन्द० माहे० १।३)

** 'पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमुत्तमं तीर्थंपुष्करम् ।'
(स्कन्द० ५।१।२८)

** 'नैमिषे पुण्यनिलये नाना ऋषि निषेविते ।
शौनकः सत्रमासीनः सूतं पप्रच्छ विस्तरात् ॥'
(स्कन्दपु० रेवाख० १।६)

** 'द्वारावत्यां नैमिषे च तथा बदरिकाश्रमे ।
कृतशौचे हरेत्पापं पौण्डरीके च दण्डके ॥'
(पद्मपु० ६।२८०।१८)

** नित्यं मेध्यं च पुण्यं च नैमिषं नृपसत्तम् ।'

(पद्मपु० १।३२।२४)

** तीर्थं तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः ॥
यत्र यज्ञवराहस्तु देवदेवस्तु शूलभृक् ।
यत्र तत्काञ्चनं दानमष्टादशभुजो हरः ॥
नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत् पुरा ।
तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम् ॥
देवदेवस्य च तत्रापि वराहस्य च दर्शनम् ।
यः प्रयाति स धर्मात्मा नारायणपुरं व्रजेत् ॥'

(पद्मपु० ५।११।६-९)

** 'स्फटिकमयमहीभृत् पादजाभ्यश्शिलाभ्यः
प्रसरदमृतकल्पस्वच्छन्दपानीयरम्यम् ।
अतिरसफलवृक्षप्रापमव्यालसत्वं
तपस उचितमासीन्नैमिषं तन्मुनोनाम् ॥'

(शिवपु० वाय० ७।२।६३)

** 'पुष्करं तु कृते सेव्यं त्रेतायां नैमिषं तथा ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गा समाश्रयेत् ॥'

(शिवतत्त्वरत्नाकरः—४।३।७०)

** पवित्रे नैमिशक्षेत्रे विमले साधु सेविते ।
सुगन्धिमन्दशीतेन वायुना सुमनोहरे ॥
मयूरैः कोकिलैर्हंसैः भ्रमरैरुपकूजिते ।
शान्तस्वभावे व्याघ्राद्यैरावृते नैमिषे वने ॥

(बृहद्धर्मपु० १।२-५)

× × × ×

** बन्दइ परमब्रह्म महेश मूरति ।
नारद के आगरे जे ईश्वर कहन्ति ॥
वसि छन्ति सर्व ऋषि नैमिषा अरन्य ।
सिद्धपीठ सरोवर राशि नुन्दनुमान ॥

(वाराहपु० ओड़ियाभाषा—१२९० ई० लगभग)

** तीरथवर नैमिष बिख्याता ।
अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥

(रामचरितमानस)

** कहि न जाइ नैमिष प्रभुताई।
महिमा जासु पुराणन्ह गाई॥
(गीता-मानस)

** 'श्रीनैमिष पावन जग जाना। यह अष्टम वैकुण्ठ बखाना॥
अट्ठासी सहस्र मुनि आई। सतत यज्ञ ठानी बरियाई॥
तबहिं तीर्थयात्रा वश आवा। पौराणिक मुति सूत दिखावा॥
सूतहि दै आसन अति सुन्दर। बोले नमित होई सब मुनिवर॥
अहह भाग्य प्रभु दरसन धरउ। भाग्य उदय हम सब कर भयउ॥
सकल उपनिषद धरम विज्ञाना। विष्णु रूप प्रकटेउ भगवाना॥
(गीतामानस)

** नैमिष भूमि तपोमय, आदि गोमती तीर।
माँ ललिता भूतेश्वर, चक्रहिं निर्मल नीर॥
(गीतामानस)

नैमिषारण्य-माहात्म्य

(परिशिष्ट)

जीवन में ऐसे बहुत कम ही संयोग प्राप्त होते हैं, जब कि मानव के अमूल्य क्षणों का सदुपयोग हो पाता है। मानव ने बहुत कुछ अनादि काल से अनुभव किया और उन अनुभवों को लेखबद्ध किया। उन्हीं अनुभवों को पीढ़ियों से मानव ने अपनाया। उसमें कुछ देश-काल परिस्थितियों के अनुरूप नवीनताओं को भी जोड़ा। इसी का परिणाम है कि आज तक अनेक भाषाओं में कवियों, लेखकों व विचारकों के अनुभव विशाल साहित्य के रूप में सजीव बने हुए हैं।

रही इस अपूर्ण छोटे से नैमिषारण्य माहात्म्य की बात। यह मुझे बहुत ही खोज करने के फलस्वरूप नैमिष के ही एक पण्डा श्रीश्यामनारायण के यहाँ प्राप्त हुई। मैं जब पुराणों का अवलोकन करता था, तो हमें विशेषरूप से स्कन्दपुराण में कई एक विशिष्ट तीर्थों का विस्तृत वर्णन प्राप्त हुआ। स्कन्दपुराण में तो कुछ भाग हैं, जैसे—काशीखण्ड, अवन्तिखण्ड, प्रभासखण्ड आदि, जो कि पूरा का पूरा उस क्षेत्र के माहात्म्य से ही स्वतन्त्ररूपेण पूर्ण है। परन्तु हमें 'नैमिषारण्य-खण्ड' करके कोई स्वतंत्र वर्णन प्राप्त न हो सका। ब्रह्मपुराण में वर्णित गौतमी-माहात्म्य तथा स्कन्द-पुराण में वर्णित 'धर्मारण्य-खण्ड' यद्यपि इस तीर्थ की विशेषताओं को वर्णित करता प्रतीत होता है; परन्तु कोई स्पष्ट निर्देश न होने के कारण विद्वानों में विवादास्पद है। 'गोमती' पद्मपुराण में गौतमी के नाम से कही गयी है, जिसके किनारे हजारों छोटे-छोटे तीर्थ विद्यमान हैं। वर्तमान में प्राप्त उन सभी तीर्थों से साम्य भी रखते हैं।

मैं जब सर्वप्रथम १९७७ में नैमिषारण्य आया, मेरी भेंट यहाँ एक सुशिक्षित सिरौजिया (सुवर्णकार) परिवार से हुई। इनके पिता जी वस्तुतः हिन्दी साहित्यानुरागी थे, जिनके सत्प्रयास से 'पताका' नाम की हिन्दी-पत्रिका प्रकाशित होती थी। यह आज से ९० वर्ष पहले की बात है। उन्हीं के हाथों का लिखा हुआ हिन्दी में नैमिषारण्य-माहात्म्य मुझे देखने को मिला, जिसको बाद में उनके सुपुत्र ने मुझसे संशोधन कराकर प्रेसकापी बनवायी। विदित हो कि वह हिन्दी में अनुवादित हस्त-लिखित नैमिषारण्य-माहात्म्य का ही रूपान्तरण है।

यह हस्तलिखित माहात्म्य निश्चय ही आज से सौ पर्ष से भी पूर्व का लिखा है। यह भी कहीं किसी हस्तलिखित प्रति से कापी की गई है, जैसा कि इसमें कापी करने वाले ने बहुत सी अशुद्धियाँ की हैं। इन अशुद्धियों को यथानुरूप ठीक करने का प्रयास किया गया है; फिर भी अशुद्धियाँ यत्र-तत्र रह गयी हैं। यद्यपि इस माहात्म्य की

पुस्तक यत्र-तत्र खण्डित है, इसके पत्रांक बीच-बीच के खो गये हैं; तथापि यह इस तीर्थ की मर्यादा एवं विशेषता को अभिव्यक्त करती है। इस माहात्म्य में वर्णित अनेकानेक तीर्थ आज प्रायः लुप्त हो गये हैं। कोई उनके नियत स्थान को बताने वाला नहीं; परन्तु इस पुस्तक के माध्यम से उन लुप्तप्राय तीर्थों की जानकारी सम्भव हो सकतो है। कुछ तीर्थविशेष के माहात्म्य भी महत्त्वपूर्ण हैं।

इन्हीं कारणों से इसे परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित करने हेतु माहात्म्य जोड़ दिये गये हैं। यदि इसके द्वारा विज्ञजनों को कुछ लाभ हो सकेगा, तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

नैमिषारण्यमाहात्म्यम्

॥ श्रीगणेशाय नमः । ॐ नमः पुरुषोत्तमाय ॥

ॐ अत्यंतध्यानशक्त्यैरमरवुधगणैः सेवितोऽत्यन्तभाग्यै-
रत्यन्तोत्पन्नभक्त्याभिलषितफलदोऽत्यन्तदुखायनेता ।
स ज्ञानानन्दसिन्धुः सदयहृदयोऽत्यन्तलक्ष्मीनिवासो
दृष्ट्वाप्यन्तभक्त्यास्तव शिवमनघात्यन्तमात्यन्तशीलः ॥ १ ॥

श्रीनैमिषारण्यमाहात्म्ये सन्दर्भवचनानामहम् ।
ऋषिर्देवकरोमीमां तीर्थयात्रासु पद्धतिम् ॥ २ ॥

तदुक्तवचनेनैव या काश्चित्स्वीयकल्पना ।
तच्चापलं मम श्रीमान् कृष्णद्वैपायनो क्षमेत् ॥ ३ ॥

तत्रादौ क्रियते व्यास सम्वादो ब्रह्मणा सह ।
पार्वतीश्वरसंवादो मध्ये चेति द्वयं स्मृतम् ॥ ४ ॥

अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्या महामुनीन् ।
नैमिषारण्यमागत्य सूतः पौराणिकोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

सूत उवाच—

जयति परासरसूनुः सत्यवती हृदयनंदनो व्यासः ।
यस्यास्य कमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत्पिबति ॥ ६ ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्रृणुध्वैकाग्रमानसाः ।
नैमिषारण्यमाहात्यं सर्वापापप्रणाशनम् ॥ ७ ॥

कैलाशशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ।
अप्सरोगणसंकीर्णे किन्नरैः सप्तसागरैः ॥ ८ ॥

तत्र ब्रह्मा सुखासीनः पद्मस्योपरि संस्थितः ॥
ब्रह्मा जिनधरः श्रीमान्कमण्डलुजटाधरः ॥ ९ ॥

ब्रह्मर्षिभिः समायुक्तो सर्वलोकपितामहः ।
समुद्योतितदिवश्चक्रे रराजेन्दुरिवोडुभिः ॥ १० ॥

तन्मध्ये ऋषयः सर्वे सप्तर्षिप्रमुखास्तथा ।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ ११ ॥

व्यासश्चाप्यंगिराश्चैव संवर्तो गौतमस्तथा।
भरद्वाजस्तथागस्त्यकौशिको गार्ग्य एव च॥ १२॥

अन्येऽपि च महात्मानः ऋषयः संशितव्रताः।
तं दृष्ट्वा जगन्नाथं शिरसा प्रणमन्ति ते॥ १३॥

ततो निपतिताः सर्वे गांभीरे कलिसागरे।
आत्मनस्तरणार्थाय पृच्छन्ति स्म पितामहम्॥ १४॥

व्यास उवाच—

वयं वेदान्परित्यज्य अग्निहोत्रफलक्रियाः।
यज्ञकर्म परित्यज तीर्थयात्राफलानि च॥ १५॥

संसारभयसंत्रासात् त्वां पृच्छामि जगत् प्रभो।
कस्मिन्स्थाने तपः कार्यः कस्मिस्थाने जपस्तथा॥ १६॥

कस्मिश्च स्थीयते ब्रह्मन् अग्निहोत्रादिकाः क्रियाः।
एतद्देव समाख्याता यथावदनुपूर्वतः॥ १७॥

व्यासस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।

ब्रह्मोवाच—

साधु साधु महाप्राज्ञ यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ १८॥

अथ ध्यात्वा क्षणेनात्र पद्मयोनिः पितामहः।
संसारपरमं चक्रं ब्रह्मचक्रे हि विश्रुतम्॥ १९॥

तत्तस्य क्षणमात्रेणं पुरस्तस्थौ जगद्गुरोः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ब्रूहि किं करवाणि ते॥ २०॥

स तदागत्य तमालोक्य ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।

ब्रह्मोवाच—

आगता ऋषयः सर्वे संसारभयमोहिताः॥ २१॥
तत्स्थानं कथय प्राज्ञ यत्रैषां विदितात्मनाम्।

स्नानं ध्यानं जपो होमं देवार्चनविधिक्रियाः॥ २२॥
कस्मिन्स्थाने हि तिष्ठन्ति अग्निहोत्रफलानि च।

येषु स्थानेषु तीर्थेषु तं प्रदर्शय सर्वथा॥ २३॥

प्रत्याकर्ण्य वचस्तस्य चक्रो वचनमब्रवीत्।

चक्र उवाच—

आयान्तु ऋषयः सर्वे मम पृष्ठं समन्ततः ॥ २४ ॥

दर्शयामि ततस्तेषां सप्तदीपां वसुन्धराम् ।
इत्युक्तो सह चक्रेण ऋषिचक्रं परिभ्रमन् ॥ २५ ॥

महच्चक्रं भ्रमन्तानि भुवनानि चतुर्दश ।
तीर्थाणि च परित्यज्य देवतायतनानि च ॥ २६ ॥

कुरुक्षेत्रं च केदारं भैरवं चापि शौनकम् ।
हिमालयं गयाञ्चैव गंगासागरसंगमे ॥ २७ ॥

नर्मदां जाह्नवीञ्चैव कनखलं बदरिकाश्रमम् ।
जालंधरं परित्यज्य रुद्रं कोटीश्वरं तथा ॥ २८ ॥

श्रीपार्वतीमतिक्रम्य देवीकोटिसरस्वतीम् ।
वाराणसीं तथा पुण्यां गोकर्णं नीलकण्ठकम् ॥ २९ ॥

सुवर्णाख्यं तथा विन्ध्यं गंगाद्वारं तथापरम् ।
सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं सनगां सप्तसागराम् ॥ ३० ॥

सर्वमेतत्परित्यज्य मध्यदेशमुपाययौ ।
गंगाया चोत्तरे भागे सरय्वाः दक्षिणेन च ॥ ३१ ॥

तत्र सा गोमती नाम नदी सुविमलोदका ।
तत्स्थाने पतितं चक्रं धर्मचक्रेति विश्रुतम् ॥ ३२ ॥

ततः संसृज्यते नेमिधर्मचक्रस्य तद्भुवि ।
नैमिषं नाम विख्यातं तत्स्थानं भुवि शाश्वतम् ॥ ३३ ॥

पञ्चकोशप्रमाणेन एते नैमिषमण्डले ।
हरिर्यथा हि देवानां द्विपदां ब्रह्मणो यथा ॥ ३४ ॥

कपिला सर्वधेनूनामौषधीनां यथा यवः ।
एकादशी तिथीनाञ्च आश्रमाणां यथा यतिः ॥ ३५ ॥

तथा सर्वेषु तीर्थेषु नैमिषारण्यमुच्यते ।
पुण्यात्पुण्यतमं ज्ञेयं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥ ३६ ॥

एतदेव परं ज्ञानमेतदेव परं तपः ।
एतदेव परं ब्रह्म एतदेव परं व्रतम् ॥ ३७ ॥

नैमिषे च यथा मोक्षं क्षेत्रेऽन्ये नास्ति तादृशम् ।
दत्तं भुक्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥ ३८ ॥

ध्यानमध्ययञ्चैव सर्वं भवति चाक्षयम् ।
धन्यास्ते मानवा लोके नैमिषे निवसन्ति ये ।। ३९ ।।

नैमिषे तेन संतिष्ठेत् सर्वकिल्विषनाशने ।
आरण्ये सृज्यते नेमिर्नैमिषं तेन उच्यते ।। ४० ।।

नेमि उवाच —

अत्र ते ऋषयः सर्वे तपः कुर्वन्तु नित्यशः ।
संसारभयसंत्रासं परित्यज्य समन्ततः ।। ४१ ।।

तत्र स्थिताश्च ते सर्वे परां सिद्धिमुपागताः ।
आगत्य ब्रह्मणास्तत्र सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः ।। ४२ ।।

तीर्थानां च तथा कार्यं कोटितीर्थं महामुने ।
सर्वतीर्थसमाख्यातं सार्धकोटित्रयं तथा ।। ४३ ।।

पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षे च पुष्करम् ।
त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते ।। ४४ ।।

यदा तु ऋषयः सर्वे आगताश्चक्रसंस्थिताः ।
उत्पादयन्ति चक्रं तु गन्तुं चैव रसातलम् ।। ४५ ।।

तदैव केशवः सर्वान् नैमिषीयानुवाच ह ।
त्रिकूटे पार्वती स्थिता त्रिकूटे मधुसूदनः ।। ४६ ।।

त्रिकूटे चण्डिका चैव सहस्राक्षस्तथैव च ।
पापानां नाशने रुद्री धारिणी ललिता पुनः ।। ४७ ।।

तच्चक्रं धारयामासुः चक्रतीर्थं ततोऽभवत् ।
शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्वेषां च हिताय वै ।। ४८ ।।

चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
कुरुक्षेत्रे तु यत्पुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।। ४९ ।।

तत्फलं लभते देवि चक्रतीर्थस्य दर्शनात् ।
ब्रह्महत्यादि पापानि सञ्चितान्यन्यजन्मनि ।। ५० ।।

नाशयेत्स्नानमात्रेण चक्रतीर्थं च सुन्दरि ।
गवांकोटिप्रदानेन यत्फलं व्रतसेवनात् ।। ५१ ।।

तत्फलं लभते देवि चक्रतीर्थस्य मज्जनात् ।
प्रभाते नैमिषे स्नात्वा चक्रतीर्थे च तर्पयेत् ।। ५२ ।।

पितॄणां देवतानाञ्च शय्यादानं यशस्विनि।
चक्रतीर्थजले स्नात्वा चक्रतीर्थे च तर्पयेत् ॥ ५३ ॥
श्राद्धं कर्पटको भूत्वा उपवासं तु कारयेत्।
गोदानमश्वदानञ्च व्रतं कुर्याच्च पारणम् ॥ ५४ ॥
मुष्टिमात्रं तु यो भिक्षां ब्राह्मणाय प्रदापयेत्।
चक्रतीर्थे विशालाक्षि फलं मेरुत्वमाप्नुयात् ॥ ५५ ॥
पुष्करे तु तपः कृत्वा वर्षाणि शतपञ्चकम्।
तत्फलं समवाप्नोति चक्रतीर्थस्य दर्शनात् ॥ ५६ ॥
एतत्ते कथितं देवि! चक्रतीर्थस्य यत्फलम्।

अथ तीर्थयात्राक्रमेण लिख्यते—

व्यासोवाच—

तीर्थयात्रा तु यः कश्चित् कर्तुमिच्छति मानवः।
विधिं तस्य वद ब्रह्मन् मानवो येन सिध्यति ॥ ६८ ॥
तीर्थयात्रा फलं किञ्चित् स्नानदानादिकं फलम्।
तत्सर्वं च मयाख्यातं प्रसादेन जगद्गुरोः ॥ ६९ ॥

ब्रह्मोवाच—

शृणु व्यास महाप्राज्ञ यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
तीर्थयात्रा फलं किञ्चित् शृणुष्व गदितो मम ॥ ७० ॥
नैमिषं कीर्त्यमानोऽपि सर्वपापप्रणाशनम्।
नैमिषं प्रविशेद्यस्तु संप्रविष्टेस्स विष्टपम् ॥
आदौ तु विघ्नहर्ता यः स्थापितश्च विनायकः।
द्रष्टव्यो क्रमयोगेन सर्वविघ्नविनाशनः ॥
दातारं सर्वसिद्धीनां हन्तारं सकलापदाम्।
हेरम्बं प्रथमं गच्छेद् विघ्नेशं च द्वितीयकम् ॥
तृतीयं मंगलं नाम चतुर्थं चार्थदायकम् ॥
दायकं पञ्चमं चेति स्मृता पञ्चविनायकाः।
मोदकान्दश वै कृत्वा नैवेद्यं तान्प्रकल्पयेत् ॥
तस्यार्धं तु पुनर्विप्र प्रथमं ग्रासयेद्बुधः।
एवं यः क्रमयोगेन सर्वविघ्नविनाशनः ॥
तस्य विघ्नभयं नास्ति सर्वकार्यं हि सिध्यति।
योगिनीनां चतुःषष्टिः तस्मिन्तीर्थे प्रतिष्ठिताः ॥
महादेव तथाष्टौ च दृष्ट्वा क्रमयोगतः ॥
यक्षा षोडशविख्याताः स्थापिताश्च महात्मना।

अथ फाल्गुनशुक्लपक्षे नैमिषारण्यमाहात्म्यतीर्थयात्रापरंपरा सकलशिष्टैरादृता तेनैव क्रमेणास्माभिर्लिख्यते।

तत्र फाल्गुनशुक्लप्रतिपदायां सकलतीर्थराजचक्रतीर्थे स्नात्वा चक्रतीर्थादनुज्ञा संग्राह्या ।

क्षेमकाया महादेव्या आदौ पूजां समाचरेत् ।
बिल्वपत्रकृतां मालां शतमष्टोत्तरं तथा ॥
तस्यैव पूर्वभागे तु आम्रवृक्षं च संस्पृशेत् ।
तद्वृक्षात्पश्चिमे भागे महावृक्षद्वयं स्पृशेत् ।
तस्य संस्पर्शनं कृत्वा दद्याद्धेनुमुत्तमाम् ।
सप्त जन्मकृतं पापं निहन्या सह योषिता ॥
तस्यैव चोत्तरे भागे ग्रामो वैतालमस्तकम् ।
महातीर्थंजले स्नात्वा श्राद्धं कुर्वीत मानवः ।
गवां सप्त प्रदातव्यं क्षेमदीपं समाचरेत् ।
द्वादशा वार्तिकं दीपं प्रदद्यात्तु विशेषतः ॥
द्वादशानि तु कुष्ठानि निहन्यान्नात्र संशयः ।
क्षेमाख्यं वरणौ पश्येन्नाशयेत्सर्वपातकम् ।
अष्टादशैव कुण्डानि निहन्यान्यान्नात्र संशयः ।
तस्य पश्चिमभागे तु ग्रामो वै जम्बुकं स्मृतम् ॥
वायव्यकूपसंख्यातो स्नानं करोति यः नरः ।
यत्किञ्चिदशुभं देहे तत्सर्वं च.... ॥

× × ×

....भवेत्विप्र वेदपाठध्रुवान्वितः ।
तत्र पश्येद् गणेशं तु रक्तपुष्पैश्च पूजयेत् ॥
यात्रायां विघ्ननाशार्थं प्रणम्य च पुनः पुनः ।
गोसहस्रप्रदानेन फलं प्राप्नोति मानवः ।
तत्र दत्वा सुवर्णानि .... पापं प्रजायते ।
तस्यैव चोत्तरे भागे गंगासागरसंगमे ॥
स्नानं कत्वा विधानेन तर्पयेत्पितृदेवतान् ।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दद्याद्वस्त्रादिभूषणैः ॥
पितरो यतस्तत्रैव क्रीडन्ते ब्रह्ममण्डले ।
पुनाति पुत्रवत्सादात्मना नात्र संशयः ।
शंखतीर्थं तु तत्रैव स्नानं कृत्वा विधानतः ।
दानं दत्त्वा हरेत्पापं लभते पुण्यमुत्तमम् ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
प्राप्नोति मानवो वासं स्वर्गलोके महीयते ।
तत्रैव तु महारुद्रं गत्वा चैव तु संस्पृशेत् ॥

सप्तजन्मकृतं पापं भस्मीभवति तत्क्षणात् ।। ६० ।।
पारणं शंखिनीग्रामे विधाय ब्राह्मणैः सह ।
महारुद्रं स्मरन् रात्रौ निवसेत्संयतात्मवान् ।।

इति श्रीस्कंदपुराणे नैमिषारण्यमाहात्म्ये उमामहेश्वरः संवादे पञ्चमो दिवसप्रवासो नाम षष्ठोऽध्यायः ।।

षष्ठे च दिवसप्राप्ते कृतः प्रातःक्रियाः शुचिः ।
कूपं प्रदक्षिणं कुर्यात् सीतया पावनीकृतम् ।।
तस्यैव चोत्तरे भागे श्रृंगी अश्वत्थपूजनम् ।
ततो दानेश्वरं गत्वा तत्र स्नानं समाचरेत् ।।
काञ्चनं रजतं चैव ताम्रद्रोणं तथैव च ।
सद्रोणं ब्राह्मणं दत्त्वा सर्वयज्ञफलं लभेत् ।।
पितृपिण्डं प्रकुर्वीत स्नानमौनं समाचरेत् ।
हन्ति ते दैहिकं पापं लभते पुण्यमुत्तमम् ।।
वसुधारा जले स्नात्वा गायत्रीमन्त्रमुच्चरेत् ।
सुवर्णदानं तत्रैव कुर्यादेकाग्रमानसः ।।
सप्तजन्मार्जितं पापं निहन्यान्नात्र संशयः ।
गोमतीं च ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत् ।।
तर्पयित्वा पितॄन् देवान् श्राद्धं कुर्वीत मानवः ।
ततो देवप्रयागं च गच्छेत्पापप्रणाशनम् ।।
तत्र स्नात्वा महारुद्रं माधवं प्रणमेत्पुनः ।
तस्य दर्शनमात्रेण अश्वमेधफलं लभेत् ।।
देवप्रयागे विप्राश्च पायसः पयसष्कुली ।
भोजयित्वा यथाशक्ति पारणं प्रविधाय च ।।

इति श्रीस्कंदपुराणे नैमिषारण्यमाहात्म्ये उमामहेश्वरसंवादे षष्ठदिवसो नाम सप्तमोऽध्यायः ।

सप्तमे दिवसे स्नात्वा संपूज्य माधवं ततः ।
पश्येन्महारुद्रं चैव नत्वा पुष्पैश्च पूजयेत् ।।
सर्ववल्ली ततो देवी स्पष्टपुष्पैश्च पुज्यते ।
ततो गच्छेन्महातीर्थं मानसं च सरोवरम् ।।
तत्र स्नात्वा तर्पयित्वा निर्मलत्वमवाप्नुयात् ।
दानं दत्वा ततस्तीर्थे स्वर्गभागिप्रजायते ।।
तस्य गच्छेत्पूर्वभागे वाल्मीकस्याश्रमं परम् ।
तस्य पश्चिमभागे तु महाद्रुमयुगं स्पृशेत् ।।

तच्छायापश्चिमे भागे नामा कालप्रदो रविः ।
तस्य संदर्शनं कृत्वा दद्याद्धेनुमुत्तमम् ॥
सप्तजन्म कृतं पापं तत्र हन्यादयोषितः ।
मृतो विमानमारूढो स्वर्गलोकं व्रजेन्नरः ॥ ७७ ॥
मण्डुग्रामं ततो गच्छेत्माण्डव्याश्रमालयम् ।
ऋषीन्नत्वा ब्रह्मभोज्यं दत्वा कुर्याच्च पारणम् ।
कृतानि यानि तीर्थानि स्मृत्वा कालं नयेत्तदा ।
ऋषिदर्शप्रमाणेन मुच्यते पूर्वपातकैः ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे नैमिषारण्यमाहात्म्ये उमामहेश्वरसंवादे सप्तमो दिवस-प्रवासनामाष्टमोऽध्यायः ।

अथाष्टमे दिवसे च हरिद्वारं ततो व्रजेत् ।
तस्य दर्शनमात्रेण निष्पापं संप्रजायते ॥
तस्मिन् तडागे स्नात्वा च गोदानं विधिनाचरेत् ।
तस्य दक्षिणभागे तु वेत्रवतीतीर्थनामकम् ॥
कृतस्नानं पवित्रश्च मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
ततो गच्छेत्मधुकाभ्यमालिङ्ग्य तत्क्षणात् ॥
मधुवृक्षं च सम्पूज्य समालिङ्ग्य यथाविधिः ।
नानाविधानि दिव्यानि रक्तपुष्पाणि च ।
ब्राह्मणे च तथा भूप पूजयित्वा ददाति यः ।
सौभाग्यं च सुकीर्तिः हि प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥
विश्राम्य तच्छायायां जलग्रामे ततो व्रजेत् ।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु जलग्रामे स्वयं पुनः ॥
पारणं विधिवत्कृत्वा रात्रिवासं प्रकल्पयेत् ।
सर्वपापप्रणाशं च मधुवृक्षप्रदक्षिणे ।

इति श्रीस्कन्दपुराणे नैमिषारण्यमाहात्म्ये उमामाहेश्वरसंवादेऽष्टमदिवसप्रवासो नाम नवमोऽध्यायः ॥

(गोदा) वर्यां यत्फलं प्राप्तं स्नानदानादिकर्मणि ।
तत्फलं कोटिगुणितं नैमिषे यत्र कुत्रचित् ॥
एवं गोदावरीस्नानं विधाय विधिपूर्वकम् ॥ १२४ ॥

ततः सूतस्थले गच्छेत्सुमेरुशिखरोपरि ।
पौराणि व्यासशिष्याय यत्र स्थितो महायशः ॥
अष्टादशपुराणानि कथितं तेन यत्पुरा ।
अष्टाशीति सहस्राणि ऋषयश्चोर्ध्वरेतसः ॥
शौनकाद्यास्तथैवान्ये श्रोतारो नियमान्विताः ।
तेषामग्रे तु कथयन्महाभारतसंहिताः ॥

यस्य गीतामृतं रूपं कृष्णपार्थमुखे हुतम् ।
मुहूर्तं तत्र विश्राम्य श्रोतव्यं विधिपूर्वकम् ॥
नैमिषारण्यमाहात्म्यं तीर्थयात्राविधिं च यत् ।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ॥
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।
प्रवृत्यानेन मंत्रेण कृष्णद्वैपायनं हरिम् ॥
गोदानमन्नदानञ्च भूमिदानं विशेषतः ।
चन्दनाक्षतैः पुष्पैर्ब्राह्मणान् पूजयेत् ततः ॥
येषु तीर्थेषु ये देवा येषु तीर्थेषु ये द्विजाः ।
ते पूज्या च नमस्कारं विष्णुस्तु ते नैमिषे ॥

ये विप्रा नैमिषारण्ये ऋषयस्ते न संशयः ।
आदौ तेभ्यो हि यद्दत्तमक्षयं तद्भवेद्ध्रुवम् ॥
यस्य विप्रेषु विश्वासो नैमिषारण्यवासिषु ।
अष्टाशीतिसहस्राणि तस्य तुष्यन्त्यधीश्वराः ॥
एवं विप्राश्च संतुष्टा यं कुरुते नरोत्तमः ।
एवं मुक्तिश्च भुक्तिश्च प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥
मंत्रेणानेन भो देवि तीर्थयात्रा निवेदयेत् ।

श्रीचक्रतीर्थसकलोत्तमं तीर्थराज्यं त्वं च प्रगृह्य मुनिमंडलताद्यदनुज्ञाय ।
क्षेत्रे प्रदक्षिणतया भ्रमणं कृतं यन्नैमिषे तदाविलोकनपूर्णमस्तु ।

ये ये मज्जन्ति चक्रतीर्थे विमले वारि सदाश्रया
ते सर्वे सहसा लभन्ति पदवीं विषमे समीपांहसम् ।
श्रीलक्ष्म्यायुतशङ्खचक्रगरुडानपीताम्बरालंकृत-
युक्तो पातकघोरपुंजमचलं चक्राय तस्यै नमः ॥ ४० ॥

तीर्थेषु पञ्चभिस्तवोक्तजनः यदि श्राद्धे त्रिकोटिगुणितः समन्तात् । कायेन
पादमसतो मम जान्यभूतयापानि विनिहन्ति हरेः प्रसादात् ।

प्रार्थयित्वा चक्रतीर्थमेवं नत्वा पुनः पुनः ।
प्रदक्षिणं त्रयं कृत्वा निष्पापो.....भवेत् ॥
ब्रह्मावर्तं ततो गच्छेत् पद्मनाभेन रक्षितम् ।
भुजंगमस्य रूपेण पद्मनाभो हि तिष्ठति ॥ ४३ ॥

तत्र कुण्डे कृतस्नानं शतक्रतु फलं लभेत् ॥
तत्रैव गोमती मध्ये सप्तसागरसङ्गमे ॥ ४४ ॥

स्नानं कृत्वा पुनः नत्वा गंगोद्भेदेति निर्मले ।
तत्रैव सूर्यकुण्डे तु कृत्वा स्नानं यथाविधि ॥ ४५ ॥

सर्वरोगविनिर्मुक्तो सुखसौभाग्यं प्रजायते।
दशाश्वमेधके तीर्थे स्नानं कृत्वा यथाविधि ॥
तस्य पश्चिमे भागे तु गोमती तीर्थविश्रुतम्।
स्नात्वा तु गोमतीतीरे तर्पयेत् पितृदेवतान् ॥
विप्रेभ्यो दीयते दानं प्रणम्य च पुनः पुनः।
स्नान-दानविधानेन व्रजेत्स्वर्गं न संशयः ॥
ततो गच्छेत्तु धर्मात्मा यज्ञवाराहकूपकम्।
षष्ठितीर्थसहस्राणि यत्र तिष्ठन्ति सर्वदा ॥
तत्रैव कौतुकं देवीं दृष्ट्वा तेऽद्यापि सुन्दरी।
एकभागे जलं मिष्टं क्षारमस्तीति तत्र वै ॥ ५० ॥

तत्र स्नात्वा विधानेन तर्पयेत्पितृदेवतान्।
तत्र श्रीमान् यथाशक्ति दत्त्वा विप्राय सुंदरी ॥
दीनानां कृपणानाञ्च भोजयित्वा पुनः पुनः ॥

× × ×

पाद ऊर्ध्वं शिरो यस्तु युगानामयुतं तपः।
कृत्वा यो लभते देवि ! ब्रह्मावर्तस्य दर्शनात् ॥ ६४ ॥

वाराणस्यां निवासेन यत्फलं कवयो विदुः।
तत्फलं लभते देवि ! ब्रह्मावर्तस्य दर्शनात् ॥
प्रयागे चैव यत्पुण्यं युगानामयुतं वसेत्।
तत्पुण्यं लभते देवि ! ब्रह्मावर्तस्य दर्शनात् ॥
गवां लक्षेषु दत्तेषु यत्फलं कवयो विदुः।
तत्फलं वारिगुणितं ब्रह्मावर्तस्य दर्शनात् ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि यानि वर्तन्ति सुंदरी।
तानि तीर्थेषु यत्पुण्यं ब्रह्मावर्तस्य दर्शनात् ॥ ६८ ॥

ब्रवीमि शृणु मे वाक्यं ऐश्वर्यं सुरसुंदरि।
तुलां विधाय संगृह्य सर्वाभारैश्च संशुभैः ॥
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्यां सरितस्तथा।
एकत्र यज्ञसहिता एकत्र तीर्थदर्शनम् ॥ ७० ॥

तौलितं हिरण्यगर्भेन यवमेकं गुरुस्थितम्।
श्रुत्वा तीर्थस्य माहात्म्यं निवृत्तश्च सर्वकिल्विषात्।
पितामहं परं जग्मुरब्रवन् नायकं पिता।
त्वया श्रेष्ठ यज्ञदेव पुण्यपापसमन्वितम् ॥ ७२ ॥

श्रुत्वा च श्रेष्ठमाहात्म्यं ब्रह्मावर्तस्य पद्मजः।
नाशनं चैव आत्मानं नान्यथा कमलासनः॥
तेजस्तीर्थस्य संसोढुं न शक्यं पितामह।
इति श्रुत्वा वचो देव कृपया परया सह॥ ७४॥

उवाचासुरश्रेष्ठ! श्रृणुष्व वचनं मम।
पद्मनाभो महाभागः तीर्थे रक्षन्ति सर्वदा॥
तटं रक्षन्ति देवेश पद्मनाभो हि सत्तमः।
पापिनो वारयेद्देवं दर्शने तीर्थमज्जने॥ ७६॥

तस्योत्पत्ति श्रृणु देवि! कथयामि विशेषतः।
यस्य स्मरणमात्रेण मनसा चिन्तितं भवेत्॥
पुरा पितामहः तस्मिन्नैमिषे शैलनन्दिनि।
कृत्वा पञ्चमुखं देवि तप उग्रं चकार सः॥
महातपप्रभावेण ज्वालामालाकुलानृषीन्।
प्रादुरासीत्ततो वह्निः ब्रह्मणः पञ्चमाद् मुखात्।
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च देवानां च यशस्विनाम्।
मार्गाखिलकृत्स्नेन ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना॥ ८०॥

मितीशरणमात्रेण आजग्मुः गिरिनंदिनि॥
ते मामुचुः परिपाहि मत्स्थानवृषभध्वज।
ब्रह्मणस्तपसा तेन प्रणस्यं वह्निना वयम्॥ ८२॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मयोक्तं वचनं च यत्।
भयं त्यजत धर्मज्ञाः सुध्या भवतो सुरसत्तम॥
सहायं च करिष्यामि युष्माकं नात्र संशयः।
ततोऽहं शूलमादाय गतो यत्र पितामहः॥ ८४॥

स्थितस्तस्य समीपे तु मया द्रष्टं च तन्मुखम्।
पञ्चमं वह्निना व्याप्तं प्रलयाकारसन्निभम्॥
मया शूलेन संच्छिन्नं तन्मुखं ज्वलनप्रभम्।
पतितं हस्तमध्ये तु चक्रमे परमेष्ठिनः॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा क्रुद्धोऽग्निरिव जज्वले।
तस्मात्क्रुद्धाऽभवद्देवी पुरुषो बहुवीर्यवान्॥
बद्ध-गोद्वा धनुर्बाणझर्णोकुण्डलचालिता।
सुवर्णकवचञ्चैव ब्रह्माणं वाक्यमब्रवीत्॥
आज्ञापयस्व मां देव पुत्रोऽहं तव साम्प्रतम्।
तमुवाच ततो ब्रह्मा जह्येनं पुरुषाधमम्॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा संदधे सुरसत्तम।
सोऽहं तस्य मया देवि! पृष्टं दृष्ट्वा गतो वनम्॥ ९०॥

पृष्ठतोप्ययथौ या च शरमादाय कुण्डली।
केशवं शरणं गत्वा त्राहि नो चाब्रुवन्नरः॥
पृष्ठतोऽहं कृतस्तेन मामुवाच हरिस्तदा।
किं त्वं विभेषि सर्वं भयार्तानां भयापहम्॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मयोक्तं मधुसूदन।
श्रममायाति दैत्यारि धनुर्धीरो महाबलः॥
सो मां हन्तुमिच्छति हरे रक्ष पुरुषोत्तम।
इदं हस्तगतं यस्य कपालं ब्रह्मणाश्रमे॥

क्रोधनेत्ररते पृथ्वी किं करोमि प्रसाधि माम्।
इत्युक्त्वा दक्षिणो बाहुः संप्रसारितवान् हरिः॥
तस्य बाहु मया देवि ! भित्वा शूलेन तत्क्षणात्।
तिस्रो धारा हि रक्तस्य मुसलानां प्रमाणि च॥

पतितो हि मुखे श्रेष्ठ ताभिस्तत्समभूच्छिरः।
शिरस्त्रापि निमन्त्रेण ब्रह्मणाहंस पूजिता॥
मया अंगुष्ठयोगेन अंगुल्या कम्पितं शिरः।
तस्मात्प्रादुरभूद्देवा पुरुषोऽतिमहाबलः॥

शतसूर्यसमाकारो धनुष्पाणि यशस्विनि।
सहस्रबाहु संयुक्तं सत्येन उदितो महान्॥
स मामुवाच देवेश किं करोमि प्रसाधि माम्।
तं मयोक्तं जहि त्वं हि एनं पापरतं नरम्॥ ३००॥

समयो तेन सत्रोऽभूत् संदधे बाणमुत्तमम्।
तयोस्तत्र भवेद्युद्धं महान्तं लोमहर्षणम्॥ १॥

निष्ठितो विविधैर्बाणैरन्योन्यक्षयकाक्षिपेत्।
कंपिता वसुधास्तत्र समुद्राश्च प्रकम्पिताः॥ २॥

ततो ब्रह्मसुतः क्रुद्धा बाहुः चिच्छेद तस्य वै।
नराचैकैकबाणेन कवचं तस्य चिक्षिपेत्॥ ३॥

एवं तयोरभूद्युद्धमन्योन्यं जयकांक्षिणोः।
कवचं ब्रह्मपुत्रस्य .... ।
कवचेन विना भूतं संक्रुद्धो मरुद्गणं प्रति॥
बाणेन वाहु चिच्छेद द्विबाहुं कृतवान् ततः॥
ततो चीरा विना ग्राहि स्वपुत्रो चैकरे मही।
जितोऽस्ति तेन ते पुत्रो विजेष्यति ममात्मजाम्॥
उक्तोऽहमेवं क्रुद्धेन गतो हि निजमालये।
ततो एषा परीनात्मा ब्रह्मलोकपितामहः॥ ७॥

मम तीर्थं विना प्राप्य विघ्नार्थं च सुरेश्वरो।
यज्ञं समारभितवान्तस्मिस्तीर्थे यशस्विनो॥ ८॥

नैमिषे सर्वपापघ्ने आहूतास्तत्र देवताः।
अप्सरोगणगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः॥
आहूताश्चाप्यहं तत्र यज्ञविज्ञाय सुन्दरी।
तं यज्ञं व्रह्मणः श्रुत्वा मया नारायणेन च॥ १०॥

कुपिताभ्यां गतं तत्र यज्ञं विज्ञाय सुंदरी।
विष्णुस्तु सौकरं रूपं कृत्वा पातालमाविशत्॥
भित्वा यज्ञस्वयं भूमिं मुखं प्रस्तार्य तत्र वै।
आहुतीनां घृतं दत्तं क्षणमभक्षत् सूकरः॥

तं दृष्ट्वा दारुणं चक्रं सूकरस्य पितामहः।
उवाच देवान् पश्यध्वं किमिदं दारुणाननम्॥
सत्रे विघ्नं तु सम्प्राप्ता यज्ञस्य सुरसत्तम।
राक्षसोऽयं महारौद्रो आहुतीन्भक्षयत्ययम्॥

एतच्छ्रुत्वा तमूचुस्तेनायं विघ्नमुपस्थितः।
अग्निस्वरूपमास्थाय भक्षयत्याहुतिं प्रभो॥
इति श्रुत्वा वचस्तेषां विशुद्धोऽभूत्पितामहः।
ततः सोऽपि च वराहो ह्रिन्यान्निशितं बलात्॥

तं दृष्ट्वा कुपितो व्रह्मा कमण्डलुधरप्रभो।
निशितो वेगतो देवि! वाराहो पृष्ठतोऽन्वगात्॥
गोमतीं दक्षिणे कूले तत्र वर्तो पितामहः।
सूकरस्य भयाद्देवि कमण्डलुं मुमोच सः॥ १८॥

नागकं क्षोभितवान् भित्वा पृथ्वीं कमण्डलुः।
अम्भसा पूरयित्वा नु आवर्तपुनरागता॥
उपपात स व्रह्माण्डं जलस्त्रावी कमण्डलुः।
वारिणा देवदेवस्य प्रलयं कर्तुमिच्छति॥ २०॥

कंपिता पृथ्वी सर्वा पर्वता कम्पिता शुभे।
पूरयन्ति च तोयेन समुद्रधरणीतले॥
ततो देवसगन्धर्वा ऋषयः संशितव्रताः।
आजग्मुः व्रह्मणः स्थानं नत्वा सर्वे पितामहः॥ २२॥

वाराहं च नमस्कृत्य तुष्टुवुः परमेश्वरः।
परमेष्ठिने नमस्कृत्य वाराहाय नमोनमः॥
नमस्ते विश्वसंहर्त्रे विश्वकर्त्रे नमोनमः।
कोपं त्याज्या हि गोविन्द व्रह्मणो मधुसूदन॥ २४॥

कुपितो ब्रह्मणं चैव दत्त्वा धारमिदं जगत् ।
प्रलयं यान्ति धरणी रक्षश्च परमेश्वर ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां देवानां मधुसूदनः ।
संत्यज्य कोप .... भूत्वा देवान् जगौ हरिः ।
मया कोपः परित्यक्तः सह्यध्वं पितामहः ।
श्रुत्वा देववचः सर्वे ऊचुः लोकपितामहः ।
प्रसादं कुरु नाथस्य हस्तं च कमण्डलुः ।
श्रुत्वा वाच्यं महर्षीणां देवानां च पितामहः ॥ २८ ॥

धृत्वा कमण्डलुं हस्ते तेषां वाचं शरीरिणा ।
उवाच सहर्षीणां देवानां च महेश्वरी ॥

इदं च तोर्थप्रवरं कोटितीर्थसमन्वितम् ।
सम्भूतं पतितो ह्यत्र स्वयंभुवः कमण्डलुः ॥
स्वर्गोऽयं नात्र संदेहो मह्यां च सुरसत्तम ।
कमण्डलोर्ब्रह्मणश्च निर्गच्छातासुरनिम्नगा ॥

कथं हि देवि सा गंगा देवि त्रिपथगामिनी ।
चतुर्मुखसमुद्भूता गङ्गा वै विश्वपावनी ॥
सम्पूर्णा विद्यते तत्र नदी गङ्गा महेश्वरी ।
गङ्गोद्भेदमिदं तीर्थं पावनं तत्समीपतः ॥

प्रत्येकं दिवसे यस्तु पश्यध्वं ज्ञानचक्षुषा ।
त्रैलोक्यगामिनीं मार्गे प्रयातीति न संशयः ॥
इदं श्रुत्वा वचस्तस्य ज्ञानदृष्टिमहर्षिणः ।
दृष्ट्वा च मनसा दृष्ट्वा ब्रह्माद्यास्ते दिवौकसः ॥
प्रतिष्ठितं च तत्तीर्थं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
स्नानं देवैश्च मुनिभिः कुर्यात् कमलयोनिना ॥
दिव्यरूपधरा देवा मुमुदुर्ब्रह्मणा सह ।
तस्य चोत्तरभागे तु श्वेतवर्ण्ये गदाधरः ॥, ३७ ॥
स्थापितः पूजितो देवैः तपोभूमौ समाचरेत् ।
हरिमूचुः सुरा सर्वे ब्रह्माद्या शैलनन्दिनि ॥ ३८ ॥
किं नाम किमिदं तीर्थं भविष्यति जनार्दन ।
तं नाम कथ्यतां मध्यं देवदेव सुरेश्वर ॥ ३९ ॥
तेषां वाक्यं ततः श्रुत्वा उवाच भगवान्हरिः ।
यस्मान्मम भयाद्देवि ह्यावर्तोऽत्र पितामहः ॥ ४० ॥
तस्मात्फलप्रदानेन ब्रह्मावर्तं भविष्यति ।
इत्युक्त्वा स्थापितस्तेन केशवेन महात्मना ॥ ४१ ॥

रक्षणाय च तत्तीर्थे पद्मनाभो हि सत्तम ।
ततो देवाः सगन्धर्वा ब्रह्माद्या मुनयश्च ये ॥
केशवं च पुरस्कृत्य आजग्मुः पश्चिमां दिशि ।
त्वत्र दृष्टोऽस्म्यहं देवैः पश्चिमां दिशिमाश्रिता ॥
त्रिशूलेन च त्रैलोक्यं हन्तुमिच्छति सुन्दरि ।
भिन्नाश्च सकला पृथ्वी तत्र स्थाने मया शुभे ॥
दृष्टो ह्यहं देवगणैः ब्रह्माद्यैः कोपसंयुता ।
ततो भयसम्पन्नाः केशवं शरणं गताः ।
ततो भगवता तेन संस्तुतः परमेश्वरः ॥
उद्धृतं च त्रिशूलं च मयोक्तं परमेश्वरः ।
वागुवाच शरीरा वै भूयस्तत्रैव सुन्दरि ॥
सान्निध्यं परमं तीर्थं शूलभेदसमुद्भवम् ।
तत्र शूलेन भेदोऽथ तत् स्मृतं तीर्थमुत्तमम् ॥
तस्य दर्शनमात्रेण ब्रह्महत्या प्रणश्यति ।
इति श्रुत्वा वचस्तस्य स्नानं देवैः महर्षिभिः ॥
मया तत्र कृतं स्नानं भूयस्तत्रैव सुन्दरि ।
लिङ्गं च स्थापितं देवि ब्रह्माद्यैः शैलनन्दिनि ॥ ५० ॥
पूजितं विविधैः पुष्पैः सुगन्धैश्च विलेपनैः ।
पूजयित्वा देवदेवं गतास्ते ब्रह्मणा सह ॥
इतीदं कथितं देवि माहात्म्यं तव काम्यया ।
ब्रह्मावर्तस्य चोत्पत्तिः किमन्यं श्रोतुमिच्छसि ॥
य इदं शृणुयान्नित्यं माहात्यमुत्तमम् ।
स याति शिवसायुज्यं देवानां दुर्लभं च यत् ॥
न चैनां पापिनां मध्ये गोद्विषां ब्रह्मणद्विषाम् ।
पठनीयं सदा देवि तीर्थं माहात्म्यमुत्तमम् ॥
पठितव्यं वैष्णवानां धार्मिकानां महेश्वरि ।
पठेद् यः श्राद्धकाले च पितॄणामक्षयं भवेत् ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे नैमिषारण्यमाहात्म्ये उमामहेश्वरसंवादे ब्रह्मावर्तमाहात्म्यं समाप्तम् ।

ईश्वरोवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि गङ्गोद्भेदस्य सुन्दरि ।
माहात्म्यं पद्मपत्राक्षि शृणु पापप्रणाशनम् ॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नाने यत्फलमश्नुते ।
तत्फलं लभते देवि गङ्गोद्भेदस्य मज्जनात् ॥

प्रजानां भूपतिर्देवि यथा भवति मूर्द्धवान् ।
तथा सुन्दरि तीर्थानां गङ्गोद्भेदस्तथा स्मृतम् ॥
ग्रहाणां चैव सर्वेषां यथा मार्तण्डमुच्यते ।
तीर्थानां चैव सर्वेषां गङ्गोद्भेदस्तथा स्मृतम् ॥
स्नानं दानं प्रकुर्वन्ति पितृपिण्डपरायणम् ।
तेषां चैव विधानानि वक्ष्याम्येकमना शृणु ॥
द्वादशा ब्राह्मणाश्चैव कर्तव्याः श्राद्धकर्मणि ।
अभावे मानसान् विप्रान् श्राद्धकर्मणि कल्पयेत् ॥
गां सुवर्णस्य रुद्रस्य सूर्यस्य संकटे नरः ।
यो दद्यात्सन्मुखो भूत्वा लोभदम्भविवर्जितः ॥
अन्नदानं प्रकुर्वीत भूत्वा दानं विशेषतः ।
तत्र यत्क्रियते दानं तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥
अश्वमेधसहस्राणि कृत्वा यत्फलमश्नुते ।
पदे पदे च वै देवि गच्छत्याप्नोति तत्फलम् ॥
सूर्यस्य प्रदक्षिणां कृत्वा ओकारं प्रणमन्ति ये ।
सूर्यं च नमस्कृत्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते ।

श्रीपार्वत्युवाच—

ब्रह्मावर्तस्य माहात्म्यं गङ्गोद्भेदस्य चोभयोः ।
श्रुत्वा तव मुखाम्भोजान् मया शंकर शंकर ॥ ६६ ॥
दशमे दिवसे कृत्वा यात्रायाः सविधायिभिः ।
कर्तव्यतां ममाग्रे त्वं कथयस्व सदाशिव ॥

ईश्वर उवाच—

तत्क्षेत्रे नैमिषं तीर्थं चक्रतीर्थस्य पश्चिमे ।
अन्नग्रहस्य यात्रायां व्रतसंकल्पमात्रतः ।
तत्र स्नात्वा च गोमत्यां कुरुक्षेत्रे ततो व्रजेत् ॥
सुवर्णं रजतं गां वै यत्किञ्चित् तत्र दीयते ।
तस्य सुन्दरि ! दानस्य महिमानं शृणुष्व मे ॥ ७० ॥
त्रयोदशगुणावृद्धिः त्रयोदशद्विगुणानि च ।
दानस्य च कुरुक्षेत्रे इन्द्रकोटिसमं फलम् ॥
सरस्वस्य समासीनं गणेशं प्रणमेत् ततः ।
दशकृत्वा तु लड्डुकान् गणेशाय न्यवेदयत् ॥
पञ्च विप्राय दातव्यं पञ्चग्राह्या स्वयं ततः ।
स्नातव्या तु ततो देवि गोमत्युत्तरवाहिनी ॥

तस्य कन्या बभूवैषा गुणकेशीति विश्रुता ॥ ८८ ॥
तां शयानां हर्म्यतले कन्यां स तामनांहसाम् ।
मदालसा भ्रमाद्राजा संस्पर्शत् तरुणीं सुवाम् ॥
सा पितुः करसंस्पर्शात् तमुवाच भयाकुला ।
नाहं मदालसा तात तव कन्यास्मि साम्प्रतम् ॥

काशिराजोवाच—

अज्ञानमदनार्तो यः स्पृशेत् कन्यां कुचस्थले ।
प्रायश्चित्तं तु किं तस्य विचार्य सुवदस्व मे ॥

पण्डिता ऊचुः—

ते ऊचुस्तत्र रुचिरं हंसं सुवर्णं शतकं परम् ।
चान्द्रायणशतं चान्ये प्रायश्चित्तार्थमब्रुवन् ॥
श्रुत्वा तेषां तद्वाक्यं नानुतापं जहौ नृपः ।
अथ तेषु प्रविष्टेषु सुतीक्ष्णो नाम पण्डितः ॥ ९४ ॥
वेदप्रवक्ता प्रोवाच सुशंखलिखितस्मृतिम् ।

सुतीक्ष्णोवाच—

श्रूयतां मद्वचो राजन् संतापो येन यास्यति ।
येन येन शरीरेण यद्यत् कर्म करोति यः ।
तत्र तत्रैव दण्डः स्यात् तस्मिन् कर्मणि तस्य वै ।
अतः करौ कृष्णवर्णौ कर्तव्यौ नृपसत्तम ।
आवध्य तूभयोस्तत्र काकौ चोपरि वध्यताम् ॥
नीलाम्बरो नीलवर्णेऽश्वमारुह्य सत्वरम् ।
गच्छन्तु नैमिषारण्ये कृत्वा तीर्थप्रदक्षिणाम् ।
हंसतीर्थकृतस्नानं निर्मलं त्वं भविष्यसि ॥
इत्याकर्ण्य सुतीक्ष्णस्य वचः परमदारुणम् ।
तथोक्तं तत्तथा कृत्वा नैमिषारण्यमागतः ॥
तीर्थं प्रदक्षिणं कृत्वा हंसतीर्थमुपाययौ ।
तत्र स्नात्वा नृपो देवि निर्मलत्वं क्षणादभूत् ॥ ४०० ॥
तौ काकौ हंसतां यातौ हंसतीर्थं ततोऽभवत् ।
श्वेताम्बरो श्वेतहयः प्रेक्ष्य हस्तेऽभवच्छुचिः ॥
ज्ञात्वा तीर्थस्य माहात्म्यं तत्रैव न्यवसत् पुरा ।
कृतं तत्र तपः सम्यक् ततो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ४०२ ॥

एतत्ते कथितं देवि ! काशिराजस्थलं महत् ।
यत्कथाश्रवणे मर्त्यो न पापेषु प्रवर्तते ॥
ततो गोवर्धनं दृष्ट्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ।
ततो गच्छेद् धर्मात्मा मथुरायां संकर्षणम् ॥
स्नानदानादिकं कृत्वा मथुरायां तु मानवः ।
सेतुबन्धेश्वरं गच्छेत् गोमतीतटसन्निधौ ॥ ५ ॥

सितया निर्मितं यत्र सेतुः रामेण पावनम् ।
विधाय मृन्मयीं लङ्कां ध्वंसयामास वै शरैः ॥
रामेश्वरं तत्र लिङ्गं स्थापयामास राघवः ।
तं दृष्ट्वा समीपे तु शूलभेदं ततः स्मृतम् ॥
यत्र शूलेन संभिन्ना गोमत्यन्तर्जले मही ।
माहात्म्यं तस्य वक्ष्यामि शृणु सुन्दरि सादरम् ॥
शूलभेदं महातीर्थं तीर्थानां तीर्थमुत्तमम् ।
फाल्गुने मासि ब्रह्मा वै चतुर्दश्यां यशस्विनी ॥
शूलभेदजले स्नात्वा यः कुर्यात्पितृतर्पणम् ।
मानुषान् तारयेद्देवि ! कुलानामेकविंशतिः ॥ १० ॥

नन्दिभृङ्गिगणैस्सार्धं महाकालं समर्चयेत् ।
अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च ॥
विधाय यत्फलं देवि तत्फलं लभते नरः ।
शूलभेदे महातीर्थे कृष्णपक्षे च फाल्गुने ॥
चतुर्दश्यां सुरश्रेष्ठ गुरौ कन्यागतेऽपि च ।
देवग्रस्तं राहुग्रस्तं तस्मिन् तीर्थे यदा नरः ॥
तर्पयेत् पितृदेवांश्च काष्ठमौनं समाचरेत् ।
द्वारपालं ततो दृष्ट्वा वरदं सुखदं सदा ॥
ताम्रपात्रं च मृत्पात्रं पायसं मधुसंयुतम् ।
प्रदीपैर्गन्धपुष्पैश्च नैवेद्यं शर्करा तथा ॥
धूपानुलेपनं कृत्वा विल्वपत्रैरथार्चयेत् ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा देवदेवं प्रदक्षिणम् ॥
यः कुर्याद्दण्डपाणिं च भक्तिपूर्वं विशेषतः ।
रक्तवस्त्रं ततो दद्याच्चन्दनागुरुभूषितम् ॥
अभावे श्वेतवस्त्रं तु चन्दनेन विलेपितम् ।
शिवलोके सदा क्रीडा शिवतुल्यो महीयते ॥
अश्वदन्तिसहस्राणि रत्नानि विविधानि च ।
दत्त्वा यत्फलमाप्नोति वाजपेये च यत्फलम् ॥
तत्फलं ह्येकयात्रायां फाल्गुने नात्र संशयः ।
देवदेवं तु संपूज्य स्पृशेत् भक्तिसमन्वितः ॥

अश्वमेधसहस्राणि फलं तस्य न संशयः।
शिवं च शिवपत्नीं च भक्तिं कृत्वा विशेषतः॥

पञ्चामृतं तु यो दद्यात् शिवायोमा युताय वै।
सर्वपापविनिर्मुक्तो शिवलोकं स गच्छति॥ २४॥

यः स्नात्वा तु ह्यमावस्यां शूलभेदे द्विजोत्तमः।
पश्येद्धि वृषभं तत्र देवस्याग्रे विशेषतः॥

नन्दिभृङ्गिगणानर्चेन्महाकालं ततः पुनः।
ततो महाभैरवं पूज्य पुष्पगन्धानुलेपनैः॥

गुप्तभैरवमभ्यर्च्य भृङ्गरिष्टं ततोऽर्चयेत्।
चतुर्मुखसुतं पूज्य स्थापितश्च विनायकः॥

पूजयेत् पुष्पधूपैश्च देवदेवं यथाविधि।
तत्सर्वं लभते देवि अक्षयां परमां गतिम्॥

इति शूलभेदमाहात्म्यं
गच्छेत्ततः क्षेत्रमतीव पुण्यम्।
तत्कापिलं यत् कपिलश्चकार
स्नात्वा च संतर्प्य पितॄंश्च देवान्॥

गच्छेत्तु.......................केदारमुदारकुण्डम्॥
तस्य चोत्तरभागे तु केदारकुण्डमुत्तमम्।
यः पश्येन्मानवो देवि स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ३०॥

केदारं पूजयेद्देवि मातरं पूजयेत्ततः।
यज्ञं दृष्ट्वा गुणं देवि फलं तस्य प्रकीर्तितम्॥
येनोदकं च केदारं पीतं श्रद्धासमन्विता॥

× × × × ×

नश्यन्ति सर्वपापानि स्वर्गवासो न संशयः।
ॐकारपूर्विका देवि वीणापुस्तकधारिणी॥
देवमातर्नमस्तुभ्यं वैरूप्यं नाशयस्व मे।
सावित्री वेदमाता च. संस्तुता नाम भामिनि।
ब्राह्मणानां हि तीर्थाय पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥
एतत्ते कथितं देवि माहात्म्यं तव सन्निधौ।
यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनाशनम्।
तत्सर्वं विलयं यान्ति अन्यपापकथा तु का॥

॥ इति सावित्रीमाहात्म्यम्॥

ततो बदरिकाश्रमं विलोक्य नारायणसमस्तकलिकल्मषक्षपणहेतुभूतं हरिः ॥
विद्याविधीनां न नरः समर्षीकरणभूसुरैः ॥
समं हरिकथामृतं प्रवदन्ति सा सन्नयेत् ॥

एकादशे तु दिवसे कृतनित्यकर्म स्नानं विधाय सविचित्र यथा जलेन ।
अट्टहासमभिगम्य चार्चेत् पुष्पैः सचन्दनजलैर्धूपदीपैश्च ॥

अट्टहासं देवर्षि पूजयेत् शुद्धमानसः ।
गन्धपुष्पैः तथा धूपैर्दीपैर्मूलफलैस्तथा ॥ ८० ॥

अहोरात्रोषितो भूत्वा नवम्यां भौमवासरे ।
नन्दायां यत्फलं प्रोक्तं तत्फलं लभते नरः ॥
गच्छेत्ततो यज्ञवाराहतीर्थं
स्नानं च दानं च विधाय तत्र ।
दृष्ट्वा तु वाराहमुदारवीर्यं
गच्छेत्ततो मिश्रितं मिश्रतीर्थम् ॥

यज्ञमूर्ति ततो देवमेकादश्यामुपोषितः ।
श्रुत्वा वाद्यादिगीतैश्च पूजयेद्भक्तिमान्नरः ॥
मिश्रितं च महातीर्थं सर्वतीर्थं च मिश्रिते ।
दधीचेः परमं स्थानमुत्तमं पावनं नृणाम् ॥

फाल्गुनैकादशी शुक्ला स्नात्वा चैकाग्रमानसः ।
तण्डुलं तिलसम्मिश्रैः पितृपिण्डं प्रदापयेत् ॥
पितरंस्तारितस्तेन पतितान् नरकेष्वपि ।
सर्वपापं विनिर्मुक्तो स्वर्गलोकं स गच्छति ॥
यत्फलं सर्वयज्ञेषु यद्दानं वेदपारगे ।
यत्फलं सर्वतीर्थेषु तत्फलं हि प्रदक्षिणे ॥
पृथिव्यानि यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि मिश्रिते ।
मिश्रिते यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि नैमिषे ॥
नैमिषात् परमं तीर्थं न भूतो न भविष्यति ।
श्राद्धं च तत्र कुर्वीत संतुष्टा पितरस्तदा ॥
दक्षिणेश्वरमादौ च पूजयेत् सततं नरः ।
दधीचिं च ततोऽभ्यर्च्य पूजयेद्भुवनेश्वरीम् ।
स्पृशेत् सोमेश्वरं देवं वाराहं च ततः स्पृशेत् ॥
मिश्रकं पूजयेद्देवं गन्धपुण्यानुलेपनैः ॥
ततः कंटकवृक्षश्च स्पृशेत् दंभविवर्जितः ।
यथाभक्ति प्रदातव्यमन्नदानादिकं नरैः ॥

॥ इति नैमिषारण्यमाहात्म्यं समाप्तम् ॥

शब्द—संकेत

अग्निपु०	अग्निपुराणम्
अथर्व०	अथर्ववेदसंहिता
अमर०	अमरकोश
आदि०	आदिपुराणम्
आध्या० रामा०	आध्यात्मरामायण
आप० श्रौत०	आपस्तम्बश्रौतसूत्र
आश्व० गृह्य०	आश्वलायनगृह्यसूत्र
ईशा०	ईशावास्योपनिषद्
ऐतरेयब्रा०	ऐतरेयब्राह्मण
कपिल०	कपिलपुराण
कल्कि०	कल्किपुराण
कात्या० श्रौ०	कात्यायनश्रौतसूत्र
कालिका०	कालिकापुराणम्
कूर्मपु०	कूर्मपुराणम्
कृत्यकल्प०	कृत्यकल्पतरु
गर्गसं०	गर्गसंहिता
गरुडपु०	गरुडपुराणम्
गणेशपु०	गणेशपुराणम्
गौतमधर्म०	गौतमधर्मसूत्र
छाग०	छागलेपोपनिषद्
छान्दो०	छान्दोग्य-उपनिषद्
जैमि० साम०	जैमिनीयसामगानम्
जैमिनीब्राह्म०	जैमिनीब्राह्मण
ताण्डा०	ताण्डायनब्राह्मण
देवल०	देवलस्मृति
देवीभाग०	देवीभागवतम्
नारदपु०	नारदपुराणम्
नीलादि०	नीलादिमहोदधि
नैमिषा०मा०	नैमिषारण्यमाहात्म्य
पद्मपु०	पद्मपुराणम्
प्रा० च० को०	प्राचीन-चरित्र-कोश
पुराण इन सा०	पुराण इन साइक्लोपीडिया
ब्र० पु०	ब्रह्मपुराणम्
ब्र० वै०	ब्रह्मवैवर्त्तपुराणम्
ब्रह्मा० पु०	ब्रह्माण्डपुराणम्
बृहद्पु०	बृहद्धर्मपुराणम्
बृहन्ना०	बृहन्नारदीयपुराणम्
भवि०	भविष्यपुराणम्
भाग०	भागवतपुराणम्
भग० गी०	भगवद्गीता
भुसुण्डि०	भुसुण्डिरामायणम्
मत्स्यपु०	मत्स्यपुराणम्
मनु०	मनुस्मृति
महा०	महाभारत
आ० प०	आदिपर्व
आश्व०	आश्वमेधिक-पर्व
मार्क०	मार्कण्डेयपुराणम्
याज्ञ०	याज्ञवल्क्यस्मृति
रघु० महा०	रघुवंशमहाकाव्य
रामचरितमा०	रामचरितमानस
लिङ्गपु०	लिङ्गपुराण
वराह०	वराहपुराणम्
वाच०	वाचस्पत्यम्
वामन०	वामनपुराणम्
वायु०	वायुपुराणम्
वाल्मीकि० रामा०	वाल्मीकिरामायण
विष्णु०	विष्णुपुराणम्
शिवतत्त्वरत्ना०	शिवतत्त्वरत्नाकर

स्कन्द०	स्कंदपुराणम्
स्तोत्रव०	स्तोत्रवल्लरी
साम० वि० ब्रा०	सामविधानब्राह्मण
सौर०	सौरपुराणम्
हरिवंश	हरिवंशपुराणम्
ए हि० इण्डि० लि०	हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर
एन्सि० इण्डि० ट्रे० एण्ड माइ०	एन्सियन्ट इण्डियन ट्रेडिशन एण्ड माइथोलोजी
ए स्ट० गरुड०	ए स्टडीज़् आफ गरुडपुराण
ए० स्ट० आ० मत्स्य०	ए स्टडीज़् आफ मत्स्यपुराण
कल्च० फ्रा० द० वायु०	कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायुपुराण
कुरु० इन वामन	कुरुक्षेत्र इन वामन
डेट्स एण्ड डाइ० इण्डि०	डेट्स एण्ड डाइनेस्टी आफ अर्लियेस्ट इण्डिया
धर्म० का इति०	धर्मशास्त्र का इतिहास
नारद पु० ए क्रिटि०	नारद पुराण ए क्रिटिकल स्टडी
पत० का० भा०	पतञ्जलिकालीन भारत।
प्रा० भा० इति०	प्राचीन भारत का इतिहास
भार० कला	भारतीय कला
भा० मूर्ति०	मारतीय मूर्तिकला
शि० दा० समा०	शिवपुराण की दार्शनिक समालोचना।
स्ट० जीओ० एन्सि० एण्ड मेडु० इण्डि०	स्टडीज इन दी जीओग्राफी आफ एन्सियेन्ट एण्ड मेडिबल इण्डिया।

●

(क) मूल सन्दर्भ ग्रन्थ

अग्निपुराणम् आचार्य बलदेव उपाध्याय
अथर्ववेदसंहिता दामोदर सातवलेकर
अमरकोश
आदिपुराण
आध्यात्म-रामायण श्रीजीवानन्द विद्यासागर
आपस्तम्बश्रौतसूत्र जान बूहलर
आश्वलायनगृह्यसूत्र वी०वेङ्कट राघवन्
ईशावास्योपनिषद् आर०सी० वरदाचारी
ऐतरेयब्राह्मण काशीनाथ शास्त्री
कपिलपुराण श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी
कल्किपुराण डा० अशोक चटर्जी
कात्यायनश्रौतसूत्र एच० जी० रानाडे
कालिकापुराणम् विश्वनारायण शास्त्री
कूर्मपुराणम् आनन्द स्वरूप
कृत्यकल्पतरु के०वी०आर० आयंगर
गणेशपुराण चमनलाल गौतम
गर्गसंहिता विभूति भूषण भट्टाचार्य
गरुडपुराण रामशङ्कर भट्टाचार्य
गौतमधर्मसूत्र उमेश चन्द्र पाण्डेय
छागलेयोपनिषद् उपनिषद्-संग्रह
छान्दोग्योपनिषद् अणिमा सेन
जैमिनीयसामगानम् विभूतिभूषण भट्टाचार्य
जैमिनीयब्राह्मण
ताण्डायनब्राह्मण
देवलस्मृति (स्मृति-संग्रह)
देवीपुराणम् पुष्पेन्द्र कुमार
देवीभागवतम्
नारदपुराणम् आचार्य श्रीराम शर्मा
नीलमतपुराणम् डा० वेद कुमारी
नीलाद्रिमहोदय (सूत-संहिता) श्रीधर महापात्र शर्मा
नैमिषारण्यमाहात्म्य मूल संस्कृतभाषा
पद्मपुराणम् महादेव आप्टे
प्राचीनचरित्रकोश चित्राव, सिद्धेश्वर शास्त्री
पुराण इनसाइक्लोपीडिया वेटम मनी
ब्रह्मपुराणम् तारिणीश झा
ब्रह्मवैवर्तपुराणम् विनायक गणेश आप्टे
ब्रह्माण्डपुराणम् जगदीश शास्त्री
बृहद्धर्मपुराणम् हर प्रसाद शास्त्री
बृहन्नारदीयपुराणम् श्रीराम शर्मा
भगवद्गीता
भागवतपुराणम्
भुसुण्डिरामायण डा० भगवती प्रसाद सिंह
मत्स्यपुराणम् नन्दलाल मोर
मनुस्मृति
महाभारतम्
मार्कण्डेयपुराणम् डी० एन० शास्त्री
याज्ञवल्क्यस्मृति
रघुवंशमहाकाव्य डा०रेवा प्रसाद द्विवेदी (कालीदास ग्रन्थावली)
रामचरितमानस —
लिङ्गपुराण जगदीश शास्त्री
वाराहपुराणम् आनन्दस्वरूप गुप्त
वाचस्पत्यम् तारानाथ तर्काचार्य
वामनपुराणम् आनन्दस्वरूप गुप्त
वायुपुराण श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी
वाल्मीकिरामायण गीताप्रेस गोरखपुर
विष्णुमहापुराण कालीपद तर्काचार्य
शिवमहापुराणम् नाग शरन सिंह
शिवतत्त्वरत्नाकर नारायण स्वामी शास्त्री
शब्दकल्पद्रुम राधाकान्त देव
स्कन्दपुराण मनसुख राय मोर

स्तोत्रवल्लरी पद्मश्री पं० रघुनाथ शर्मा
सामविधानब्राह्मण वी० आर० शर्मा
सौरपुराणम् काशीनाथ शास्त्री
संस्कृत साहित्य का इतिहास डा० वचन देव कुमार
हरिवंशपुराणम् पं० रामचन्द्र शास्त्री
ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर एम० विन्टर नित्ज
एन्सियेन्ट इण्डियन ट्रेडीशन एण्ड माइथालोजी (शिवपुराण, लिङ्ग पुराण भागवत पुराण)
ए स्टडी आफ गरुडपुराण एन० गङ्गाधरन्
ए स्टडी आफमत्स्य पुराण वासुदेवशरण अग्रवाल
कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायुपुराण देवेन्द्र कुमार
कुरुक्षेत्र इन वामनपुराण शशाङ्क शेखर
डेट्स एण्ड डाइनेस्टी आफ अर्लियेस्ट इण्डिया आर० मार्टिन स्मिथ
धर्मशास्त्र का इतिहास पी० वी० काणे
नारदपुराण ए क्रिटिकल स्टडी के० दामोदरन्
पतञ्जलिकालीन भारत प्रभुदयाल अग्निहोत्री
पाणिनिकालीन भारत वासुदेवशरण अग्रवाल
प्राचीन भारत का इतिहास डा० विमल चन्द्र पाण्डेय
भारतीय कला डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
भारतीय मूर्तिकला रायकृष्ण दास
शिवपुराण की दार्शनिक तथा धार्मिक समालोचना रमाशङ्कर त्रिपाठी
स्टडीज़ इन दी जीओग्राफी आफ एन्सियेन्ट एण्ड मेडिबल इण्डिया डी० सी० सरकार

(ग) पत्र-पत्रिकाएँ—

अजस्रा
ऑवर हेरिटेज
अन्वेषणा
नैमिषीयम्
पुराणम्